ऋग्वेद



ऋग्वेद

[प्रथम--खण्ड]

(सायण–भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)



सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, योग वासिष्ठ,
२० स्मृतियाँ, १८ पुराणों के प्रसिद्ध
भाष्यकार।



प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेद नगर) बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली–२४३००३ (उ० प्र०

फोन : ४२४२

●

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

●

●

संशोधित पंचम संस्करण

सन् १९८१

●

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

●

मूल्य :

दस रुपये पचास पैसे मात्र

भूमिका

'वेद ही समस्त धर्मों का मूल है'—यह घोषणा अब से हजारों वर्ष पहले ऋषि महर्षियों ने की थी और आज सब प्रकार की वैज्ञानिक उन्नति कर लेने पर भी हम उस प्राचीन सत्य से इन्कार नहीं कर सकते। वेदों का ज्ञान नित्य है और उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उन ज्ञानी जनों ने प्रकट किया है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त करके मनुष्य-मात्र को आत्मवत् देखते थे और इसलिये जो कुछ वे कहते थे उसमें मानवमात्र ही नहीं, समस्त सृष्टि के कल्याण और सुख की भावना सन्निहित रहती थी। उन्होंने जो उपदेश दिये हैं, जीवन का जो मार्ग प्रदर्शित किया है, आचार-विचार, व्यवहार के जो नियम बतलाये हैं, वे सब त्रिकालावधि सत्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उन्होंने समाज और व्यक्तियों के आचरण और पारस्परिक सम्बन्धों के लिये जो विधान बनाया है, उसके मूल तत्व अपरवर्तनीय हैं और जब कभी मनुष्य उन तत्वों से दूर हटता है अथवा उनके विपरीत चलने लगता है, तभी संसार के ऊपर कष्ट और नाश की काली घटाएँ छा जाती हैं। वेदों के नियम स्वाभाविक और प्राकृतिक हैं, और वे पूर्णतया परमात्मा के आदेशों के आधार पर निश्चित किये गये हैं, इसलिये वे किसी भी दशा में मनुष्य के लिए हानिप्रद सिद्ध नहीं होते। इसके विपरीत जो धर्म-ग्रन्थ या धर्म प्रचारक केवल अपने समुदाय या समाज के हित का ध्यान रखकर उपदेश देते है और नियम बनाते हैं, उनमें स्वार्थ की भावना किसी न किसी रूप में सन्निहित हो जाती है और उसका अन्तिम परिणाम राग-द्वेष की उत्पत्ति होता है जिससे लोगों को कष्ट सहन करना पड़ता है। कहना नहीं होगा कि संसार के अन्य सभी धर्म एक-एक विशेष सम्प्रदाय या समुदाय के हितों की दृष्टि से बनाये गये हैं, इसलिये मनुष्य-मात्र के लिये एक समान उपयोगी सिद्ध नहीं हो

सकते। इतना ही नहीं उनके द्वारा प्रायः बड़े-बड़े वैमनस्यों और कलह की उत्पत्ति होते हुए भी हम देख चुके हैं। पर वेदों में कहीं एक विशेष धर्म या सम्प्रदाय को दृष्टिगोचर रखकर उपदेश नहीं दिया गया है, वरन् स्थान-स्थान पर प्राणीमात्र के कल्याण और हित-साधन का ही उपदेश दिया है। यही कारण है कि वेद अनादिकाल से एक ही रूप में चले आये हैं और उनकी शिक्षाएँ निरन्तर एक-सी कल्याणकारी रही हैं।

पर यह देखकर प्रत्येक धर्माभिमानी के मन में एक प्रकार के खेद का भाव उदित होगा कि इतना महत्त्वपूर्ण होने पर भी वेद का प्रचार नाम-मात्र को ही है। ईसाइयों की "बाईबिल" की प्रतिवर्ष कई करोड़ प्रतियाँ बिक जाती हैं और संसार की डेढ़ दो सौ भाषाओं में उनके अनुवाद करके घोर जङ्गलों तथा बर्फिस्तानों और रेगिस्तानों के मुट्ठी-भर निवासियों तक उसका सन्देश पहुँचाया जा रहा है। कुरान का प्रचार भी कम नहीं है और प्रत्येक धार्मिक मुसलमान अपना यह कर्त्तव्य समझता है कि कुरान को नित्य पढ़े और पास रखे। एक लेखक ने तो लिखा है कि कुरान के ऊपर गीता से भी अधिक संख्या में भाष्य हो चुके हैं। कुरान का अनुवाद भी संसार की समस्त प्रमुख भाषाओं में हो चुका है और उसका सर्वत्र प्रचार है। पर वेदों के सम्बन्ध में हमको संकोच-पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि उनका जैसा होना चाहिए वैसा प्रचार तो दूर रहा, अधिकांश हिन्दुओं ने आज तक वेदों के दर्शन भी नहीं किये। विदेशी लेखकों ने वेदों पर किसी जमाने में बड़ी खोज-बीन की थी, पर सब आलोचनात्मक साहित्य है। इनमें से अनेक लेखकों ने वेदों के अर्थ का अनर्थ करके उनको बदनाम करने की चेष्टा की है। हम विदेशी और विधर्मी लोगों से यह आशा भी नहीं कर सकते कि वे धार्मिक श्रद्धा के साथ वेदों का अध्ययन या पाठ करेंगे। उन्होंने किसी भी दृष्टिकोण से वेदों की चर्चा को "सभ्य संसार" में फैला दिया और उनकी ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित कर दिया, इससे ही उनके

लिए बहुत है और वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। पर प्रश्न तो यह है कि वेदों की संस्कृति के नीचे पले हुए हम हिन्दुओं ने उनके प्रचारार्थ क्या किया? यह सत्य है कि वेद की मूल संहिताएँ कई जगह छप चुकी हैं और पूरा या अधूरा हिन्दी अनुवाद भी दो—चार जगह से प्रकाशित किया गया है, पर इनमें से अधिकांश पुस्तकें बीसियों वर्षों तक रहकर अब अप्राप्य हो चुकी हैं। न उनके प्रचार का यथोचित उद्योग किया गया और न पुनर्मुद्रण की कोई व्यवस्था हो सकी। पुस्तकालयों में भी जहाँ जो पुस्तक पड़ी है, उसे शायद ही कभी कोई खोलकर देखता हो! इस दुरवस्था का मात्र कारण यही है कि न तो जनता को ही किसी ने वेदों का महत्त्व ठीक ढंग से समझाने का प्रयत्न किया और न उनको सुलभ-रूप में उनके पास पहुँचाने की व्यवस्था की गयी। इसलिए सब प्रकार से मनुष्य मात्र के लिये बहुमूल्य और कल्याण-कारी होने पर भी वेद एक छिपे हुए खजाने की तरह अभी तक अधिकांश में अज्ञात जैसी अवस्था में पड़े हुए हैं।

वेदों का भाष्य—

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त अवस्था का एक कारण वेदों के अर्थ की दुरूहता और उसके सम्बन्ध में फैला हुआ मतभेद भी है। आज की बात छोड़ दीजिये, हजारों वर्ष पूर्व भी विद्वानों में वेदार्थ के विषय में वाद-विवाद हुआ करता था और उनके सम्बन्ध में कई प्रकार के मत प्रचलित थे। सांख्य योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि सभी दर्शन-शास्त्रों में वेद के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। कोई उनके ज्ञान को ही नित्य मानता है और कोई शब्दों को भी नित्य कहता है। मीमांसा—दर्शन के कर्ता जैमिनि ने तो वेदों के प्रत्येक शब्द और उसके अर्थ को अनादि और अटल रूप से निश्चित बतलाया है।

यही कारण है कि अब वेदों पर अनेक भाष्य किये गये हैं और उनमें काफी मतभेद हैं। प्राचीन ग्रन्थों में भट्ट, भास्कर मिश्र, भरत स्वामी वंकट माधव, उदगोन स्कन्द, स्वामी नारायण, रावण, मुद गस

महावीर, उव्वट आदि कितने ही भाष्यकारों के नाम मिलते हैं। पर न तो उनके कोई प्रामाणिक ग्रंथ मिलते हैं और न यही कहा जा सकता है कि उन्होंने चारों वेदों पर विस्तारयुक्त भाष्य लिखा था। ऐसी दशा में प्राचीन समय के विद्वानों में केवल एक सायणाचार्य ही ऐसे हैं जिनके चारों वेदों के भाष्य पूर्णरूप में मिल सके हैं और जिनका आधार लेकर ही देश-विदेश के विद्वानों ने आधुनिक वेद सम्बन्धी साहित्य की रचना की है। सायण-भाष्य पर्याप्त विस्तृत है और उसमें सर्वत्र प्राचीन परम्परा के अनुकूल अर्थ किया गया हैं। वेदों के प्राचीन भाष्यकार स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर आदि के मत का भी उन्होंने ख्याल रखा है और बीच में उनके भाष्यों से अपने भाष्य का समर्थन किया है।

आजकल कुछ लोग यह आक्षेप करने लगे हैं कि सायण को वेदार्थ की कुञ्जी-स्वरूप पाणिनि की अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त आदि का ज्ञान न था और इसलिये उन्होंने केवल पौराणिक कथाओं के अनुकूल ही वेद भाष्य कर दिया है। पर यह विचार निराधार है। अभी हाल में आर्य-समाज के एक माननीय विद्वान तथा नेता पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने अपनी "सायण और दयानन्द" नामक पुस्तक में इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है—

"साधारण आर्यसमाजी समझता है कि सायणाचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त से परिचित नहीं थे और न उन्होंने वेद-भाष्य का आधार इन प्राचीन ग्रन्थों को माना है। उन्होंने केवल पौराणिक आख्यायिकाओं के आधार पर ही मन्त्रों का भाष्य कर दिया है। पर जिन्होंने सायण के भाष्य का अवलोकन किया है वे जानते हैं कि सर्व-साधारण की यह धारणा निराधार है। सायण के भाष्य में पाणिनि के सूत्रों तथा यास्क के वचनों की भरमार है। सायण की इन प्राचीन मौलिक ग्रन्थों पर श्रद्धा है। इस विषय में सायण-भाष्य में वेद के समझने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।"

वेदार्थ की शैली—

हमने अपने इस संस्करण में वेद-मन्त्रों का जो संक्षिप्त अर्थ दिया है वह सायण-भाष्य के आधार पर ही है। सायण ने सर्व-साधारण के समझने लायक अधिकांश मन्त्रों का अर्थ आधिभौतिक दृष्टि से ही किया है क्योंकि बहुसंख्यक जनता-द्वारा वेदों का उपयोग विविध प्रकार के काम्य यज्ञों के लिए ही होने लगा था और लोग उसी आधिभौतिक दृष्टि से किये गये अर्थ को स्वाभाविक मानने लगे थे तो भी सायण ने जहाँ उचित प्रसंग समझा है, वहाँ मन्त्रों का अर्थ आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी किया है। हमने भी यथाशक्ति इसी शैली का अनुकरण किया है और आशा है कि इसके द्वारा पाठकों को वेद मन्त्रों के स्थूल अर्थ का सामान्य बोध हो सकेगा।

इसके साथ ही हम यह भी कह देना चाहते हैं कि वेदार्थ अत्यन्त गूढ़ विषय है और वह इतने संक्षेप में स्पष्ट रूप से कदापि प्रकट नहीं किया जा सकता! वेद के अधिकांश मन्त्रों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ होते हैं जिनको हम स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप भी कह सकते हैं। स्थूल में बाह्य क्रियाकाण्ड, पूजा, उपासना, प्रार्थना, शिक्षा आदि का समावेश होता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रत्येक पदार्थ या कार्य के वैज्ञानिक रहस्य प्रकट होते हैं और उनको शक्ति रूप में परिणित करके सांसारिक उन्नति के नये-नये मार्गों का ज्ञान होता है। तीसरा कारण रूप-अर्थ सबसे अधिक गूढ़ है, क्योंकि बिना आत्मज्ञान के वह भली प्रकार हृदयङ्गम नहीं हो सकता। हर तरह के शाप, वरदान, अणिमा, महिमा, लघिमा आदि अष्ट-सिद्धियाँ इत्यादि कारण शक्ति के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार वेदार्थ का जितना अधिक विस्तार किया जायेगा, उतने ही उसके नये-नये और गूढ़ रहस्य प्रकाशित होते चले जायेंगे। पर प्रस्तुत ग्रन्थ में इसके लिए कोई साधन नहीं है। अत्यन्त संक्षिप्त भावार्थ देने पर भी वह चार हजार पृष्ठ के लगभग हो गया है। यदि वेद-तन्त्रों के आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ किए जायँ और उनका

विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण किया जाय तो इससे दश, बीस-गुना ग्रन्थ भी पर्याप्त नहीं हो सकता। यदि पाठकों ने इस प्रथम प्रयत्न को सराहा और इससे लाभ उठाया तो समय आने पर विस्तृत भाष्य प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न किया जायेगा।

वैदिक स्वर चिन्ह—

वेदों की ऋचाओं में अक्षरों के ऊपर और नीचे कई प्रकार की खड़ी और आड़ी रेखाएँ देकर उनके अनुसार उन अक्षरों के उच्च मध्यम और मन्द स्वर में बोलने के नियम बनाये गये हैं, इनको "स्वर" कहा जाता है। इनके मुख्य भेद तीन माने हैं, अर्थात् उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित। पर इनमें से भी प्रत्येक स्वर अधिक अथवा न्यून रूप में बोला जा सकता है, इसलिये प्रत्येक के दो भेद हो जाते हैं, जैसे उदात्त, उदात्तर, अनुदात्त, अनुदातत्तर, स्वरित स्वरितोदात्त। इनके अतिरिक्त एक स्वर और माना गया है—'एक श्रुति' जिसमें तीनों का तिरोभाव हो जाता है। इस प्रकार सब मिलाकर सात स्वर माने गये हैं। इनकी व्याख्या महाभाष्यकार महामुनि पतंजलि ने इस प्रकार की है—

"स्वयं राजन्त इति स्वराः। आयामो दारुण्यमणुता स्वरस्येत्युच्चैः कराणि शब्दस्य। आयामो गात्राया, निग्रहः, दारुर्ण्य, स्वरस्य दारुणता रूक्षता, अणुता, कण्ठस्य संवृतता उच्चैः कराणि शब्दस्य।

अन्ववसर्गो, गंत्राणां शिथिलता, मार्दवं, स्वरस्य मृदुता, स्निग्धता, उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचैः कराणि शब्दस्य।

त्रैस्वर्य्येणाधीमहे, त्रिप्रकारैः रज्भिरधीमहे, कैश्चिदुदात्तगुणैः, कैश्चिदनुदात्तगुणैः, कैश्चिदुभयगुणैः। तद्यथा शुक्लगुणः शुक्लः, कृष्णगुणः कृष्णः य इदानीमुभयगुणः स तृतीयाख्यां लभते, कल्माष इति वा सारंग इति वा।"

अर्थात् "जो बिना दूसरे की सहायता के स्वयं ही प्रकाशमान अथवा प्रकट है वे स्वर कहे जाते हैं। अंगों का रोकना या वाणी को रूखा करना अथवा उच्चस्तर से बोलना, कंठ को भी कुछ रोक देना

ये सब बातें शब्द के 'उदात्त" करने वाली हैं अर्थात् उदात स्वर इन्हीं नियमों के अनुकूल बोला जाता है।

"शरीर के अंगों या गात्रों का ढीला पन, स्वर की कोमलता कण्ठ को फैला देना, ये सब बातें शब्द को अनुदात्त" करने वाली हैं। इस प्रकार हम सब तीन प्रकार के स्वरों से बोलते हैं, अर्थात कहीं उदात्त, कहीं अनुदात्त और कहीं उदात्तानुदात्त अर्थात् स्वरित। जैसे श्वेत और काले रंग अलग होते हैं, परन्तु इन दोनों को मिला देने से जो रंग पैदा होता है, उसका नाम तीसरा ही होता है अर्थात् खाकी अथवा आसमानी, इसी प्रकार उदात्त और अनुदात्त के गुण अलग-अलग हैं पर इन दोनों के मिला देने से एक तीसरा ही स्वर पैदा हो जाता है।

"एक श्रुति" में भी उदात्त और अनुदात्त दोनों का सम्मिश्रण होता है, इसलिये "स्वरित" और "एक श्रुति" का भेद करने में कठिनाई पड़ती है। इस सम्बन्ध में प्राचीन व्याख्याकारों ने यह मत प्रकट किया है कि 'स्वरित' में उदात्त और अनुदात्त का सम्मिश्रण इस प्रकार होता है जैसे काठ और लाख का जोड़। ये दोनों एक जान पड़ने पर भी अलग अलग दिखलाये जा सकते हैं और अनुभव किये जा सकते हैं। पर 'एक श्रुति' में दोनों प्रकार के स्वरों का मेल इस प्रकार होता है जैसे दूध और पानी का जिनको न अलग अलग किया जा सकता है और न अनुभव में लाया जा सकता है।

इन सात भेदों में भी एक-दूसरे का संयोग होने से कई प्रकार के भेद पैदा होते हैं, जिसके लिये स्वर चिह्नों में कुछ परिवर्तन किया जाता है।

स्वरित के ही नौ भेद बतलाये हैं—

(१) संहितज, (२) जात्य, (३) अभिनिहित, (४) क्षेत्र, (५) प्राश्लिष्ट, (६) तैरोव्यंजनन, (७) वैवृत अथवा पादवत, (८) तैरो विराम, (९) प्रतिहित।

कई प्राचीन ग्रन्थों में स्वरों के अठारह भेद लिखे हैं और कहते हैं कि आरम्भिक काल में लोग उन सबका स्पष्ट उच्चारण कर लेते थे। पर जैसे-जैसे लोगों के रहन-सहन में कृत्रिमता आती गयी और उनका खान-पान प्राकृतिक फल, मूल आदि के बजाय तरह तरह के स्वादिष्ट व्यंजन और पकवान होने लगे, वैसे-वैसे ही उनके कण्ठ स्वर में भी परिवर्तन होने लगा। इनके फल से विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म ध्वनियों के निकालने में उनको कठिनाई होने लगी। तब स्वरों की संख्या सात कर दी गयी। फिर जब इनका उच्चारण भी लोग ठीक-ठीक करने से असमर्थ हो गये तब स्वर संख्या घटाते-घटाते तीन ही रह गई। पर वर्तमान समय में इनको भी शुद्ध रूप से उच्चारण कर सकें, ऐसे वेदपाठी इने-गिने रह गये हैं। इसलिये अब हाथ को ऊपर नीचे करके ही स्वरों का बोध कराया जाता है।

स्वरों के लिए जिन चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, उनके सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद दृष्टिगोचर होता है। साधारणतया अनुदात्त के लिए अक्षर के नीचे आड़ी लकीर देने तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा बनाने का नियम है, उदात्त कोई चिह्न नहीं उसका इन्हीं दो स्वरों के आधार पर उच्चारण किया जाता है। पर ये चिह्न भी प्रत्येक स्थान में एक से नहीं हैं। भिन्न-भिन्न वैदिक शाखा वालों ने उसमें बड़ा अन्तर कर रखा है। जिससे साधारण पाठक को बड़ा भ्रम हो जाता है। इस विषय में स्वर शास्त्र की खोज करने वाले एक विद्वान श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"वैदिक वाङ्मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरों का अङ्कन (संकेत अथवा चिह्न) एक प्रकार का नहीं है। उनमें परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य है। एक ग्रन्थ में जो स्वरित का चिह्न देखा जाता है, वही दूसरे ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न माना जाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में जो अनुदात्त का चिह्न है, वह अन्य ग्रन्थों में उदात्त का चिह्न हो जाता है। 'साम-संहिता' का स्वराङ्कन-

प्रकार सबसे विलक्षण है। उनके वेदपाठ का स्वराङ्कन संहिता के स्वराङ्कन से भी पूर्णतया मेल नहीं खाता। इसलिए वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है।"

इन बातों के अतिरिक्त स्वर-चिह्न-युक्त छपी वेद की पुस्तकों में एक नयी कठिनाई प्रेस सम्बन्धी हमारे अनुभव में आयी है। इनके कारण एक साधारण पाठक के लिए मन्त्रों के पढ़ने में असुविधा होती है और अनेक बार वे गल्ती कर जाते हैं। प्रेस के कर्मचारी अक्षरों के ऊपर लगी छोटी रेखा को प्रायः अनुस्वार का चिह्न समझकर वैसा ही कम्पोज कर देते हैं। इसी प्रकार जिस अक्षर के नीचे 'अनुदात्त' की आड़ी रेखा लगायी गयी है और उसमें छोटे 'न' की मात्रा भी लगी हो तो वह भी प्रायः निगाह से ओझल हो जाती है।

इन कारणों से हमने इस संस्करण में स्वर-चिह्नों का प्रयोग नहीं किया है। इनकी आवश्यकता सस्वर वेद-पाठ करने में होती है और इस कार्य के लिए कई स्थानों से मूल संहिता की पुस्तक छपी है। हमारा मुख्य उद्देश्य वेदों के पठन-पाठन की प्रेरणा देने का है जिससे साधारण लोग भी हिन्दू धर्म के इस मूल को स्वयं पढ़ सकें और उसका साधारण तात्पर्य समझ सकें। इस प्रकार 'स्वरों का परित्याग' कोई नवीन बात नहीं है। अब से लगभग तीस वर्ष पूर्व बिहार की एक धार्मिक संस्था की तरफ से 'ऋग्वेद' का भाष्य-आठ खण्डों में प्रकाशित किया गया था, जिसके लेखक 'भारत धर्म' महा-मण्डल के महोपदेशक पं० रामगोविन्द वेदान्तशास्त्री थे। उन्होंने असामयिक जानकर उनमें स्वरों का प्रयोग नहीं किया था। इसी प्रकार अभी, कुछ वर्ष पूर्व अहमदाबाद के परमहंस परिव्राजक श्री भगवदाचार्य ने सामवेद-संहिता-भाष्य प्रकाशित कराया। उसमें स्वरों को छोड़ दिया गया था। स्वामी जी ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि "मैं वेदों के अक्षरों को अनियंत्रित मानता हूँ। तभी 'अनन्ता वै वेदाः' की उक्ति सार्थक हो सकती है। स्वर मेरे साथ चल नहीं सकते।" प्राचीन काल के विद्वानों ने भी उपनिषद् आदि ग्रन्थों

में जहाँ वेदमन्त्रों के उद्धरण दिये हैं, वहाँ स्वर चिह्न नहीं लगाये हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण तो 'ईशावास्योपनिषद्' है जो पूर्णत: 'यजुर्वेद' के अन्तिम अध्याय की प्रतिलिपि है और जिसे सर्वत्र बिना स्वर चिह्नों के लिखा व छापा गया है।

वेदों के ऋषि देवता और छन्द—

वेदों के प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई ऋषि माना गया है। अनेक लोग ऋषियों और देवताओं का एकीकरण करने की चेष्टा किया करते हैं, पर 'ऋग्वेद' के अध्ययन से स्पष्ट प्रकट होता है कि उसकी ऋचायें अवश्य ही कुछ प्रधान ऋषियों और उनके वंशजों द्वारा प्रकट की गयी हैं। 'ऋग्वेद' में दश मण्डल हैं, इनमें पहले और दशवें सबसे बड़े हैं, इनमें से प्रत्येक में १९१ सूक्त हैं और ये दोनों मिलकर इस वेद के एक तिहाई भाग के बराबर हैं। इन दोनों मण्डलों में विविध ऋषियों द्वारा प्रगट किये गये सूक्तों का संग्रह किया गया है। अधिकांश सूक्त एक-एक ऋषि के ही हैं, कहीं-कहीं ऐसे सूक्त भी मिलते हैं जिनके द्रष्टा एक से अधिक ऋषि हैं। इन दो मण्डलों के सिवाय दो से सात तक के मण्डलों में तो प्राय: एक ही ऋषि के द्वारा प्रकट किये गये सूक्त दिये गये हैं, अगर दो चार नाम और हैं तो बस उनके ही वंश वालों के हैं। इस प्रकार द्वितीय मण्डल में गृत्समद, तीसरे में विश्वामित्र, चौथे में कामदेव, पांचवें में अत्रि, छठे में भारद्वाज तथा सातवें में वसिष्ठ के सूक्तों का संग्रह है। आठवें में यद्यपि और भी बहुत से ऋषियों के सूक्त हैं, पर उसमें कण्व ऋषि के वंश की प्रधानता दिखाई पड़ती है। नौवें मण्डल में भी अनेक ऋषियों का संग्रह ही है। इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अन्य ऋषि जिनके सूक्त कम संख्या मे हैं वे किसी भी दृष्टि से न्यून महत्त्व रखते हैं। इस प्रकार केवल ऋग्वेद के ऋषियों की संख्या लगभग ३०० है। अन्य वेदों के मन्त्रों के रचयिता भी लगभग ये ही हैं, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इनके अतिरिक्त बहुत थोड़े नये नाम मिलते हैं। हमने प्रत्येक सूक्त पर उसके ऋषि का नाम दिया है, तो भी

यहाँ ऋषियों की नामावली देते हैं जिससे पाठकों को इस विषय का सम्यक् परिचय प्राप्त हो सकेगा—

मधुच्छन्दा, तेज, मेघातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, सव्य, नोध, पाराशर, गौतम, कुत्स, कश्यप, ऋज्रस्व, कक्षिवत, परुच्छेप, दीर्घतमस, अगस्त्य, होमहूति, कूर्म, ऋषभ, उत्कल, देवश्रवा, देवव्रत, प्रजापति, बुध, गविष्ट, कुमारः ईश, सुतम्भरा, धरुण, पुरु, विश्वसाम, द्युम्न, विश्वचर्षणि, वसुयु, विश्ववर, बभ्र, अवस्यु, पृथु, वसु, प्रतिरथ, प्रतिभानु, पुरुमीढ़, गोपवन, सप्त बुध, विरूप, उहणाकाव्य, कृष्ण विश्वक, नुमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, सुक्रक्षः बिन्दु, पूतदक्ष, जमदग्नि, नेम, प्रस्कण्व, त्रित, पर्वत, नारद, त्रिशरा, हविर्धान, अग्नि, शंख, दमन, मथित, विमद, वसुक्र, ऐलूष, मौजवान, धानाक, अमितपा, घोष, विश्ववारा, वत्सप्रि, सप्तुगा, वैकुण्ठ, बृहदुक्थ, गोपायन, मानव, प्लात, वसुकर्ण, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, गौरिवीति, जरतनर्ण, स्यूमिश्त, सौचीक, विश्वकर्मा सूर्या, सावित्री, पायु, रेणु, नारायण, अरुण, शायति, तान्व, अर्बुद, वरु, भिषग्, मुद्गल अष्टज, मूतांश, पणयोऽसुर, सरमा, अष्टादष्ट्र, उपस्तु, भिक्षुः, बृहद्दिव, चित्रमह, कुशिक, विहव्य, सुकीर्ति, शकपूत, मान्धाता अंग, श्रद्धा, कामायिनी, यमी, शिरम्बिठ, केतु, भुवन, चक्षु, शची, पौलोमी, रक्षोहा, कपोत, अनिय, शवर, सततं, ध्रुव, पतंग, अरिष्टनेमि, जय, प्रथ, उलो, सुपर्ण देवता, ध्यावाँश्च, रहगण, भृगु, कर्णश्रुत, अम्बरीष च्यवन, उर्वशी, द्रोण, राम, धर्म, रातहव्यं, सुनहोत्र, नर, गर्ग, कश्यप, नाभाग, त्रिशोक आदि आदि।

× × × ×

वैदिक देवताओं की सूची भी काफी लम्बी है। 'ऋग्वेद' में तो परमात्मा की शक्ति के विभिन्न अंग-रूप प्रकृति की संचालक शक्तियों की ही अधिकांश में स्तुति और प्रार्थना की गयी है, पर अथर्ववेद में जहाँ औषधियों, जड़ी-बूटियों, व्याधियों के निवारण के अन्य उपायों अथवा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया है, वहाँ उन्हीं की अधिष्ठात्री शक्ति

को देवता मानकर उसी का नाम दिया गया है। यजुर्वेद और सामवेद में प्रायः सभी देवता ऋग्वेद के ही हैं। नीचे ऋग्वेद के देवताओं की सूची दी जाती है।

अग्नि, वायु, इन्द्र वरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव मरुत, सोम, ब्रह्माणस्पति, अर्यमा, आदित्य, सविता, त्वष्ट, सरस्वती, द्यावा-पृथिवी, ऋभुगण, सूर्य, रुद्र, विष्णु, उषा, वैश्वानर, ऋतु, दक्षिणा पूषा, इन्द्राणि, अग्नपेयि, सिन्धु, स्वनय, बृहस्पति, वाक्, काल, रति, अन्न, वनस्पति, राका सिनीवाली, आयलयत, कपिञ्जल, युप, पर्वत, उच्चैःश्रवस, क्षेत्रपति सीता, पर्जन्य, धेनुः प्रस्तोज, पष्णि, वास्तोपत्ति, सोम, यजमान, पितृ, मृत्यु धाता, वैकुण्ठ, आत्मा, निसृति, ज्ञान, श्रद्धा, शचि, तक्षं आदि।

अथर्ववेद में इनमें ये सभी मुख्य-मुख्य देवताओं के स्तोत्रों के अतिरिक्त इन देवताओं के नाम भी मिलते हैं---

वाचस्पति, आप, असुर, यक्ष्म, नाशनम्, विद्युत्, योषित, आसुरी, वनस्पति, यातुधान, मधुवनस्पति, हिरण्यम्, गन्धर्व और अप्सराएँ, जंगडमणि, चन्द्र, पश्निपर्णी, पशु, दम्पति, पशुपति, पर्णमणि, अश्वत्थ, हरिण, अष्टका, शाला, गोष्ठ, योनि, कामिनी, काम, सामनस्य, व्याघ्र वृषभ, शंखमणि, रोहिणी, वनस्पति, दिशाएँ, अपामार्ग, भव और शर्व, मन्यु, ब्रह्मोदन, जातवेदः, लाक्षा, तक्म, नाशनम्, सर्प, विषनाशनम्, ब्रह्मगवी, दुन्दुभिः, गर्भ, कृत्या, प्रतहणम् ईर्ष्या विनाशम् पाप्मा, शमी अघ्न्या, अर्क (मंदार), वाजि (अश्व) कासा (खाँसी, मेधा, पिप्पली, भग, स्मर, वज्र, दुःस्वप्न नाशनम्, इडा, अक्षि, मन, कुहू, अरिनाशनम्, सुखम् अमावस्या, पौर्णमासी, यज्ञ वेदी, भेषज विराट्, अध्यात्म, व्रात्य, अतिथि, विद्या, ब्रह्मचारी, शतौदन, आञ्जनम् आदि आदि।

'अथर्ववेद' का मुख्य विषय अध्यात्म तथा ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ जीवन के विविध विषयों का ज्ञान प्रदान करना है। उसमें विविध प्रकार की व्याधियों को हटाने के लिए औषधियों और मन्त्र-तन्त्र का विधान है और इन्हीं सबको उसमें देवता मान लिया गया है। ... ...

तथा शारीरिक और मानसिक व्याधियों के निवारण के उपायों को देव-श्रेणी में देखकर आश्चर्य करते हैं, पर जैसा हम लिख चुके हैं प्रत्येक पदार्थ और विधान के जड़ और चेतन दो विभाग होते हैं। आत्मज्ञानी पुरुष मुख्यतः प्रत्येक पदार्थ में चेतन शक्ति को ही देखता है, क्योंकि वास्तविक कार्य और प्रभाव उसी का होता है। इसी तत्व को लक्ष्य करके एक विद्वान ने लिखा है—

"अभी भी यहाँ के या किसी भी अन्य देश के महात्मा ऐसे ही अनुभव करते हैं और जड़ पदार्थों से भी बातें करते हैं। जो आत्मवत् सर्व भूतेषु' को जीवन में ढाल लेते हैं, वे पशु, पक्षी, पत्थर, मिट्टी से भी बातचीत करते हैं। भला जो वैद्य अपनी औषधियों से बातें करना नहीं जानता, वह भोजन का मार्ग क्या जानेगा? जो वीर अपनी तलवार से बातें नहीं करता वह भी कोई वीर है? सच्चाई तो यह है कि अपने में चेतना का जितना अधिक विकास होगा, मनुष्य इतना ही जड़ वस्तुओं से चेतनवत व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें चेतनतत्त्व का विकास नहीं हुआ है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जड़ानुगत है, वह तो जघन्य व्यवहार करेगा। महात्माओं और जड़वादी मनुष्यों का यह भेद प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखा-सुना जाता है। फलतः वेदमन्त्रों का चेतनानुगत होना उनकी अच्युत अध्यात्म-भूमिका का परिचायक है।"

वैदिक ऋषि भली प्रकार जानते थे कि शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अनेक गुनी प्रबल है और उसकी अपेक्षा आत्मा की शक्ति बहुत अधिक प्रभावशाली है। इसलिये उन्होंने सभी मनुष्यों को मानसिक शक्ति के विकास कराने और सांसारिक कार्यों में उसका उपयोग करने का मार्ग दिखलाया और उसमें सन्देह नहीं कि आज भी वे ही मनुष्य वास्तविक सफलता प्राप्त करते हैं, जिनकी मानसिक शक्ति प्रबल है और उसी के द्वारा वे अन्य मनुष्यों को अभिभूत करके अपना अनुगामी बना सकते हैं।

वैदिक छन्दों का ज्ञान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सभी वैदिक मन्त्र छन्दों में हैं और जब तक छन्दों का ज्ञान नहीं होता तब तक उनको शुद्ध रूप से पढ़ा नहीं जा सकता और न यथोचित फल प्राप्त किया जा सकता है। वेद मन्त्रों में जिन छन्दों का व्यवहार किया गया है वे मध्यकाल के संस्कृत काव्यों के छन्दों से बहुत भिन्न हैं। वेदों का अनुष्टुप् छन्द तो बाद के संस्कृत ग्रन्थों में भी दिखलाई पड़ता है, पर अन्य छन्द वेद के सिवाय अन्यत्र काम में नहीं आये हैं। संस्कृत के मध्यकालीन और आधुनिक छन्द प्रायः चार चरणों के होते हैं, पर वेदों में तीन चरणों के छन्दों की बहुतायत है। जैसे इन छन्दों के नाम भिन्न हैं उसी प्रकार इन छन्दों का पिंगलशास्त्र भी अन्य ग्रन्थों के छन्दों से भिन्न है। वैदिक पिंगल के मुख्य छन्द ये हैं—

(१) गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप् (४) वृहती (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप् (७) जगती। ये क्रमशः एक दूसरे से अधिक चरणों के होते हैं। इनमें से प्रत्येक के आठ भेद हैं (१) आर्षी (२) दैवी (३) आंसुरी (४) प्राजापत्य (५) याजुषी (६) साम्नी (७) आर्ची (८) ब्राह्मी। इस प्रकार ५६ भेद तो मुख्य छन्दों के ही हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त शक्वरी, अष्टिः ककुभ्, कृति, धृति, प्रकृति, प्रागाथा, अभिसारिणी आदि नाम के छन्द भी पाये जाते हैं। फिर इनमें से दो दो और तीन-तीन छन्दों को सम्मिलित करके जो छन्द लिखे गये हैं उनकी गिनती सैकड़ों तक पहुँचती हैं। उदाहरणार्थ कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं—

भरिक त्रिष्टुप् परानुष्टुप् पुरोवार्हत त्रिष्टुप्, त्रिपदा भुरिगार्ची, गायत्री, समविषमा गायत्री, पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती, त्रिष्टुप्, बृहती, गर्भाति छगती, विपरीत, पाद लक्ष्मी पंक्ति षट्पदा ककुम्भती शक्वरी, पुरोति, जगता जगती, पुरस्ताद षिरोड बृहती, बृहतीगर्भा त्रिष्टुप उष्णिग् बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप्, पदपदाऽत्रि, जगत्री, जातिरुष्णिगगर्भा त्रिष्टुप्, विषम पादलक्ष्मी त्रिपदा महाबृहती, चतुष्पदा, उष्णिक्, आस्तार पक्ति, सप्तपदा विराट् शक्वरी, पिपीलक मध्या, निकृद गायत्री, चतुष्पदा पुरःशक्वरा भुरिग् जगती, आदि।

सच पूछा जाय तो जिस प्रकार वेदों को अनन्त बतलाया गया है, उसी प्रकार उनके देवता, छन्द आदि सभी अनन्त है। "अनन्ताः वेदाः" यह वाक्य इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा गया है।

वेदों के विषय—

वेदों का मूल वर्ण्य विषय "सृष्टि-विज्ञान" या सृष्टि-विद्या है। सृष्टि का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसका विस्तार किस प्रकार हुआ, इसके संञ्चालन के नियम क्या है, इस विधान में मनुष्य का क्या स्थान और कर्त्तव्य है—ये ही विषय हैं जिनको वेदों में भिन्न-भिन्न विधियों से तरह-तरह के सकेतों प्रतीकों, रूपकों, काव्यालङ्कारों द्वारा समझाया गया है। क्योंकि इन विषयों का ज्ञान छोटे-बड़े विद्वान-मूर्ख, सभी के लिए आवश्यक और उपयोगी है। इसलिए उन त्रिकालदर्शी ऋषियों ने मानव-जीवन के लिए महत्त्व के सभी विषयों को ऐसे ढङ्ग से प्रकट किया है कि जिस प्रकार एक विद्वान उनमें से चमत्कारी सूक्ष्म और अध्यात्म तत्वों को ढूँढ़ लेता है, उसी प्रकार एक विद्याहीन अपढ़ व्यक्ति भी अपने जीवन को सफल और सुखमय बनाने वाली क्रियाओं की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में वेदों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक प्रसिद्ध विद्वान ने हाल में ही कहा था—

"वेद सृष्टि-विद्या का दूसरा नाम है। सृष्टि की रहस्यमयी प्रक्रिया की व्याख्या वेद की नाना विद्याओं के रूप में उपलब्ध होती है। इन विद्याओं का अपरिमित विस्तार है। जैसे सृष्टि अनन्त है, वैसे ही वेद-विद्या भी अन्तहीन है। विराट् और अणु इन दोनों क्षेत्रों में अर्वाचीन विज्ञान की यही तथ्यात्मक स्वीकृति है कि इन दोनों की रहस्यमयी रचना का पारावार नहीं। हमारे ऋषियों ने भी अनगिनती वर्ष पूर्व यही कहा था कि "अणो रणीयान महतो महीयान" इन दोनों का मूल कोई अनन्त अव्यक्त, अक्षर तत्व है। अणु (सबसे छोटा) और महत् (सबसे बड़ा दोनों में उसी की महिमा प्रकट हो रही है। वह अव्यक्त पुरुष स्वयंभू

सहस्रात्मा या अनन्त है। यह विश्व विराट्, अनादि और अनन्त है, इसका स्रोत अविनाशी है। देश और काल, अथवा नाम और रूप से परिवर्तनशील जगत् में इसका नित्य नया रूप प्रकट हो रहा है। इस प्रकार ऋषि और वैज्ञानिक, दोनों ही विश्व के रहस्य की व्याख्या करते हैं। पर ऋषियों का दर्शन इस ध्रुव विश्वास से भरा हुआ है कि यह व्यक्त विश्व किसी अव्यक्त मूल स्रोत से उद्गत हुआ है। वह अव्यक्त मूल इस व्यक्त की सृष्टि करके इसी में अनुप्रविष्ट हो रहा है—समाया हुआ है।"

देवतावाद—

वेदों में अनेक देवताओं की स्तुतियाँ और प्रार्थनाएं मिलती हैं। वैदिक ऋषियो के मतानुसार प्रत्येक जड़ अथवा भौतिक पदार्थ की एक चेतन आत्मा भी होती है, वही उसका देवता है। इस दृष्टि से वैदिक सृष्टि-विद्या दो भागों में विभाजित है, एक देव-तत्व जिसे शक्ति तत्व भी कह सकते हैं और दूसरा 'भूत' अथवा स्थूल पदार्थ। बिना देवता अथवा शक्ति के किसी 'भूत' या भौतिक पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता सम्भव नहीं। जिस प्रकार मृत शरीर में भी नेत्र रहते हैं, पर वे इस कारण नहीं देख सकते कि उनकी चेतन शक्ति पृथक् हो गई है इसी प्रकार बिना देव-तत्व के केवल जड़ पदार्थ निरर्थक हैं इस बात को जो व्यक्ति नहीं समझते वे इस बात पर सन्देह प्रकट करते हैं कि वेदों में अग्नि, पानी वनस्पति, औषधि, स्रुवा, चमस आदि सब पदार्थों की मनुष्यों के समान स्तुति क्यों की है और उनसे धन, सौभाग्य, वरदान आदि की याचना करने का क्या परिणाम हो सकता है? इसका स्पष्टीकरण करते हुए एक प्राचीनता के पोषक लेखक ने कहा—

"ऋषियों ने जिन प्राकृत शक्तियों की स्तुति व प्रशंसा की है वह उनके स्थूल रूप की नहीं है, प्रत्युक्त उनकी शासिका अथवा अधिष्ठात्री चेतन शक्ति की है। इस चेतन शक्ति को वे परमात्मा से पृथक् नहीं मानते थे। परमात्मा रूप ही मानते थे। उन्होंने 'ऋग्वेद' के प्रथम मंत्र में ही अग्नि की स्तुति की है, परन्तु अग्नि को परमात्मा से भिन्न मानकर नहीं

वे स्थूल अग्नि के रूप को जानते हुए भी सूक्ष्म अग्नि-परमात्मा शक्ति-रूप के स्तोता और प्रशंसक थे। वे मरणशील (नाशवान) अग्नि में व्याप्त अमरता के उपासक थे। वेद में कहा गया है-"अपश्यमहं महतो महित्वम् मर्त्यस्त विक्षु" मं० १०-७९-१) अर्थात् "मरणशील मनुष्यों में मैंने अमर अग्नि की महिमा को देखा।" इसी तरह 'इन्द्र' में भी वे परमात्मा-शक्ति को देखते थे। कहा गया है कि "जो सृष्टिकर्ताओं के भी सृष्टिकर्ता हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूं (मं० १०-१२८-७)। जितने देवता हैं, उन सबको वे उसी प्रकार परमात्मा-रूप समझते थे जिस प्रकार एक ही सूत्र में माला के समस्त दाने ओत-प्रोत रहते हैं और सब मिलकर केवल एक माला ही समझे जाते हैं।"

वास्तविक बात यही है कि वैदिक ऋषिगण अध्यात्मवादी थे और सर्वदा चैतन्य जगत् में ही विचरण किया करते थे। अपने को किसी दशा में केवल हाड़-मांस का पुतला समझने को तैयार न थे। इसलिये उन्होंने अपने सांसारिक जीवन को पूर्णतया आधिदैविक और आध्यात्मिक रङ्ग में रङ्ग दिया था और वे सर्वत्र सदैव अपने को देवशक्तियों से घिरा हुआ अनुभव करते थे। वे उन शक्तियों से भौतिक मनुष्यों की तरह ही बातचीत और व्यवहार करते थे और उनको भी अपने जीवन और समाज का एक अविच्छिन्न अङ्ग मानते थे। इसका परिणाम यह होता था कि संसार में रहते और उसके सब व्यवहारों को करते हुए भी उनकी भावनाएँ बहुत उच्च धरातल पर रहती थीं और उसी के फलस्वरूप वे जीवन के परम सत्य को देख सकने में समर्थ हो सकते थे। यही कारण था कि सब देवताओं के एक ही विराट् शक्ति के अंश होने पर भी वे उनसे पृथक्-पृथक् शक्तियों के रूप में भी लाभ उठा सकते थे।

वैदिक समन्वयवाद—

उपर्युक्त विवेचन से वेदकालीन ऋषियों की समन्वयवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृति का एक बहुत बड़ा

गुण और यही कारण है कि जहाँ संसार की अन्य संस्कृतियाँ एक दो हजार वर्षों के भीतर ही लुप्त हो गयीं, वर्तमान भारतीय संस्कृति, विदेशी इतिहासज्ञों के हिसाब से भी, कम से कम आठ-दस हजार वर्ष पुरानी अवश्य हो चुकी है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका श्रेय प्रधानतः वैदिक आदर्शों को ही है। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति के लिये जिन तीनों बातों अर्थात् ज्ञान, उपासना और कर्म की आवश्यकता होती है, उनका पूर्ण समन्वय वेदों में पाया जाता है। विद्वानों ने 'ऋग्वेद' को ज्ञान, 'यजुर्वेद' को कर्म, 'सामवेद' को उपासना और अथर्ववेद को अध्यात्म का विवेचन करने वाला माना है, पर स्वयं वेदों में स्थान-स्थान पर यही घोषणा की गयी है कि चारों वेद और उनका ज्ञान एक ही है—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मद् यजुस्तस्मादजायत ॥ऋ० १०।९।६

अर्थात्—ऋक्, यजु, साम, अथर्व-चारों वेद एक ही ईश्वरीय ज्ञान से प्रादुर्भूत हुए हैं, उनमें किसी प्रकार का अन्तर करना अथवा भेदभाव प्रकट करना अनुचित और अनावश्यक है। पर मनुष्यों में प्रायः स्वार्थबुद्धि की प्रधानता रहती है, जिसके कारण वे अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाकर मतभेद और फूट का बीज बो देते हैं। यही कारण था कि बाद में इसी देश में ऐसे कितने विद्वान पैदा हो गये जिन्होंने वेद की इस समन्वयवादी शिक्षा के मूलधार ज्ञान, उपासना और कर्म में केवल एक को पकड़ कर दूसरे की निन्दा करनी आरम्भ कर दी। शङ्कराचार्य जैसे महान व्यक्ति भी लोगों को ऐसा ही उपदेश देने लगे कि इन तीनों में "ज्ञान ही उद्धार का मार्ग है। कर्म बन्धन में डालने वाला है, इसलिए ज्ञानी व्यक्ति को कभी कर्म नहीं करना चाहिए।" इधर उपासना का डङ्का पीटने वालों ने भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बतला कर ज्ञान और कर्म की उपेक्षा करने की प्रेरणा दी गीताकार ने वेदों के आदर्श पर ज्ञान, कर्म और उपासना के समन्वय का उपदेश दिया। पर इन प्रतिद्वन्द्वी मनोवृत्ति के आचार्यों ने उनके भी बीसियों तरह के भाष्य

अपने-अपने सिद्धान्त का पोषण करने वाले तैयार कर दिये। इसी सम्प्रदायवाद ने भारतीय समाज में फूट और निर्बलता को उत्पन्न किया, जिसका अन्तिम परिणाम देश का पतन और विदेशियों की अधीनता के रूप में प्रकट हुआ। यदि सङ्गठित, शक्तिशाली और कार्यक्षम बनना है तो इसके लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श वेदों का समन्वय ही है, जिसका सारांश 'वेद' ने स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है—

संगच्छध्वं संवदध्वं स वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते॥
समानी व अकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ऋ० १०-१९-१-२

इसका आशय यह है कि सब मनुष्य भली प्रकार मिल कर रहें, प्रेमपूर्वक आपस में वार्तालाप करें। सब के मनों में ऐक्य-भाव हो और वे अविरोधी ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार विद्वान लोग सदा से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करते हुए उनकी उपासना करते रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी ज्ञान और उपासना में दत्तचित्त रहो। सब लोगों के संकल्प, निश्चय, अभिप्राय: एक से हों, सबके मनमें एक सी उच्च भावना पायी जाय और सब लोग सहयोग पूर्वक अच्छी तरह से कार्यों को करे।

'अथर्ववेद' में भी यह समन्वययुक्त भावों और सहयोग का आदेश असंदिग्ध रूप से दिया गया है—

संज्ञानन्न स्वेभिः सज्ञानमरणेममिः।
सज्ञानमाश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छताम्।
स जानामहे मनसा सं चिकित्वा मा युत्स्महि मनसा दैव्येन।
मा धोषा उत्थुर्वहुले विनहिते मेषुः सप्तदिन्द्रस्याहन्यागते॥

अर्थात्—सब लोग एक मत हों प्रतिकूल बातें करने वाले भी परस्पर में अनुकूल हो जायें। हे सर्व शक्तिमान परमात्मा! अपने

पराये दोनों प्रकार के मनुष्यों की समान मनोवृत्तियाँ हों। हम अपने मन को दूसरे के मन के साथ जोड़ें, मिलकर सत्कार्य करें।

पाठकों को अनेक मन्त्र इसके विपरीत भी मिलेंगे, जिनमें शत्रुओं के नाश की उनका धन और पशु छीन लेने की, उनकी हर तरह से दुर्गति की बात कही गयी है। विशेष रूप से अथर्ववेद में तो 'शत्रुनाश' के अनेक मन्त्र, तन्त्र और गूढ़ उपायों का वर्णन किया गया है। पर वहाँ उनका आशय विशेष परिस्थिति और विशेष व्यक्तियों से ही है। उनको सार्वजनिक रूप से ग्रहण करने और प्रचार करने की बात नहीं है। जैसे अन्यायी और अत्याचारी कौरवों के साथ युद्ध करने का समर्थन सबसे अधिक भगवान् कृष्ण ने किया और युद्ध-काल में स्वयं तरह-तरह की गुप्त योजनाओं, चालाकियों और असत्यपूर्ण दिखलाई पड़ने वाली युक्तियों से भी काम निकाला, उसी प्रकार वेद में धर्म-विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रुओं, यातुधानों, राक्षसों के विरुद्ध ही प्रायः शत्रु-भाव के उद्‌गार प्रकट किये गये हैं। अन्यथा संसार के सामान्य मनुष्यों को वेद भगवान् का उपदेश समन्वय, सहयोग, सङ्गठन, न्याय और सत्य के अनुकूल आचरण का ही है।

वेद और पशुहिंसा—

अनेक लोग वेदों के पशुहिंसा होने का आरोप करते हैं। कुछ भाष्यकारों ने वैदिक सूक्तों का अर्थ करते हुए, पशुओं के मांस आदि से आहुति देने की बात लिखी है। पर जब हम मूल संहिताओं पर विचार करते हैं तो यही मानना पड़ता है कि वेदों ने तो हिंसा के बजाय अहिंसा का उपदेश दिया है और असहाय प्राणियों, पशुओं की रक्षा को परम धर्म माना है। इसलिये अगर किसी भाष्यकार ने अथवा किसी शाखा-वालों ने वैदिक मंत्रों का पशुहिंसात्मक अर्थ किया है तो इसका कारण उसका व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक विचार ही रहा होगा। जिस प्रकार वर्त-मान समय में हम भगवद्‌गीता के ज्ञान, भक्ति, कर्म, वैराग्य, अहिंसा के समर्थक विभिन्न भाष्य देख रहे हैं उसी प्रकार वेदों के भी लोगों ने

स्वमतानुयायी अलग-अलग तरह से भाष्य बनाये थे। मध्यकाल में भारत में तान्त्रिक सम्प्रदायों का बड़ा जोर रहा था और वे बलिदान आदि को अपने धर्म का अङ्ग मानते थे। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के समर्थन के लिये वेद-मन्त्रों के वैसे ही अर्थ कर दिये हैं। प्राचीन काल में रावण को वेदानुयायी लिखा है, पर वह कदाचित् वाममार्गी भी था, इसलिये जहाँ वेद में सर्वत्र घृत, सोम, जौ, तिल आदि की आहुति देने को बतलाया है, वहाँ मेघनाद आदि राक्षसों के लिये रामायण में सदैव पशु-अङ्गों द्वारा ही हवन करने की बात लिखी है। ऐसे व्यक्तियों को 'अथर्ववेद' में एक स्थान पर साफ शब्दों में 'मूर्ख' और 'निन्दनीय' लिखा है।

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गौरङ्गैः तुरुधायजन्त।
य इमं यज्ञ मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥
(काण्ड ७५-५)

"अविवेकशील और मूढ़ यजमान पशु-अंगों से हवन करते हैं, यह निश्चय ही मूर्खता-पूर्ण और निन्दनीय है। अपने से आत्मयज्ञ को करने वाले महापुरुष को बतलाइये। वे ही परमात्मा के सत्य-स्वरूप का उपदेश करने योग्य हो सकते हैं।"

यज्ञ-विषय का विशेष रूप से विवेचन करने वाले "यजुर्वेद" में कहा है—

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान्। अध्याय (१९-२०)

"पशुओं द्वारा पशुओं अर्थात् पशुत्व को प्राप्त होता है। पुरोडाशों से हवियों (अन्नादि) को प्राप्त होता है। इसी प्रकार छन्द (वेद-मन्त्र) से छन्द को, सामधेनियों (समिधा आदि) से सामधेनियों को याज्यों से याज्यों को और वषट्कारों से वट्कारों को प्राप्त होता है।

एक अन्य स्थान पर कहा गया है—

पशुन पाहि गां मा हिंसी, अजां, मा हिंसी ।
अविं मा हिंसी, इमं मा हिंसी द्विपादं पशुं ।
मा हिंसीरेकशफं पशुं मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि ॥

"पशुओं की रक्षा करो, गाय को मत मारो, बकरी को मत मारो भेड़ को मत मारो, दो पैर वाले मनुष्य पक्षी आदि) को मत मारो एक खुर वाले पशुओं (घोड़ा, गधा आदि) को मत मारो, किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो ।"

"ऋग्वेद" में गौ की उपयोगिता बतला कर उसकी रक्षा का इन शब्दों में आदेश दिया है—

सूयवसाद भगवती हि भूयाः अथो वय भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानी पिब शुद्धमुदकमाचरन्ति ॥

(१-१६४-४०)

हे अघ्न्ये (हिंसा के अयोग्य) भाग्यवती धेनु ! तू तृण (घास) सेवन करने वाली है । हमको भी भाग्यशाली बना । तू घास खाती हुई निर्मल जल पीने वाली हो ।"

यः पोरषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्ये न पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्यायाः भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

(ऋ० १०-८७-१६)

जो राक्षस मनुष्य का घोड़े का और गाय का मांस खाता है, तथा दूध की चोरी करता हो उसके सिर को कुचल देना चाहिये ।"

'अथर्ववेद' (काण्ड १२ सूक्त ५) में गोहिंसक की दुर्गति का ऐसा भीषण और रोमांचकारी चित्र खींचा है, कि उसे पढ़कर पापी से भी पापी व्यक्ति का दिल काँप जाता है । सर्वोपयोगी गौ आदि पशुओं के घातक का सर्वस्व नाश हो जाता है और उसे तीन लोक में कहीं भी टिकने के लिए स्थान नहीं मिलता ।

वेदों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के सैकड़ों स्पष्ट आदेश होते हुए और प्राणीमात्र को आत्मवत् देखने का उदेपश होने पर भी यह कहना कि वेद ने 'यज्ञ' जैसे समाज के आधार-स्वरूप परम-पवित्र कृत्य में हिंसा का विधान किया है, विवेक के विरुद्ध बात है। इस विषय में अनेक लोगों को भ्रम होने का यह भी कारण है कि वेद-भाषा मे एक एक शब्द के अनेक अर्थ लिये जाते हैं, अर्थात् उसके शब्द बहुत व्यापक आशय रखने वाले होते हैं। उदाहरणार्थ गौ या गाय (गो) शब्द का प्रयोग केवल गाय (पशु) के लिए नहीं किया गया है, पर उससे उत्पन्न घी, दूध, दही गोबर, गोमूत्र, बछड़ा बछिया आदि सबके लिये प्रयोग में आ सकता है। इसी प्रकार 'अज' का अर्थ बकरा, पुराना अन्न और अजन्मा अर्थात् आत्मा भी माना गया है। इसके सिवा विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तरह-तरह की जड़ी-बूटियों से हवन करने का भी विधान है और आयुर्वेद के ग्रन्थों में बहुसंख्यक जड़ी-बूटियों के ऐसे नाम दिये गये हैं जिनका अर्थ पशु भी होता है जैसे वृषभकन्द नाम की औषधि का नाम केवल वृषभ (बैल) लिखा है। अश्वगंधा का उल्लेख 'अश्व' (घोड़े) के नाम से ही किया गया है। इसी प्रकार कुत्ता घास के लिए 'श्वान' महिषाक्ष या गुग्गुल के लिए 'महिष' बाराहीकन्द के लिए 'बाराह' मूषाकर्णी के लिए 'मूषक' आदि शब्द लिख दिये गये हैं। फलों और औषधियों के गूदे के लिए 'मांस' शब्द लिखा है। 'भाव प्रकाश' में एक स्थान पर आम के 'मांस', 'अस्थि, 'मज्जा' का जिक्र किया गया है। ऐसे कारणों से भी प्राचीन ग्रन्थों के अनेक वाक्यों के अर्थ करने में हिंसा की बात गलती से कह दी जाती है। इस विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों का मूल उपदेश हिंसा का नहीं हो सकता। उनके मन्त्रों का जहाँ कहीं हिंसात्मक अर्थ किया गया है वह या तो हिंसावादी सम्प्रदायों द्वारा शब्दों की खींचातानी करके निकाला गया है या शब्दों के अर्थ में भ्रम हो जाने के कारण उत्पन्न हो गया है। वास्तव में वेदों ने प्राणि मात्र पर करुणा, दया और उनके हित करने का ही आदेश दिया है।

चरित्र और नीति

चरित्र और नीति के सम्बन्ध में वेदों का आदर्श बहुत ऊँचा है। यह ठीक है कि उस समय भी ऋषियों, महात्माओं और सज्जन पुरुषों के साथ राक्षस, दस्यु, तस्कर, चोर, घातक आदि दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति पाये जाते थे, पर वेद में सर्वत्र उनकी निन्दा पायी है और उनको समाज का शत्रु मान कर उनके नाश की प्रार्थना की गयी है। वैदिक काल में सभी धार्मिक व्यक्तियों का दृढ़ विश्वास रहता था कि देवगण सदैव उनके आस-पास रहते हैं, इसलिए अगर वे कोई पाप-कर्म करेंगे तो उसका दण्ड उनको अवश्य भुगतना पड़ेगा। इस भावना के फलस्वरूप उनका जीवन अधिकांश में सत्य, न्याय, दया धर्म के नियमों के अनुकूल ही रहता था। समाज में सुख तथा शान्ति का वातावरण बना रहता था। समाज के व्यक्तियों में समानता और प्रेम का भाव पाया जाता था और वे एक दूसरे की हर प्रकार से सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। "ऋग्वेद में कहा गया है।

मोघमन्नं विदन्ते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीम वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋ० १०-११७-:)

जिसका मन उदार नहीं है उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवगण को (परोपकारार्थ) देता है और न मित्रों को देता है और स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है।'

वेदकालीन आर्यों ने मोक्ष को प्रधान मानते हुए भी सांसारिक जीवन की उपेक्षा नहीं की थी, क्योंकि वे भली प्रकार जानते थे कि जो व्यक्ति प्रत्यक्ष जीवन को सज्जनोचित और कार्यक्षम रूप से व्यतीत नहीं कर सकता वह अपरोक्ष जीवन को किस प्रकार श्रेष्ठ बनाने का दावा कर सकता है! इसलिए उन्होंने जो नियम निर्धारित किये थे वे पूर्ण

न्याय पर आधारित थे जिससे समाज के सब व्यक्तियों को प्रगति करने में समान रूप से सुविधा प्राप्त हो सके। यजुर्वेद में कहा गया है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा: ।
एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

(४०-२-२)

अर्थात् "इस जगत् में परमात्मा को सदैव सर्वत्र उपस्थित समझकर किसी के भी धन की इच्छा न करो, किन्तु उतने से ही निर्वाह करो जितना उसने न्यायानुकूल तुम्हारे लिये स्थिर किया है।" आजीवन इसी मार्ग पर चलने और आचरण करने से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है, और कोई दूसरा उपाय नहीं।

संसार में प्रत्येक प्राणी को भोजन और निवास स्थान की आवश्यकता होती है। मनुष्यों को इन दो चीजों के अतिरिक्त वस्त्र तथा गृहस्थी सम्बन्धी कुछ सामग्री जैसे बर्तन आदि की भी अनिवार्य रूप से आवश्यकता मानी गई है। अपने अस्तित्व को स्थिर रखने तथा विकसित करने के लिए इन चारों वस्तुओं की प्रत्येक मनुष्य को समान रूप से आवश्यकता है। पर आज देखा जा रहा है कि मनुष्य की प्राथमिकता और अनिवार्य आवश्यकता के पदार्थों पर कुछ चालाक लोगों ने छल, बल, कौशल से अधिकार जमा लिया है और वे उसका दुरुपयोग करते हैं। इसी के फलस्वरूप इस समय समाज में असन्तोष और अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है और तरह-तरह के दोषों की वृद्धि हो रही है। पर वैदिक-युग में आरम्भ से ही प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और न्याय के अनुकूल आचरण की शिक्षा दी जाती थी और उनके सामने 'असतो मा सद्गमय-(हे परमात्मन् ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो) का आदर्श रखा जाता था। इसके फल से सभी लोग बिलकुल सीधे साधे ढंग

पर जीवन-निर्वाह करने से सन्तुष्ट रहते थे। और समयानुसार जो कुछ भी सुख-दुःख की परिस्थिति उत्पन्न होती थी, उसे सब सम्मिलत रूप से संतोष और प्रेम-पूर्वक सहन करते थे। इस कारण समाज में राग-द्वेष और वैमनस्य की उत्पत्ति नहीं होने पाती थी और सभी व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति कर सकने में समर्थ होते थे। पर जो लोग आजकल के समान धन को ही सब कुछ समझकर उसके पीछे दौड़ते रहते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए हर तरह का जघन्य काम करने को भी तैयार रहते हैं, उनकी कभी तृप्ति नहीं होती। क्योंकि वेद में कहा है—

एकपाद भूयो द्विपदो द्वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामिसरे संपश्यन्पंक्तीरुपतिष्टमाना।

(ऋ० १०-११७-८)

"एक गुणा धन रखने वाला अपने से दुगुने धन रखने वाले के मार्ग पर आक्रमण करता है, दुगुने धन वाला तिगुने धन वाले के पीछे दौड़ता है और चौगुने धन वाला अपने से दुगुने धन वाले की महत्ता प्राप्त करने की कामना करता है। अर्थात् प्रत्येक अपने से अधिक धन वाले मनुष्य को देखकर उसकी समानता करने की अभिलाषा करता है।" इस प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता का कहीं अन्त नहीं होता और एक ही समुदाय या समाज के व्यक्तियों में पारस्परिक शत्रुता के भाव जागृत होने लगते हैं। इसलिए लोगों को उपदेश दिया गया है कि—

समानीं प्रपा सत वोऽन्नभागाग समाने योक्त्रै सह वो युनिज्म।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥

(अथर्व० ३-३०-६)

तुम सब मनुष्यों के जल स्थान एक समान हों, तुम सब अन्न को एक समान परस्पर में बाँट लो। मैं तुम सबको एक ही बन्धन में बाँधता हूँ, अतएव तुम सब मिलकर कर्म करो, जैसे रथ के पहिये सब ओर एक नाभि में लगे काम करते हैं।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा
(यजु० ३६-१८)
समीक्षामहे ।

'हे परमात्मन ! मेरी दृष्टि दृढ़ कीजिए जिससे सब प्राणी मुझे मित्र-दृष्टि से देखें । इसी तरह मैं भी सब प्राणियों को मित्र-दृष्टि से देखूँ और हम सब प्राणी परस्पर एक-दूसरे को मित्र-दृष्टि से देखें ।"

इस प्रकार वेदों में स्थान-स्थान पर काम, क्रोधादि मानसिक विकारों तथा संकीर्णता को त्याग कर सत्य और उदारता व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है । विद्वान् लोग अपनी वाणी को मन से शुद्ध करके बोलते हैं, वहीं पर लक्ष्मी और मित्रता ठहरती है । विद्वान् लोग भली प्रकार जानते है कि सत्य और असत्य वचन एक दूसरे के विपरीत होते हैं । इनमें से सत्य सरल और सीधे स्वभाव से कहा जाता है और कल्या-णकारी होता है । (ऋग्वेद १०-७-१-२ तथा ७-१०-४-२) वेदों में मोह, लोभ कामवासना, नशा, जुआ आदि दुर्गुणों की जगह-जगह निन्दा की गयी है और ऐसे व्यक्ति को लोक तथा परलोक में दण्डनीय बतलाया है । व्यक्तिगत स्वार्थ और लालच को त्यागकर समाज के सब व्यक्तियों के साथ प्रेम, सहानुभूति, सहयोग और परोपकार के व्यवहार को ही प्रशंसनीय और आचरणीय बतलाया गया है । स्वार्थी, इन्द्रियपरायण और दूसरों को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति को बहुत निन्दनीय और हेय कहा है ।

सच पूछा जाय तो वेदों का वास्तविक आदर्श 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही है । वेदों से तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति का जो कुछ विवरण ज्ञात होता है, उससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस काल का चारित्रिक और नैतिक मापदण्ड बहुत ऊँचा था और लोगों में त्याग की उच्च कोटि की भावना पायी जाती थी । वेदो में सर्व प्रधान कर्म 'यज्ञ' बतलाया गया है और इसका आशय केवल कर्मकाण्ड से नहीं है । 'यज्ञ' का सबसे बड़ा उद्देश्य समाज-सेवा या परोपकार के लिए 'स्वार्पण' की भावना थी । अजुर्वेद

में कई जगह 'राजस्व दक्षिणा' वाले यज्ञों का उल्लेख है। पिछले जमाने में चाहे इस प्रकार के यज्ञों को स्वार्थी लोगों ने अपने लाभ का व्यवसाय बना लिया हो, पर आरम्भ में वेदों में इस सम्बन्ध में जो आदेश दिया गया था उसमें समाज के सब व्यक्तियों के कल्याण, सेवा और हित की भावना ही निहित थी। इसलिए उस युग में यज्ञ को सबसे बड़ा 'धार्मिक कार्य' माना गया था और जो लोग स्वयं 'यज्ञ' द्वारा समाज का सचालन, पालन और अभ्युदय साबित करते थे, वही ब्राह्मण के पूजनीय पद के अधिकारी होते थे। इसके विपरीत जो धन के लोभी थे और उचित अथवा अनुचित सब प्रकार के उपायों से छल कपट का सहारा लेकर भी अपने लिए सम्पत्ति बटोर कर रखना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लेते थे उनको 'पणि' (वणिक् या बनिया) के नाम से पुकारा जाता था, जो उस समय एक घृणित शब्द माना जाता था। वेदानुयायी लोगों का तीसरा वर्ण 'वैश्य' इन 'पाणियों' या 'बनियों' से भिन्न था। 'वैश्य' वह था जो समाज की आर्थिक व्यवस्था को ठीक रखने के लिए खेती, शिल्प और विवरण के कार्यों की न्यायानुकूल पूर्ति करता था। इसके विपरीत 'पणि' का अर्थ था बेईमान और ठग व्यापारी जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है—

न्यक्रतून ग्रथिनो मृध्रवाच पणीरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान।
प्र प्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून॥

(७-६-३)

"हे अग्नि देव ! तुम यज्ञशून्य; ठगी का व्यवहार करने वाले, हिंसा-युक्त वचन कहने वाले श्रद्धा-रहित, ज्ञानहीन यज्ञ से विमुख पणि रूप दस्युओं को दूर हटाओ और उनको सब प्रकार से हेय बनाओ।"

इस प्रकार दस्युओं राक्षसों की निन्दा, नाश और उनकी सम्पत्ति को छीन लेने वाले वाक्य वेदों में बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं, जिससे अनेक पाठकों को तत्कालीन व्यक्तियों के घोर स्वार्थी ओर ईर्ष्यालु होने

का संदेह हो जाता है। पर इसका वास्तविक कारण यही है कि उस युग में वेदों के ईश्वरीय आदेशों को समझने और पालन करने का प्रयत्न एकमात्र आर्य जाति ने ही किया था। उनमें से भी अनेक स्वार्थी और लोलुप्त वृत्ति के व्यक्ति त्याग और परोपकार के मार्ग को कठिन समझ कर समाज से पृथक् होकर नीच कर्मों में प्रवृत्त हो गये थे। इनके सिवाय पृथ्वी पर अन्य अनेकों जनसमुदाय थे जो केवल पशुओं की तरह खाना, साना, और सन्तानोत्पादन के सिवा अन्य मानवोचित कर्त्तव्यों से अनजान और विमुख थे। ये स्वयं विधिपूर्वक कार्य कर सकने में अक्षम थे और दूसरे परिश्रमी तथा पुरुषार्थी मनुष्यों की कमाई को लूट-खसोट कर भक्षण कर जाना ही सबसे सहज और लाभजनक काम समझते थे। ये पशुओं से भी अधम लोग अन्य भले मनुष्यों और गौ आदि पशुओं को मारकर अपना पेट भरने में भी कुछ बुराई नहीं समझते थे। ऐसे ही निकृष्ट और नाशकारी लोगों को वेद में समाज का शत्रु बतलाया गया और मानव-जीवन के हित और प्रगति के लिए उनको नष्ट करने की आज्ञा दी है।

× × × ×

जैसा हमने आरम्भ में लिखा है—वेदों के अधिकांश मन्त्रों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से विभिन्न अर्थ होते हैं और इस कारण हमारे इस वर्तमान संस्करण में लौकिक अर्थ की प्रधानता होने पर भी, हम यह असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि वेदों का मूल लक्ष्य मनुष्यों की आध्यात्मिक प्रगति और आत्मकल्याण ही है। वेद के सत्य उपदेश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय और समुदाय आदि से बहुत ऊपर है। वे मनुष्य की सृष्टि के मूल स्वरूप का ज्ञान प्रदान करते हैं और उसी के अनुसार आत्मज्ञान के अनुकूल जीवन व्यतीत करने का मार्ग-प्रदर्शन करते हैं।

× × × ×

वेदों का प्रकाशन-कार्य बहुत भारी है और बिना एक विशाल योजना के उसकी पूर्ति हो सकना सम्भव नहीं। इतने विशाल ग्रन्थ का लिखकर तैयार करना और छाप सकना किसी अकेले व्यक्ति की शक्ति से बाहर की बात है। हमने अपने सीमित साधनों से जहाँ तक सम्भव था इसे उपयोगी रूप में पूरा करने का प्रयत्न किया है। इस कार्य में हमको अपने जिन सहयोगियों तथा अन्य विद्वान् पुरुषों से सहायता प्राप्त हुई हैं उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। लेखन कार्य में सबसे अधिक सहयोग श्री दाऊदयालजी गुप्त से प्राप्त हुआ है उनके सतत परिश्रम के बिना इसका इतने अल्प समय में तैयार हो सकना सम्भव न था, जिनके लिए गुप्ता जी हमारे हार्दिक धन्यवादके पात्र हैं। इसके सशोधन और मुद्रण कार्य का भार श्रीसत्यभक्त जी को दिया गया था। इतना बड़ा कार्य किसी एक स्थानीय प्रेस द्वारा शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता था, इसलिए तीन विभिन्न प्रेसों में इसे छपाने की व्यवस्था करनी पड़ी। इन सबकी देखभाल करना और ग्रन्थ को ठीक समय पर सुन्दर रूप में तैयार करा देना एक बहुत श्रमसाध्य कार्य था, जिसे उन्होंने दिन-रात परिश्रम करके पूर्ण किया, अतः उन्हें भी धन्यवाद देना हमारा कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त जिन अनेक ग्रन्थों से प्रस्तुत सस्करण का रूप तैयार करने में सहायता मिली है, उन सबके लेखकों के प्रति भी हम अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री तपोभूमि
मथुरा।

॥ ॐ ॥

प्रथम अष्टक

॥ प्रथम अध्यायः ॥

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥२

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥३

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ॥४

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥१

अग्रणी प्रकाशित, यजककर्त्ता, देव-दूत, यत्नमुक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ ।१। पूर्वकाल में जिसकी ऋषियों ने उपासना की थी तथा अब भी ऋषिगण जिसकी स्तुति करते हैं, वह अग्नि देवगणको यज्ञमें बुलाता है ।२। अग्नि धनों को दिलाने वाला, पोषक तथा वीरत्व प्रदान करने वाला है ।३। हे अग्ने तू जिस यज्ञ में सर्वत्र विराजमान हैं उसमें विघ्न सम्भव नहीं । वह यज्ञ स्वर्गस्थ देवगण को तृप्त करता है ।४। हे अग्ने ! तू हवि वाहक, ज्ञान-कर्म का प्रेरक, अमर यशस्वी देवताओं सहित यज्ञ को प्राप्त हो ।५।

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ॥६

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि । ७

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥८

स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥९॥२।

हे अग्ने ! तू हविदाता का कल्याण करने वाला है । अवश्य ही वह कर्म तुझे प्राप्त होता है ।६। हे अग्ने ! हम दिन-रात-रात अपनी बुद्धि और हृदयसे नमस्कार नूर्वक तेरा सामीप्य प्राप्त करते हैं ।७।हे अग्ने तू यज्ञको प्रकट करने वाला. सत्य-रक्षक, स्वयं प्रकाशित तथा सहज ही वृद्धि को प्राप्त होता है ।८। हे अग्ने ! पिता जैसे पुत्र के पास स्वयं ही पहुँच जाता है, वैसे ही तू हमको सुगमता से प्राप्त हो जाता है । इसलिये तू हमारे लिए मङ्गलदाता बन ।९।

(२)

सूक्त २

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्र: देवता–वायु: इन्द्रवायू मित्रावरुणौ । छन्द–गायत्री)

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृता: । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ।।१
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार: । सुतसोमा अहर्विद: ।।२
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ।।३
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोमिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ।।४
वायविन्द्रश्च चेतथ: सुतानां वाजिनीवसू । सावा यातमुप द्रवत् ।।५।३

हे प्रिय दर्शन वायो ! यहाँ आ ! तेरे निमित्त यह सुसिद्ध सोम रखा है, उसे पीते हुए हमारे वचनोंपर ध्यान दो ।१। हे वायो ! यह सोम निष्पंन करने वाले और इसके गुणों को जानने वाले स्तोता तेरा गुण-गान करते हुए स्तवन करते हैं ।२। हे वायो ! तुम्हारी मर्मस्पर्शी वाणी सोम की कामना से दाता को शीघ्र प्राप्त होती हैं ।३। हे इन्द्र वायो ! यहाँ सोमरस प्रस्तुत हैं । यह तुम्हारे ही लिए है । अत: अन्नादि सहित आओ ।४। हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम अन्न सहित सोमों के ज्ञाता हो । अत: शीघ्र ही आओ ।५।३।

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वित्था धिया नरा ।।६
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ।।७
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ।।८
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ।।९।४

हे वायो और इन्द्र ! इस सिद्ध किए हुए सोम रस के पास शीघ्र आओ, तुम दोनों ही योग्य पदार्थ को प्राप्त करते हो ।६। पवित्र बल वाले मित्र और शत्रु नाशक वरुण का मैं आह्वान करता हूँ । यह ज्ञान और कर्म को प्रेरित करने वाले हैं ।७। ये मित्र, वरुण सत्य से वृद्धि को प्राप्त होने वाले सत्य स्वरूप तथा सत्य से विशालता को प्राप्त यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हैं ।८। ये मित्र वरुण, शक्तिशाली, सर्वत्र व्याप्त हैं और जल द्वारा कर्मों से प्रेरित करते करते हैं । सब कर्मों और अधिकारों को वश में करने वाले हैं ।९।४।

सूक्त ३

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, देवता-अश्विनी, इन्द्र, विश्वेदेवः सरस्वती । छन्द-गायत्री)

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥२
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥३
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥५
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६।५

हे बड़े बाहु वाले, शुभ कर्मों के सम्पादक द्रुत कार्यकारी अश्विद्वय ! यज्ञ के इस अन्न से तृप्ति को प्राप्त होओ ।१। अश्विदेवो ! तुम विभिन्न कर्मों को सम्पन्न करने वाले, धैर्य और बुद्धि हो । अतः अपनेमन करके हमारी प्रार्थना पर ध्यान दो ।२। हे शत्रु संहारक वीरो ! तुम असत्य से बचने वाले, दुर्धष मार्ग पर चलने वाले हो इस छाने हुए सोम रस को पीने के लिए यहाँ आओ ।३।हे कांतिमान् इन्द्र ! दशों अंगुलियोंसे सिद्ध किए पवित्रता-पूर्वक तेरे निमित्त रखे इस सोमके लिए यहाँ आ ।४। हे इन्द्र ! बुद्धियों से प्रार्थना किया हुआ तू सोम सिद्ध करने वाले स्तोता के स्तवन से उसे प्राप्त हो ।५। हे अश्वयुक्त इन्द्र तू हमारी प्रार्थनायें सुनने को शीघ्र यहाँ आ और यज्ञ में हमारी हवियों को ग्रहण करो ।६। (५)

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७

विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥८
विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१०
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥११
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥१२।६

हे विश्वेदेवताको ! तुम रक्षक, धारक और दाताहो । अतः इस हविदाता के यज्ञको प्राप्त होओ ।७। हे विश्वेदेवताओ ! तुम कर्मवान् और शीघ्रता करने वाले हो आप सुर्य किरणों के समान ज्ञान प्रदान करने को आओ ।८। हे विश्वेदेवताओ ! तुम किसी से भी न मारे जाने वाले, चतुर, निर्वैर तथा सुख-साधक हो । हमारे यज्ञ को प्राप्त होकर अन्न ग्रहण करो ।९। हे पवित्र करने वालो सरस्वती ! तू बुद्धि द्वारा अन्न धन को देने वाली है । हमारे इस यज्ञ को सफल कर ।१०। सत्य कर्मों की प्रेरक, उत्तम बुद्धि को प्रशस्त करने वाली यह सरस्वती हमारे यज्ञको धारण करने वाली है ।११। यह सरस्वती विशाल ज्ञान-समुद्र को प्रकट करने वाली हैं । यही सब बुद्धियों को ज्ञान की ओर प्रेरित करती हैं ।१२। (६)

सूक्त ४ [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदघामिव गोदुहे । जुहुमसि द्यविद्यवि ॥१
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥२
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥३
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥५।७

दोहन के लिए गाय को बुलाने वाले के समान, अपनी रक्षा के लिए हम उत्तमकर्मा इन्द्र का आह्वान करते हैं ।१। हे सोमपायी इन्द्र ! सोमपान के लिए हमारे यज्ञका सामीप्य करो । तुम ऐश्वर्यवान् प्रसन्नहोकर हमको गवादि

धन देने वाले हो ।१। तुमसे निकट सम्पर्क प्राप्त बुद्धिमानों के आश्रय में रह कर हम तुम्हें जानें तुम हमारे विरुद्ध न होओ, हमें त्याग न कर तुमहमें प्राप्त हो ।३। हे मनुष्यों तुम अपराजित, कर्मवान् इन्द्र के पास जाकर अपने बांधवों के लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करो ।५। इन्द्र के उपासक उसी की उपासना करते हुए इन्द्र के निन्दकों को देश से दूर जाने को कहें जिससे वे दूर से भी दूर भाग जावें ।५। (७)

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन् मन्दयत्सखम् ॥७

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयोमः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥६

यो रायो वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत।१०।८

हे शत्रुनाशक इन्द्र ! तुम्हारे आश्रयमें रहनेसे शत्रु ओर मित्र सभी हमको ऐश्वर्यवान् बताते हैं ।६। यज्ञ को शोभित करने वाले, आनन्दप्रद, प्रसन्नता-दायक तथा यज्ञ सम्पन्न करने वाले सोम को इन्द्र के लिए अर्पित करो ।७। हे सैंकड़ों यज्ञ वाले इन्द्र ! इस सोम-पान से वलिष्ठ हुए तुम दैत्यों के नाशक हुए । इसी के बल से तुम युद्धों में सेनाओं की रक्षा करतेहो ।८। हे शतकर्मा इन्द्र ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले तुमको हम ऐश्वर्य के निमित्त हविष्यांन भेंट करते हैं ।६। धन-रक्षक, दुःखोंको दूर करने वाले यज्ञ करने वालों से प्रेम करने वाले इन्द्र की स्तुतियाँ गाओ ।१०। (८)

सूक्त ५

(ऋषि–मधुच्छन्दा । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥३

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥४

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये सोमासो दध्याशिरः ॥५।६

हे स्तुति करने वाले मित्रो ! यहाँ आकर बैठो और इन्द्रके गुणोंका गान करो ।१। सब इकट्ठे होकर सोम-रस को सिद्ध करो और इन्द्र की स्तुतियाँ गाओ ।२। वह इन्द्र प्राप्त होने योग्य धन को हमें प्राप्त करावे तथा सुमति दे वह अपनी विभिन्न शक्तियों सहित हमको प्राप्तहो ।३। जिसके अश्व जुते रथ के सम्मुख डट नहीं सकते, उसी इन्द्र के गीत गाओ ।४। यह शोधित सोमरस, सोम पायी इन्द्र के पीने के लिए स्वतः ही प्राप्त हो जाता है ।५।   (६)

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥७
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥८
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ।९। मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ।।१०।१०

हे उत्तमकर्मा इन्द्र ! तू सोम पान द्वारा उन्नत होने के लिए सदा तत्पर रहता है ।६। हे स्तुत्य ! यह सोमरस मेरे शरीरमें रम जाय और तुझे प्रसंनता प्रदान करे । ज्ञानीजन तुझे सुखकारकहों ।७। हे शतकर्मा इन्द्र ! तू इन स्तोत्र मयी वाणियों से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ बढ़ ।८। जिसकी सामर्थ्यमें कभी कमी नही आती, जिसमें सभी बलों का समावेश है, वह इन्द्र सहस्रों के पालन करने की सामर्थ्य हमको प्रदान करे ।९। हे स्तुत्य इन्द्र ! हमारे शरीरों को कोई भी शत्रु हानि न पहुँचा सके, हमारी कोई हिंसा न कर सके । तू सभी प्रकार समर्थ है ।१०।
(१०)

सूक्त ६

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः देवता–इन्द्रः मरुतः इन्द्रश्च । छन्द–गायत्री)

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥१
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥३
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥४
वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु।५।११

सूर्य रूप में विद्यमान इन्द्र के अहिंसक रूप एव पदार्थ सम्बन्धित है। सब लोकों के प्राणी भी इसी से सम्बन्ध जोड़ते हैं।१। इस इन्द्रके रथ में लाल रङ्ग के शत्रु का मर्दन करने वाले वीर पुरुषों को सवार कराकर युद्धस्थल में ले जाने वाले घोड़े जुते रहते हैं।२। हे मनुष्यो! अज्ञानी को ज्ञान देता हुआ, असुन्दरको सुन्दर बनाता हुआ यह सूर्यरूप इन्द्र किरणों द्वारा प्रकाशित होता है।३। अन्न प्राप्ति की इच्छा से यज्ञोपयोगी हुए मरुद्गण गर्भ को बादल में रचने वाले हुए।४। हे इन्द्र! तुम दृढ़ दुर्गों के भी भेदक हो। तुमने गुफा में छिपी हुई गायों को मरुद्गण के सहयोग से प्राप्त किया।५।

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥६
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अविभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥७
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥८
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः॥९
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥१२

देवत्व प्राप्ति की इच्छा से स्तुति करने वाले उन ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी मरुद्गणों की अपनी प्रखर बुद्धि से स्तुति करते हैं।६। यह इन्द्र के सहगामी मरुद्गण निडर हैं और इन्द्र तथा मरुद्गण एक से ही तेज वाले हैं।७। इस यज्ञ में निर्दोष और यशस्वी मरुद्गणों के साथी इन्द्र को सामर्थ्यवान् समझकर पूजा की जाती है।८। हे सर्वत्र विचरने वाले मारुतो! तुम अन्तरिक्ष, आकाश या सूर्यलोक से यहाँ आओ। इस यज्ञ में एकत्रित सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं।९। पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष से धन प्राप्त कराने के निमित्त हम इन्द्र से याचना करते हैं।१०। (१२)

सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः। इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा। इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥३
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥५।१३

सोम-गायकों और विद्वानों ने मन्त्रों द्वारा इन्द्र की पूजा की। हमारी वाणी भी इन्द्र का स्तवन करती है ।१। इन्द्र अपने वचन मात्र से दोनों घोड़ों को एक साथ जोड़ते हैं। वह वज्र को धारण करने वाला और सुवर्णके समान रूपवान् हैं ।२। दूर तक दिखाई पड़नेके लिए इन्द्र और सूर्यको स्थापित किया और उसकी किरणों से अंधेरे रूप दैत्यको मिटाया ।३। हे प्रचण्ड योद्धा इन्द्र ! तू सहस्रों प्रकार के भीषण युद्धों में अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा कर ।४। हमारे साथियों की रक्षा के लिए इन्द्र वज्र धारण करता है। वह इन्द्र हमको धन अथवा बहुत से ऐश्वर्य के निमित्त प्राप्त हो ।५। (१३)

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥६
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥७
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥८
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्योति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥९
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः॥१०।१४

हे वीर एवं दाता इन्द्र ! हमारे निमित्त उस मेघ को छिन्न-भिन्न कर। तुम कभी भी हमारे लिए 'नहीं' नहीं कहते।६। वज्रित इन्द्र के दान की उपमा मुझे कहीं नहीं मिलती। उसकी अधिक उत्तम स्तुति किस प्रकार करें ? ।७। गौओं के झुण्ड में चलने वाले वैल के समान, वह सर्वेश्वर इन्द्र अपने बल से मनुष्यों को प्रेरित करते हैं ।८। वह इन्द्र पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों और ऐश्वर्यों का एक मात्र स्वामी हैं ।९। साथियों ! हम तुम्हारे कल्याण के निमित्त सबके अग्र-पुरुष इन्द्र का आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे हैं ।१०। (१४)

सूक्त ८ तीसरा अनुवाक

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री)

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥१
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा: रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता॥२
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं धना ददीमहि । जयेम युधि स्पृधः ॥३
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥४
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिगे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥५।१५

हे इन्द्र हमारे उपभोग के निमित्त उपयुक्त अन्न दिलाने वाला तथा रक्षा करने में समर्थ धन प्रदान करो ।१। उस धन के बल से बली हुए हम मुक्के के प्रहार द्वारा तथा तुम्हारे द्वारा रक्षित अश्वोंके सहयोगसे अपने देश से शत्रुओं को भगा दें ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा से उत्साहित हुए हम तीक्ष्ण अस्त्रोंको धारणकर विरोधियों पर विजय प्राप्त करें ।३। हे इन्द्र हम कुशल वीरों सहित सेनासे युक्त हुए तुम्हारी सहायता से अपने शत्रुओं को वशीभूत करें ।४। इन्द्र महान् और सर्वश्रेष्ठ तथा महिमावान् हैं, उस वज्रधारीका पराक्रम आकाशके समान विशाल है ।५। (१५)

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥६
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥७
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥८
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥९
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये॥१०।१६

रणक्षेत्र को प्रस्थान करने वाले, सन्तान की कामना से युक्त अथवा ज्ञान की चाहना वाले, सभी इन्द्रकी स्तुति से अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं ।६। सोम-पायी इन्द्र का ऐश्वर्य समुद्र के समान विशाल है। वह जिह्वा के जल के समान सदा एक रस रहता है ।७। इन्द्र की मीठी और सत्य वाणी बहुत से गो-धन की दाता तथा पके फल वाली शाखा के समान भरी पूरी है ।८।

हे इन्द्र ! तुम्हारी सामर्थ्य मुझ उपासक के लिए तुरन्त रक्षा करने वाली और अभीष्टदात्री है ।९। इन्द्र का गुणगान और स्तुतियाँ सोम-पान के लिये गायी जाती है ।१०। (१६)

सूक्त ९

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। देवता–इन्द्रः। छन्द–गायत्री)

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभि सोमपर्वभिः महाँ अभिष्टिरोजसा ॥१
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥२
मत्स्या सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सर्वनेष्वा ॥३
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम् ॥४
सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित् ते विभु प्रभु ॥५।१७

हे इन्द्र ! आओ। सोम-पान कर प्रसन्न होओ। तुम अपने बल के द्वारा पूजनीयहो ।१। प्रसन्नता-प्रद सोम को समस्त कार्यों और पुरुषार्थोंके करने वाले के निमित्ति सिद्ध करो ।२। हे सुन्दर रूप वाले सर्वेश्वर इन्द्र ! इस सोम के उत्सव में पधारो और स्तोत्रों से प्रसन्नता को प्राप्त हो ।३। हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो स्तुतियाँकी गई हैं, वे सभी तुमको प्राप्त हुई हैं ।४। हे इन्द्र ! विभिन उत्तम ऐश्वर्यों को हमारी ओर प्रेरित करो। क्योंकि तुम भी पर्याप्त स्वामी हो ।५। (१७)

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः तुविद्युम्न यशस्वतः ॥६
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥७
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥८
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥९
सुते सुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥१०।१८

हे अनन्त ऐश्वर्य वाले इन्द्र ! बल वीर्यसे सम्पन्न पुरुषों को कर्ममें उचित प्रेरणा दो ।३। हे इन्द्र ! गौ, बल, आयु से पूर्ण, अमर कीर्ति को हमें प्रदान करो ।७। हे इन्द्र महान् यश, सहस्र-संख्यक वन और रथोंसे पूर्ण एश्वर्य हमको दो ।८। ऐश्वय-स्वामी, स्तुत्य, गतिशील इन्द्र का स्तुति-पूर्वक धन-रक्षा के

लिए आह्वान करते हैं ।६। सोम के सिद्ध करने वाले स्थान में उपासक-गण इन्द्र को बुलाते हैं ।१०। (१८)

सूक्त १०

(ऋषि–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–अनुष्टुप्)

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणास्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१
यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३
एहि स्तोमाँ अभि स्वरा ऽभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥४
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥५
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६।१९

हे शतकर्मा इन्द्र ! गायक तुम्हारा यश गाते और पूजने वाले तुम्हें पूजते है, तथा स्तोता अपनी स्तुतियों के द्वारा तुम्हें उन्नत करते हैं ।१। एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाने वाले यजमान के अभीष्ट के ज्ञाता इन्द्र मरुद्गण सहित अभीष्ट वर्षण के निमित्त यज्ञ में पहुँचते हैं ।२। हे सोमपायी इन्द्र ! बालों वाले अपने अश्वों को रथ में जोतकर हमारी स्तुतियाँ सुनने को आओ ।३। हे इन्द्र! यहाँ आकर हमारी स्तुतियों का अनुमोदन करो । हमारे साथ गाओं और हमारे कार्यों का अनुमोदन करते हुए वृद्धिकारक बनो ॥ ४ ॥ शत्रु संहारक इन्द्र की वृद्धि के निमित्त स्तोत्रों का गान करो जिससे वह हम सबके मध्य आकर हर्ष-ध्वनि करे ।६। मित्रता, धन–प्राप्ति, और सामर्थ्य के

लिये हम इन्द्र से ही याचना करते हैं । वही इन्द्र हमको धनवान् और बलवान् बनाता हुआ। रक्षा करता है ।६। (१६)

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥८

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥९

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥१०

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिव ।
नव्यमायुः प्रसूतिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥११

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥१२॥२०

हे इन्द्र ! तुम्हारा दिया हुआ यश सब ओर फैल गया है । हे वज्रिन् ! गोशालाओं को खोलकर हमको बहुत-सा-गोधन प्राप्त कराओ ।७। हे इन्द्र ! आपकी क्रोधितावस्था में आकाश या पृथिवी कोई भी आपको धारण करने में समर्थ नहीं होते । तुम आकाश से वृष्टि करो और हमको गौएँ दो।८। हेसबकी स्तुति सुनने वाले इन्द्र ! मेरी भी सुनो । इन स्तुतियों को स्वीकार करो । स्तोत्र को अपने मित्र से भी अधिक निकटस्थ मानो ।९। हे इन्द्र ! हम जानते हैकि तुम महान् पुरुषार्थी हो । तुम युद्धकालमें हमारी स्तुतियों को सुनते हो । हे अभीष्टसाधक ! अपनी रक्षाके लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।१०। हे कुशिक के पुत्र तुम निष्पन्न सोम के पीने को यहाँ आओ । मेरी आयु की वृद्धि करते हुए इस ऋषि को सहस्र-संख्यक धन का स्वामी बनाओ ।११। हे स्तुत्य इन्द्र ! हमारी येस्तुतियाँ तुम्हारे सब ओर व्याप्त हैं । तुम बढ़ी हुई आयु वाले हो, इन स्तुतियों से तुम्हारी प्रीति हो ।१२। (२०)

सूक्त ११

(ऋषि–जेता माधुच्छन्दसः । देवता–इन्द्र । छन्द––अनुष्टुप्)

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त् समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३
पुरां भिन्दुर्युवा कवि रमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥४
त्वं वलस्य गोमतो ऽपावरद्रिवो विलम् ।
त्वां देवा अविभ्युषस तुज्यमानास आविषुः ॥५
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥६
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युत्तिर। ॥७
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८।२१

अन्तरिक्ष के समान विशाल, रथियों में श्रेष्ठ, अन्न के स्वामी तथा उपासकों की रक्षा करने वाले इन्द्र को हमारे स्तोत्र बढ़ाते हैं।१। हे बल के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारी मित्रता हमारे भयों को दूरकर हमें शक्तिशाली बनावे। तुम सदा विजय प्राप्त करते हो। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं।२। इन्द्र का दान विख्यात है। स्तोताओं को गवादि धन तथा बल देने वाला इन्द्र साधकों को निरन्तर देता ही रहता है।३। इन्द्र, स्तुत्य दुर्गों का भेदन करने वाले, युवा, मेधावी, महाबली, कर्मों के करने वाले, वज्रधारी प्रकट हुए।४।

हे वज्रिन् ! वृत्रि की गौओं वाली गुफा के खोले जाने पर पीड़ित देवताओं ने तुमसे अभय प्राप्त किया ।५। हे इन्द्र ! निष्पन्न सोम का गुण सबको बताकर तुम्हारे धन-दान के प्रभावसे फिर आया हूँ । हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करने वाले तुमको भले प्रकार जानते है ।६। हे इन्द्र! तुमने अपनी माया से ही उस मायावी दुष्ट पर विजय प्राप्त की । तुम्हारी इस महिमा को जो बुद्धिमान् जानते हैं, उनकी वृद्धिकरो ।७। अपने बलसे संसार पर शासन करने वाले इन्द्र का स्तोताओं ने यश गान किया । वे सहस्रों प्रकार से भी अधिक ऐश्वर्यों के दाता है ।८। (२१)

सूक्त १२ चौथा अनुवाक

(ऋषि–मेधातिथि काण्वः । देवता–अग्नि । छन्द–गायत्री)

अग्नि वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम्॥२
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥४
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः॥६।२२

हैम देवदूत आह्वानकर्त्ता, सब ऐश्वयों के स्वामी, यज्ञ के सम्पादन करने वाले अग्नि वरण करते हैं ।१। प्रजा-पालक, हवि-वाहक बहुतों के प्रिय अग्नि का मन्त्रों द्वारा यजमात्र आह्वान करते हैं ।२। हे अग्ने ! कुश विछाने वाले यजमान के लिए प्रदीप्त हुए तुम देवताओं को वुलाओ । क्योंकि तुम हमारे पूज्य होता हो ।३। हे अग्ने ! तुम देवताओं के दौत्यकर्ममें नियुक्त हो, इसलिये हव्य चाहने वाले देवों को बुलाओ और उनके साथ इस कुशासन पर प्रतिष्ठित होओ ।४। हे देदीप्यमान अग्ने ! तुम घृत से प्रदीप्त हुए हमारे शत्रुओंको भस्म करो ।५। मेधावी, गृह रक्षक, हवि-वाहक, और जूहू मुख वाले अग्निको अग्नि से ही प्रज्वलित करते हैं ।६। (२२)

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ।।७
यस्त्वमग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ।।८
यो अग्नि देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृलय ।।९
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ।।१०
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ।।११
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ।।१२।२३

मेधावी, सत्यनिष्ठ, शत्रुनाशक अग्नि की यज्ञ-कर्म में निकट से स्तुति करो ।७। हे अग्ने ! तुम देवदूत की जो यजमान सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करने वाले होओ ।८। हे पावक ! जो यजमान हवि देने के लिए अग्निके समीप जाकर उपासना करे, उसका कल्याण करो ।९। हे पवित्र अग्ने ! तुम प्रदीप्त हुए हमारे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के लिए देवताओं को यहाँ लाओ ।१०। हे अग्ने ! नवीन स्तोत्रों से स्तुति किए जाते हुए तुम हमको धन पुत्र और अन्न के प्रदाता बनो ।११। हे अग्ने ! तुम कान्तिमान् और देवताओं को बुलाने में समर्थ हो । हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ।१२। (२२)

सूक्त १३

(ऋषि—मेधातिथि काण्वः । देवता—अग्नि प्रभृति । छन्द—गायत्री)

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ।।१
मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ।।२
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ।।३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईलित आ वह । असि होता मनुर्हितः ।।४
स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ।५
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ।।६।२४

हे समिधा वाले अग्निदेव ! हमारे यजमान के निमित्त देवताओं को यज्ञ में लाकर उनका पूजन कराओ ।१। हे मेधावी अग्ने ! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, हमारे यज्ञ को देवताओं के उपभोग के लिए प्राप्त

कराओ ।२। मनुष्य-द्वारा प्रशंसित प्रिय अग्नि को इस यज्ञ स्थान में बुलाता हूँ । वह मधुजिह्व और हवि के सम्पादक हैं ।३। हे हमारे द्वारा स्तुत्य अग्ने ! तुम अत्यन्त सुखकारी रथ में देवताओं को यहाँ लाओ । तुम इस यज्ञमें मनुष्य द्वारा होता नियुक्त किये गये हो ।४। विद्वानो ! परस्पर मिली हुई कुशा को घृत-पात्र रखनेके लिए बिछाओ ।५। आज यज्ञ-सम्पादक के निमित्त यज्ञशाला के प्रकाशित द्वारको खोलें । वे कपाट अब परस्पर मिले हुए न रहें ।६। (२४)

नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ।।७
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्याकवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ।।८
इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हि सीदन्त्वस्रिधः ।।९
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ।।१०
अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ।।११
स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्रं देवाँ उप ह्वये ।।१२।२५

सुन्दर लगने वाले रात्रि को और दिन को कुशासन पर बैठने के लिए बूलाता हूँ ।७। उन सुन्दर जिह्वा वाले, मेधावी दोनों दिव्य होताओं (अग्नि और सूर्य) को यज्ञ में यजन-कार्य के निमित्त बुलाता हूँ ।८। इला, सरस्वती और मही ये तीनों देवियाँ सुख देने वाली हैं । वे इस कुशासन को ग्रहण करें ।९। मैं अग्रगण्य, विविध रूप वाले त्वष्टा (अग्नि) का इस यज्ञ मैं आह्वान करता हूँ वे हमारे ही रहें ।१०। हे वनस्पति देव ! यजमान को ज्ञान देने के निमित्त देवगण के लिये हवि-समर्पण करो । ।११। हे ऋत्विजो ! यजमान के में 'स्वाहा' कहते हुए इन्द्र के लिए यज्ञ करो । उस यज्ञ में हम देवताओं का आह्वान करते हैं ।१२। (२५)

सूक्त १४

(ऋषि—मेधातिथि । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—गायत्री)

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ।।१
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ।।२

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्नि पूषण भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम्॥ ३
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥४
ईलते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तर्बर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥५
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६।२६

हे अग्ने ! इन देवताओंको साथ लेकर सोम पीने के लिये आओ । हमारी पूजा और स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों । हमारे यज्ञ में देवताओं की पूजा करो।१। हे अग्ने ! तुमको कण्व-वंशी बुलाते रहे हैं । वे अब भी तुम्हारे गुण गाते हैं। तुम देवताओं के सहित आओ ।२। इन्द्र, वायु,बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा,भग, आदित्य और मरुद्गण का आह्वान करो ।३। तृप्त करने वाले प्रसंनता-पात्रों में ढकेहुए बिन्दु-रूप सोम यहाँ उपस्थित हैं ।४। कण्व-वंशी तुमसे रक्षा-याचना करते हुए, कुश बिछाकर हव्यादि सामग्रीं से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन करते हैं ।५।तुम्हारी इच्छा मात्र से रथमें जुड़ने वाले अश्व तुम्हें ले जाते हैं। ऐसे तुम सोम-पान के निमित्त यहाँ आओ ।६। (२६)

तान् यजत्राँ ऋतावृधो ऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७
ये यजत्रा य ईड्यास् ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥८
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान्देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९
विश्वेभिः सोम्यं मध्वऽग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः॥१०
त्वं होता मनुर्हितो ऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥११
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥१२।२७

हे अग्ने ! उस पूज्य तथा यज्ञ को बढ़ाने वाले देवताओं को पत्नी-सहित मधुर सोम-रसका पान कराओ ।७। हेअग्ने ! पूज्य और स्तुत्य देवगण तुम्हारी जिह्वाके मधुर सोम-रसका पान करें ।८। हे मेधावी अग्नि-रूप होता ! प्रातः काल जगने वाले विश्वेदेवताओं को सूर्यमंडल से पृथक् पर यहाँ ले आओ ।९। हे अग्ने ! तुम, मित्र इन्द्र, वायु के तेजके सहित, सोम-रस का पान करो।१०। हे अग्ने ! हमारे द्वारा प्रतिष्ठित होता-रूप तुम यज्ञ में विराजमान होते हो ।

अतः इस यज्ञको सम्पन्न करो ।११। हे अग्ने ! तुम स्वर्णिम और रक्त वर्णवाले अश्वों को अपने रथ में जोतकर देवताओं को यज्ञ में ले लाओ ।१२। (२८)

सूक्त १५

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—ऋतवः प्रभृतिः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र सोमं पिव ऋतुना त्वां विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥१
मरुतः पिवत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।
त्वं हि रत्नधा असि ॥३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥५
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूलभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥६।२८

हे इन्द्र ! ऋतु-सहित सोम-पान करो । ये सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट होकर तृप्तिके साधन बनें ।१। हे मरुद्गणो ! ऋतु के सहित पोत्रपात्र से सोम-पान करो । तुम कल्याणदाता मेंरे यज्ञको पवित्र करो ।२।हे त्वष्टा देव-पत्नियों सहित हमारे यज्ञ की भले प्रकार प्रशंसा करो और ऋतु—सहित सोम-पान करो । तुम अवश्य ही रत्नों के देने वाले हो ।३। हे अग्ने ! देवताओं को यहाँ लाकर दोनों यज्ञ-स्थानों में बैंठाओ । उनको विभूपित करते हुए सोम-पान करो ।४। हे इन्द्र ! ब्रह्मणाच्छसि पात्र से ऋतुओं के अनुसार सोम-पान करो । क्योंकि तुम्हारी मित्रता कभी टूटती नहीं ।५। हे अटल व्रत वाले मित्रावरुण ! दोनों कर्मों में लीन हुए ऋतु के सहित हमारे यज्ञ में आते हो ।६। (२८)

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीलते ॥७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेपु ता वनामहे ॥८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥९
यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥१०
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान् देवयते यज ॥१२॥२९

धन की इच्छा वाले यजमान सोम तैयार करनेके लिये पाषाण धारणकर धनदाता अग्निकी पूजा करते हैं।७। हेद्रविणोदा अग्ने! हमको सभी सुने गये धनोंको दो, हम उन धनों का देवार्पण करते हैं।८। वह धनदाता अग्नि सोमपानके इच्छुक हैं। उन्हें आहुतिदो और अपने स्थानको प्राप्त होओ। शीघ्रता करो। ऋतुओं सहित नेष्टा के पात्रसे सोम पिलाओ।९। हे धनदाता! ऋतुओं सहित आपको चतुर्थ बार अर्पित करते हैं। तुम हमारे लिये धन प्रदान करने वाले होओ।१०। अग्नि से प्रकाशित, निबमों में दृढ़, ऋतु के साथ यज्ञ के निर्वाहक अश्विनीकुमारो! इस मधुर सोम का पालन यज्ञ का निर्वाह करने वाले हो।११। देवताओं की कामना करने वाले यजमान के लिए देवार्चन।१२। (२९)

सूक्त १६

(ऋषि—मेघातिथिः काण्वः देवता—इन्द्रः छन्द—गायत्री)

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्रं त्वा सूरचक्षसः ॥१
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे ॥२
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥३
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः। सुते हि त्वा हवामहे ॥४
सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब ॥५॥३०

हे अभीष्ट-वर्षक इन्द्र! तुम अपने प्रकाशित रूप वाले अश्वों को सोमपान के लिए यहाँ लाओ।१। इन्द्र के दोनों घोड़े उन्हे सुखदायक रथ में बिठाकर घी से स्निग्ध धान्य के निकट ले आवें।२। हम उषाकाल में इन्द्र का आह्वान करते हैं। यज्ञ-सम्पादन कालमें सोम-पान करने को इन्द्र का आह्वान करतेहैं।३। हे इन्द्र! अपने लम्बे केश वाले अश्वों के साथ यहाँ आओ। सोमरस छन कर तैयार हो जानेपर हम तुम्हारा आह्वान करते हैं।४। हे इन्द्र! सोम-रस के लिए हमारे स्तोत्रों से यहाँ आकर प्यासे मृग के समान सोम-पान करो।५। (३०)

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिग ॥६
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः । अथा सोम सुतं पिब ॥७
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥८
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः।९।३१

हे इन्द्र ! यह परम शक्ति वाले, निष्पन्न सोम कुशासन पर रखे हैं, तुम उन्हें शक्ति-वर्द्धन के निमित्त पिओ ।६। हे इन्द्र ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र मर्मस्पर्शी और सुख का कारणभूत है । तुम इसे सुनकर तुरन्त ही इस निष्पन्न सोम का पानकरो ।७। जहाँ सोम छाना जाता है वहाँ सोम-पानके निमित्त उससे उत्पंन प्रसन्नता-प्राप्ति के लिए दुष्टों को मारने वाले इन्द्र अवश्य पहुँचते हैं ।८। हे महाबली इन्द्र! गाय और अश्वादि-युक्त धनों वाली हमारी सब कामनाएँ पूर्ण करो । हम ध्यानपूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं ।९। (३१)

सूक्त १७

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः । देवता–इन्द्रावरुणी । छन्द–गायत्री)

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृलात ईदृशे ॥१
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥२
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥३
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥४
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥५।३२

में, सम्राट् इन्द्र और वरुणसे रक्षा चाहता हूँ । वे दोनों हमपर कृपा करें ।१। तुम मनुष्यों के स्वामी ! हम ब्राह्मणों के बुलाने पर रक्षा के लिए अवश्य आओ ।२। हे इन्द्र और वरुण ! हमको अभीष्ट धन देकर सन्तुष्ट करो । हम तुम्हारा सामीप्य चाहते हैं ।३।बल तथा सुबुद्धि-प्राप्तिकी इच्छासे हम तुम्हारी कामना करते हैं ! हम अन्न-दान करने वालों में आगे रहें ।४। सहस्रों धन दाताओं में इन्द्र की श्रेष्ठ है और स्तुति ग्रहण करने वालों में वरुण श्रेष्ठ है ।५। (३२)

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्ररेचनम् ॥६
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मानत्सु जिग्युपस्कृतम् ॥७
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा। अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८
प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे। यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥९।३३

उनकी रक्षा से हम धन को प्राप्त कर उसका उपभोग करें। वह धन प्रचुर परिमाण में सञ्चित हो।६। हे इन्द्र और वरुण ! विभिन्न प्रकारके धनों के लिए तुम्हारा प्राह्वान करते हैं। हमको भले प्रकार जय-लाभ कराओ।७। हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों स्नेह-भाव रखते हुए हमको अपना आश्रय प्रदान करो।८। हे इन्द्र और वरुण ! जोसुन्दर स्तुति तुम्हारे निमित्त करता हूँ और जिस स्तुतिकी तुम पुष्टि करते हो, उन स्तुतियों को ग्रहण करो।९। (३३)

सूक्त १८

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः। देवता–ब्रह्मणस्पतिः प्रभृतयः। छन्द–गायत्री)

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥१
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः॥२
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥४
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्। दक्षिणा पात्वंहसः ॥५।३४

हे ब्रह्मणस्पते ! मुझ सोम निचोड़ने वाले को उशिज के पुत्र कक्षीवान् के समान प्रसिद्धि प्रदान करो।१। धनवान् रोगनाशक, धनों के ज्ञाता, पुष्टि-वर्द्धक, शीघ्र फल देने वाले ब्रह्मणस्पति हमपर कृपा करें।२। नास्तिक हमको वश में न कर सकें। हम मरणधर्मा प्राणी हिंसित न हो, अतः हे ब्रह्मणस्पते ! हमारी रक्षा करो।३। इन्द्र सोम और ब्रह्मणस्पति द्वारा प्रेरणा प्राप्त मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता।४। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम सोम,इन्द्र और दक्षिणा उस मनुष्य की पापों से रक्षा करो।५। (३४)

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥६
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥७
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥८
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥९।३५

अद्भुत रूप वाले, इन्द्र के प्रिय तथा पालक अग्नि से धन और सुमति की याचना करता हूँ ।६। जिसकी कृपाके बिना ज्ञानी का यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वह अग्नि हमको उचित प्रेरणा देते हैं ।७। अग्नि ही हवियों को प्राप्त समृद्ध कर यज्ञ की वृद्धि करते हैं । यजमान की स्तुतियाँ देवताओं को प्राप्त होती हैं ।८। प्रतापी, विख्यात तथा यशस्वी मनुष्यों-द्वारा स्तुति किये और पूजे गये अग्नि को मैंने देखा है ।९। (३५)

सूक्त १९

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—अग्नि और मरुत छन्द—गायत्री ।)

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥४
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि॥५।३६

हे अग्नि ! सुशोभित यज्ञ में सोम पीने के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मरुद्गणों के साथ यहाँ आओ ।१। हे अग्ने ! तुम्हारे समान कोई देवता या मनुष्य महान नहीं है, जो तुम्हारे बल का सामना कर सके । तुम मरुतों के साथ पधारो ।२।जो विश्वेदेवा किसीसे वैर नहीं रखते और महान् अंतरिक्ष के ज्ञाता हैं, हे अग्ने ! उनके साथ आओ ।३। हे अग्ने ! जिन उग्र और अजेय, बलशाली मरुतोंने वृष्टि की थी, स्तोत्रों से स्तवन किये हुए उन मरुतोंके साथ यहाँ आओ ।४। हे अग्ने ! जो शोभा युक्त और उग्र रूप धारण करने वाले हैं जो बलशाली और शत्रुओ के संहारकर्त्ता हैं, उन्हीं मरुद्गणों के साथ आओ ।५। (३६)

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६
य ईंखयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥७
आ ये तन्वंति रश्मिभिस् तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि॥८
अभि त्वा पूर्वपतिये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९।३७

हे अग्ने ! स्वर्ग से ऊपर प्रकाशित लोक में जिन मरुतों का निवास है, उन्हें साथ लेकर आओ।६। हे अग्ने ! बादलों का सञ्चालन करने वाले और जल को समुद्रमें गिराने वाले मरुतों के साथ यहाँ पधारो।७। हे अग्ने ! सूर्य-किरणों के साथ सर्वत्र व्याप्त और समुद्र को बलपूर्वक चलायमान करने वाले मरुतों के साथ पधारो।८। हे अग्ने ! आपके पीने के लिए मधुर सोम-रस प्रस्तुत कर रहा हूँ। अतः तुम मरुतों के साथ आओ।९। (३७)

॥ प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त २० (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः। देवता—ऋभवः। छन्द—गायत्री)

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः ॥१
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत ॥२
तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥३
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्टयक्रत ॥४
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता। आदित्योभिश्च राजभिः॥५।१

यह स्तोत्र विद्वानों ने ऋभु देवों के निमित्त रमणीक छन्द में रचा है।१। जिन ऋभुओं ने अपने मन से इन्द्र के वचन-मात्र-मात्र से जुत जाने वाले अश्वों की रचना की, वे हमारे यज्ञमें स्वतः ही व्याप्त हैं।२। उन्होंने अश्विनी कुमारों के लिये सुख देने वाले रथ की रचना की। दूध-रूप अमृत देने वाली धेनु को बनाया।३। सत्याशय, सरल स्वभाव वाले, स्नेही, निःस्वार्थी ऋभुओं

ने अपने माता पिता को पुनः युवावस्था दी ।४। हे इन्द्र ! मरुद्गण और आदित्य के सहित तुम्हारे निमित्त यह सोम-रस प्रस्तुत है । ।५। (१)

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ॥६
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः॥७
अधारयन्त वह्नयो ऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥८।२

त्वष्टा ने जो नया चमस-पात्र प्रस्तुत किया था, ऋभुओं ने उसके स्थान पर चार चमस बना दिए ।६। वे उत्तम प्रकार से स्तुति किये जाते हुए ऋभु गण सोम-सिद्ध करने वाले यजमान को एक-एक कर इक्कीस रत्न प्रदान करे ।७। ऋभुगण अविनाशी आयु प्राप्त कर देवताओं के मध्य रहते हुए यज्ञ-भाग प्राप्त करते हैं ।८। (२)

सूक्त २१

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—इन्द्रः अग्निश्च । छंद गायत्री)

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा॥१
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥२
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥३
उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥४
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥५
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥६।३

इन्द्र और अग्नि का इस यज्ञ-स्थान में आह्वान करता हूँ । उन्हीं का स्तवन करता हुआ सोम-पान के लिये दोनों से निवेदन करता हूँ ।१। हे मनुष्यो! इन्द्र और अग्नि का स्तवन करो, उन्हें अलंकृत कर स्तोत्र-गान करो ।२। इन्द्र और अग्नि को मित्र की प्रशंसा के लिए तथा सोम-पान करने के लिए आमन्त्रित करते हैं ।३। उग्र देव इन्द्र और अग्नि का सोम-याग में आह्वान करते हैं । वे दोनों यहाँ पधारें ।४। हे महान्, समाजकी रक्षा करने वाले इन्द्र और

अग्नि ! तुम दोनों दुष्टों को वशीभूत करो । मनुष्य भक्षी दैत्य संतानहीन हों हे इन्द्राग्ने ! उस सत्य, चैतन्य यज्ञ के निमित्त जागकर हमको आश्रय दो ।६।
(३)

सूक्त २२

(ऋषि-—मेधातिथिः काण्वः । देवता—अश्विनी प्रभृति । छंद—गायत्री

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥१
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥२
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥४
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥५।४

हे अग्ने ! प्रातःकाल संचेत होने वाले अश्विनीकुमारों को यज्ञ में आने के लिये जगाओ ।१। वे दोनों सुशोभित रथ से युक्त अतिरथी तथा आकाश को छूने वाले हैं । हम उनका आह्वान करते हैं ।२। हे अश्विनीकुमारो ! तुमदोनों का मधुर, प्रिय और सत्य-रूप जो चाबुक है,उसके साथ आकर यज्ञको सींचों ।३। हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों जिस मार्गसे प्रस्थान करते हो, उससे सोम वाले यजमान का दूर नहीं है ।४। मैं उस स्वर्णहस्त वाले सूर्य का आह्वान करता हूँ । वे यजमान को उचित प्रेरणा देंगे ।५।
(४)

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥६
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥७
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥८
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥९
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् ।
वरूत्रीं धिषणां वह ॥१०।५

जलों को आकर्षित करने वाले सूर्य को रक्षण के लिए आमन्त्रित कर हम यज्ञ करने की इच्छा करते हैं ।६। धनैश्वर्य को बाँटने वाले, मनुष्यों के द्रष्टा सूर्य का आह्वान करते हैं ।७। हे मित्रो । सब ओर बैठ कर धनदाता

सूर्य की स्तुति करो । वे अत्यन्त सुशोभित हैं ।८। हे अग्ने ! अभिलाषा वाली देव-पत्नियों को यज्ञ में लाओ । सोम-पान के लिए त्वष्टाको यहाँ ले आओ।९। हे युवावस्था-प्राप्त अग्ने ! हमारे रक्षण के लिये होत्रा, भारती बरूत्त और धिषणादेवियों को यहाँ लाओ ।१०।   (५)

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ।।११
इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ।।१२
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पितृतां नो भरीमभिः ।।१३
तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः ।
गन्धर्वस्य ध्रुवेपदे ।।१४
स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ।।१५।६

वीर पत्नी द्रुतगामिनी देवियाँ अपर रक्षण-सामर्थ्यों से हमको आश्रय प्रदान करें ।११। अपने मङ्गल के लिए इन्द्राणी, वरुण-पत्नी और अग्नि की पत्नी का सोम पीने के लिए आह्वान करता हूँ ।१२। महान् आकाश और पृथिवी ऐसे यज्ञ को सींचने की कामना करते हुए हमको पोषण-सामर्थ्य प्रदान करें ।१३। आकाश, पृथिवी के मध्य गन्धर्वों के स्थान में ज्ञानीजन घ्यान से घी के समान जल पीते हैं ।१४। हे पृथिवी ! तू सुखदायिनी बाधारहित और उत्तम वास देने वाली हो तथा हमको आश्रय प्रदान कर ।१५।   (६)

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ।।१६
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूह्लमस्य पांसुरे ।।१७
त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ।।१८
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ।।१९

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दवीव चक्षुराततम् ॥२०
तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥२१।७

जिस सप्त स्थान वाली पृथिवीपर विष्णु ने पाद-क्रमण किया उसी पृथिवी पर देवगण हमारी रक्षा करें ।१६। विष्णु ने इस संसार को तीन पाँव रखकर विक्रम किया इनके धूललगे पैरमें ही पूरी सृष्टि समा गई।१७। सबके रक्षक. किसी से धोखा न खाने वाले नियम-पालक विष्णुने तीन पैर रखे ।१८। विष्णु के पराक्रम को देखो जिनके बल से सभी नियम स्थित हैं । वे इन्द्र के साथी और मित्र हैं ।१६। आकाश की ओर विस्तारपूर्वक देखने वाला नेत्र विष्णु के परमपद को देखना चाहता है । ज्ञानीजन उस पद को निरन्तर अपने हृदय में देखते हैं ।२०। विष्णु के सर्वोच्च पद को स्तुति करने वाले चेतन, ज्ञानी जन भले प्रकार प्रकाशित करते हैं ।२१। (७)

सूक्त २३

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—वायुः इत्यादयः । छन्द गायत्री, उष्णिक् प्रतिष्ठा, अनुष्टुप्)

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥१
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥२
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥३
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥५।८

हे वायो ! आओ, यह वेग वाले दूध से मिले हुए और छने हुए सोम-रस रखे हैं, इनका पान करो ।१। आकाश को छूने वाले इन्द्र और वायु देवता का हम सोम पीने के निमित्त आह्वान करते हैं ।२। मन की तरह द्रुतगामी, सहस्र-चक्षु, कर्मशील इन्द्र और वायु को अपनी रक्षाके लिये ज्ञानी जन बुलाते हैं ।३। मित्र और वरुण को सोम पान करने के लिए हम बुलाते

हैं। वे पवित्र और बलवान् हैं ।४। सत्य से यज्ञ को बढ़ाने वाले प्रकाश के पालक मित्र और वरुण का आह्वान करता हूँ ।

वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः।।६
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ।।७
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ।।८
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहजा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ।।९
विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः। १०।९

वरुण मेरे रक्षक हों, मित्र भी रक्षा करें और ये दोनों मुझे धनवान् बना दें ।६। मरुतों के सहित इन्द्र का हम आह्वान करते हैं । वे सोमपान के लिये यहाँ आकर तृप्त हों ।७। पूषा दाता हैं और दाताओं में मुख्य हैं । वे मरुद्-गण हमारे आह्वान को सुनें ।८। हे सुशोभित दानी मरुतो ! युम बली और सहायक इन्द्र के सहित शत्रुओं को नष्ट कर डालो । कहीं दुष्ट लोग हम पर शासन न करने लगें ।९। सब मरुत नाम वाले देवों को सोम पान के लिये बुलाते हैं । वे उग्र और अन्तरिक्ष की सन्तान है ।१०। (९)

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया यच्छुभं याथना नरः ।।११
हस्कराद् विद्युतस्पर्यऽतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृलयन्तु नः ।।१२
आ पूषश्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ।।१३
पूषा राजानमाघृणिरपगूह्लं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ।।१४
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ।।१५।१०

मरुतों का गर्जन विजय-नाद के समाम है, उससे मनुष्यों का मङ्गल होता है ।११। विद्युत के प्रकाश कर हंसमुख (सूर्य) से उत्पन्न मरुद्गण हमारे रक्षक हों और हमारा कल्याण करें ।१२। हे दीप्तियूक्त पूषा ! जैसे खोये हुए पशुको ढूंढ लाते हैं, वैसे ही तुम कुशा से युक्त, यज्ञ-धारक सोम को ले आओ ।१३।

सब ओर से प्रकाशित पूषा ने गुफा में छिपे हुए कुशयुक्त राजा सोम को प्राप्त किया ।१४। वह पूषा सुघटित छँओं ऋतुओं को सोमों द्वारा प्राप्त करता रहे, जैसे किसान जौ को बार-बार प्राप्त करता है ।१५। (१०)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६
अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८
अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ॥१९
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०।११

यज्ञ की इच्छा करने वालों का मात्र-भूत जल हमारा बन्धु-रूप है और वह दूध को पुष्ट करता हुआ यज्ञ-मार्ग से चलता है ।१६। जो जल सूर्यके पास स्थित हैं अथवा सूर्य जिनके साथ हैं, वे हमारे यज्ञ को सींचें ।१७। जिन जलों को हमारी गौएं पीती हैं उन जलों को हम चाहते हैं ।जो जल बह रहा है, उसे हवि देनी है ।१८। जलों में अमृत हैं जलों में औषध है जलों की प्रशंसा से उत्साह प्राप्त करो ।१९। सोमके कथनानुसार जल ही औषधि-तत्व है । उसने सर्व-सुखदाता अग्नि और आरोग्य देने वाले जलोंका गुण वर्णन किया है ।२०। (११)

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१
इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ॥२२
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥२३
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥२४।१२

हे जलो ! चिरकाल तक सूर्य-दर्शन के निमित्त, नीरोग रहने के लिए शरीर-रक्षक औषध को मेरी देह में स्थित करो ।२१। जलो ! मुझ में स्थित

पाप को बहा दो। मेरे द्रोह-भाव, अपशब्द और मिथ्याचरणको प्रताडित करो ।२२। आज मैंने जलों को पाया है। उन्होंने मुझे रसयुक्त किया है। हे अग्ने! जलोंके सहित आकर मुझे तेजस्वी बनाओ ।२३। हे अग्ने! मुझे तेजस्वी करो। प्रजा और आयु से युक्त करो। देवगण, ऋषिगण और इन्द्रदेव मेरे स्तवन को जान लें ।२४।

(१२)

सूक्त २४ (छठा अनुवाक)

(ऋषि—शुनः शेपः आजीगर्तिः, कृतिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवता-प्रजापति प्रभृति । छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥२
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे ॥३
यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥४
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥५।१३

मैं किस देवता के सुन्दर नाम, का उच्चारण करूं? कौन मुझे महती अदिति को देगा, जिससे मैं पिता और माताको देख सकूं ।१। अमरत्व प्राप्त देवताओं में सर्व-प्रथम अग्नि का नामोच्चार करें। वह मुझे महती अदिति को देवें और मैं पिता माता को देख पाऊँ ।२। हे सतत रक्षण-शील एवं वरणीय धनों को स्वामी सवितादेव! तुमसे हम सभी ऐश्वर्यों की साधना करते हैं।३। हे सूर्य! सत्य, अनित्य, स्तुत्य द्वेष-रहित तथा सेवनीय धन को तुम धारण करने वाले हो ।४। ऐश्वर्यशाली सूर्य! तुम्हारी रक्षा में आश्रित हम तुम्हारे सेवक ऐश्वर्य-साधनों की वृद्धि में लगे रहते हैं। आप हमारी रक्षा करें ।५।

(१३)

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तुप ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवाः स्युः ।७।
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥
शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९
अभी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०।१४

हे वरुण ! तुम्हारे अखण्ड राज्य, बल और क्रोध को यह उड़ते हुए पक्षी नहीं पहुँच पाते । निरन्तर चलते हुए और वायु का प्रबल वेगभी तुम्हारी गति को नहीं रोक पाता ।६। पवित्र पराक्रमयुक्त वरुण आकाश के ऊपर की ओर तेज-समूह को स्थापित करते हैं । इस तेज-समूह का मुख नीचे और जड़ ऊपर है । यह हमारे भीतर स्थित होकर बुद्धि-रूप से वास करें ।७। वरुण से सूर्यके गमन करने के लिये विस्तृत मार्ग बनाया है तथा निराश्रय आकाश में सूर्य के पाँव रखनेकी व्यवस्था की । वे वरुण मेरे हृदयको कष्ट देने वाले को भी हटाने में समर्थ हैं ।८। हे वरुण तुम्हारे पास असंख्य उपाय हैं । तुम्हारी कल्याण-बुद्धि गम्भीर और दूर तक जाने वाली है । तुम पाप के बल को नष्ट करो । किये हुए हमारे पापों से हमको छुड़ाओं ।९। ये तारेरूप सप्तर्षि उन्नत स्थान में बैठे हुए रात्रि में दीखते थे । वे दिनमें कहां विलीन हो गये ? चन्द्रमा भी रात्रिमें ही प्रकाशित होताँ हुआ चलता है । वरुण के नियम अटल हैं ।१०। (१४)

तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११
तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस् तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३
अव ते हेलो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५।१५

हे वरुण ! मन्त्रयुक्त वाणी से स्तवन करता हुआ तुमसे ही याचना करता हूं । हवि वाला यजमान, क्रोध न करने की आप से प्रार्थना करता हुआ आयु माँगता है ।११। रात और दिन यही बात मेरे हृदय में उठती है कि बंधन में पड़े शुनःशेप ने वरुण को बुलाया था, वह हमको भी बन्धन से मुक्त करें ।१२। पकड़े जाकर काठ के तीन खम्भों से बाँधें गये शुनःशेप ने अदिति-पुत्र वरुणका आह्वान किया । वे वरुण विद्वान् और कभी धोखा न खाने वाले हैं। वे मेरे पाशों को काटकर मुक्त करें ।१३। हे वरुण ! हमारे स्तुति-वचनों से अपने क्रोध का निवारण करो । तुम प्रखर बुद्धि वाले हमारे यहाँ वास करते हुए हमारे पापोंके बन्धन को ढीला करो ।१४। हे वरुण ! हमारे ऊपरके पाश को ऊपर और नीचे के पाश को नीचे खीचकर, बीच के पाशको काट डालो । हम तुम्हारे नियम में चलते हुए निरपराध रहें ।१५। (१५)

सूक्त २५

ऋषि—शुन-शेपः आजीगर्तिः इत्यादयः देवता—वरुणः । छन्द—गायत्री)

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥१
मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥२
वि मृलीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥३
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥४
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृलीकायोरुचक्षसम् ॥५।१६

हे वरुण ! जैसे तुम्हारे व्रतानुष्ठान में मनुष्य प्रमाद करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे नियमादि का उल्लंघन कर बैठते हैं ।१। हे वरुण ! निरा-

दर करने वाले को दण्ड उसकी हिंसा हैं। हमको यह दण्ड मत दो हम पर क्रोध न करो ।२। हे वरुण ! स्तुतियों द्वारा हम आपकी कृपा चाहते हैं। उसी प्रकार जैसे अश्वका स्वामी उसके घावों पर पट्टियाँ बाँधता है ।३। घोंसलोंकी ओर दौड़ने वाली चिड़ियों के समान हमारी क्रोध-रहित बुद्धियाँ धन-प्राप्तिके लिये दौड़ती हैं ।४। अखण्ड ऐश्वर्य वाले दूरदर्शी वरुण की कृपा-प्राप्तिके लिये उन्हें अपने अनुष्ठान में ले आवेंगे ।५। (१६)

तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ।।६
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ।।७
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ।।८
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ।।१०।१७

हवि की इच्छा वाले मित्र वरुण, निष्ठावान यजमान की साधारण हवि को भी नहीं त्यागते ।६। हे वरुण ! आप उड़ने वाले पक्षियों के आकाश-मार्ग और समुद्र के नौका-मार्गों के पूर्ण ज्ञाता हैं ।७। वे धृत-नियम वरुण, प्रजाओंके उपयोगी बारह मासों को तथा तेरहवें अधिक मास को भी जानते हैं ।८। वे मूर्धा-रूप से स्थित, विस्तृत, उन्नत महान् वायु के मार्ग को भलेप्रकार जानते हैं ।९। नियमों में दृढ़, सुन्दर प्रज्ञावान वरुण प्रजाजनों में साम्राज्य स्थापित करने के निमित्त बैठते हैं ।१०। (१७)

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति कृतानि या च कर्त्वा।।११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।।१२
बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ।।१३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः।१४
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ।।१५।१८।

जो घटनायें हुई अथवा होने वाली हैं, उन सबको वे मेधावी वरुण इस इस स्थान से देखते हैं ।११। वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले वरुण हमको सदा सुन्दर मार्ग दें और हमको आयुष्मान करें ।१२। सोने के कवच से उन्होंने अपना मर्म

भाग ढक लिया है, उनके चारों ओर समाचार-ग्राहक उपस्थित हैं ।।१३। जिन्हें शत्रु धोखा नहीं दे सकते, विद्रोही जिनसे द्रोह करने में सफल नहीं हो सकते, उस वरुण से कोई शत्रुता नहीं कर सकता ।१४। जिस वरुण ने मनुष्य के लिए अन्न की भरपूर स्थापना की है, वह हमारे उदर में अन्न ग्रहण करने की सामर्थ्य देता है ।१५।

(१८)

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ।।१६
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वामृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ।।१७
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ।।१८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय । त्वामवस्युरा चके ।।१९
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ।।२०
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे।।२१।१९

दूरदर्शी वरुण की कामना करती हुई मनोवृत्तियाँ निवृत्त होकर वैसे ही पहुँचाते हैं, जैसे चरनेके स्थानों की ओर गौएँ जाती हैं ।१६। मेरे द्वारा संपादित मधुर हवि को अग्निके समान प्रीति-पूर्वक भक्षण करो । फिर हम दोनों वार्तालाप करेंगे ।१७। सबके देखने योग्य वरुण को, उनके रथ-सहित भूमिपर मैंने देखा है । उन्होंने मेरी स्तुतियाँ स्वीकार कर ली हैं, ।१८। हे वरुण ! मेरे आह्वान को सुनो । मुझ पर आज कृपा करो। मुझ पर कृपा करने की इच्छा वाले तुम्हें मैंने पुकारा हे ।१९। हे मेधावी वरुण ! तुम आकाश और पृथिवीके स्वामी हो । तुम हमारे आह्वान का उत्तर दो ।२०। हे वरुण ! ऊपर के पाश को खींचो, बीच के पाश को काटो और नीचे के पाश को भी खींचकर हमको जीवन दो ।२१।

(१९)

सूक्त २६

(ऋषि-शुनःशेपः आजीगर्ति । देवता-अग्निः । छन्द-गायत्री)

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जा पते । सेमं नो अध्वरं यज ।।१
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः ।।२

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥३
आ नो बर्हीं रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥४
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उषु श्रुधी गिरः ॥५॥२०

हे पूज्य, योग्य, बली ! अग्ने तुम अपने तेज-रूप-वस्त्र को धारण कर हमारे यज्ञको सम्पन्न करो ।१। हे अग्ने ! तुम सतत युवा, उत्तम तेजस्वी हो। इस यजमान के स्तुति-वचनों से प्रतिष्ठित होओ ।२। हे वरणीय अग्ने ! जैसे पिता पुत्र को, भाई-भाई को तथा मित्र-मित्र को वस्तुयें देते हैं, वैसे ही तुम हमको दाता बनो ।३। शत्रुओंको मारने वाले वरुण, मित्र और अर्यमा मनुष्यों के समान कुशों पर विराजमान हों ।४। हे पुरातन होता ! तुम इस यज्ञ और हमारे मित्र-भाव से प्रसन्न होओ । हमारी स्तुतियों को भले प्रकार सुनो ।५। (२०)

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम्॥७
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥८
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥९
बिश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। :
चनो धाः सहसो यहो ॥१०॥२१

हे अग्ने ! नित्य-प्रति विभिन्न देवताओं को पूजते हुए भी हम तुमको ही हवि देते हैं ।६। प्रजा पालक, होता, वरणीय, अग्नि हमको प्रिय हों । हम भी शोभायुक्त अग्नि वाले होकर उनके प्रिय बनें ।७। शोभनीय अग्नि सहित देवताओं ने जैसे हमारे लिए ऐश्वर्य धारण किया है, वैसे ही हम सुन्दर अग्नियों से युक्त हुए तुमको पूजते हैं ।८। हे मरण-धर्म-रहित अग्ने ! तुम्हारी ओर हम मरणशील मनुष्यों की प्रशंसायुक्त वाणियाँ परस्पर स्नेह वाली हों ।९। हे बल-पुत्र अग्ने ! तुम सब अग्नियों से युक्त हुए हमारी वाणी से प्रसन्न होओ ।१०। (२१)

सूक्त २७

(ऋषि-शुनःशेप: आजीगर्तिः । देवता–अग्नि और विश्वेदेवा ।
छन्द––गायत्री त्रिष्टुप्)

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥३
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥४
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ।५।२२

हे अग्ने ! तुम बालों वाले अश्व के समान हो । यज्ञों के सम्राट्-समान प्रतिष्ठित अग्नि की स्तुतियों द्वारा पूजन के लिए मैं उपस्थित हूँ ।१। वह बल के पुत्र, विस्तीर्ण गमन-शक्ति वाले, शोभनीय सुखके ज्ञाता, अभीष्ट-वर्षक अग्नि हमारे हों ।२। सर्वत्र गमनशील अग्ने ! तुम हमको दूर या पास से भी, पाप करने की इच्छा वालों से सदा बचाते रहो ।३। हे अग्ने ! हमारे इस हवि-दान और नवीन स्तोत्र का देवताओं के सम्मुख उत्तम प्रकार से वर्णन करो ।४। अग्ने ! हमको उत्तम लोक प्राप्त कराओ । मध्य लोक में होने वाले अन्नों में हमें भागी बनाओ और समीपस्थ धन को हमें प्रदान करो ।५। (२२)

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि॥६
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥७
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥८
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥९
जराबोध तद् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१०।२३

हे विभिन्न सामर्थ्य वाले अग्ने ! तुम धन को बाँटते हो। समुद्र की मर्यादा में बहने वाले जल के समान तुम यजमान के लिए तुरन्त प्रवाहमान होते हो।६। अग्ने ! तुमने युद्धोंमें जिसकी रक्षाकी तथा युद्धों की ओर जिसको प्रेरित किया, वह अटल ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला मनुष्य सदा स्वाधीन रहता है।७। हे विजयशील ! उस पूर्वोक्त मनुष्य को कोई वश में नहीं कर सकता क्योंकि उसका बल-वर्णन करने योग्य हो जाता है।८। वह अग्नि मनुष्यों के स्वामी हैं। हमको अश्वों-द्वारा युद्ध से पार करते हैं तथा ज्ञान-द्वारा धन देते हैं।९। हे स्तुतियों के ज्ञाता अग्ने ! हमको मनुष्यों के पूज्य रुद्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्र की प्रेरणा दो।१०। (२३)

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वन्तु ॥११
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥१२
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ।१३।२३

वे अपरिमित धूम्र-ध्वज वाले अग्नि अत्यन्त प्रकाशित हैं। हमको बुद्धि और बल प्रदान करें।११। प्रजा के स्वामी, देवताओं से सम्बन्धित, ज्ञानदाता, महान प्रकाश वाले वह अग्नि हमारे स्तोत्रों को ऐश्वर्यवानोंके समान सुनें।१२। बड़े, छोटे, युवक, वृद्ध सभीको हम नमस्कार करें। हम सामर्थ्यदान हों। देवताओं को पूजने वाले हों। हे देवगण ! मैं अपने से बड़ों का सदा आदर करूं।१३। (२४)

सूक्त २८

(ऋषि—शुनःशेप आजीगर्तिः देवता—इन्द्रयज्ञसोमादयः।
छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुतानामवेदिन्द्र जल्गुलः ॥१

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥२
यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥३
यत्र मन्थां विवध्नते रश्मीन् यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ।५।२५

हे इन्द्र ! जहाँ कूटनेके लिए दृढ़ पत्थर का मूसल उठाया जाता है, वहाँ निष्पन्न किए सोमों को बारम्बार सेवन करो ।१। हे इन्द्र ! जहाँ दो जंघाओंके समान सोम कूटने वाले सिल लोढ़े अथवा दोफलक रखे हैं, उनसे तैयार किये हुए सोम-रसका पान करो ।२। जहाँ स्त्री सोम-रस तैयार करनेके लिये मूसल के कूटनेको डालने-निकालनेका अभ्यास करती है, हे इन्द्र ! वहाँ जाकर सोम-रस का सेवन करो ।३। सारथी-द्वारा घोड़े को रास से बाँधने की भाँति जहाँ मन्थन-दण्ड (मथानी) को रससे बाँध कर मन्थन करते हैं, उस स्थानको प्राप्त कर सोम-रस-पान करो ।४। हे ऊखल ! तुम घर-घर में, कामके लिये जातेहो, फिर भी हमारे इस घर में विजय-दुन्दुभि के समान शब्द करो ।५। (२५)

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥६
आयजी वाजसातमा ता ध्युच्चा विजर्भृतः ।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥७
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः
इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥८
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।
नि धेहि गोरधि त्वचि ।९।२६

हे ऊखल-मूसल वनस्पते ! वायु तुम्हारे सामने विशेष गति से चलती है। हे ऊखल ! उन इन्द्र को पीने के लिए सोमको सिद्ध करो ।६। महान बल के देने वाले पूजन-योग्य ये ऊखल और मूसल दोनों, अन्नोंका सेवन करते हुए अश्वके समान उच्च स्वरसे बोलते हैं ।७। हे ऊखल-मूसल रूप वनस्पते ! तुम सोम-सिद्ध करने वालों के लिये मधुर सोमों का इन्द्रके निमित्त निष्पीड़न करो ।८। ऊखल और मूसल-द्वारा कूटे गये सोम को पात्रसे निकाल कर पवित्र कुश पर रखो अवशिष्ट को चर्म-पात्र में रखो ।९। (२६)

सूक्त २९

(ऋषि–शुनःशेपः आजीगर्तिः । देवता–इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१
शिपिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु सहस्रेषु सुभ्रिषु तुवीमघ ॥२
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ । ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषृ शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ।७।२७

हे सत्य-स्वरूप सोमपायी इन्द्र ! यद्यपि हम निराश से हुए पड़े हैं,

फिर भी तुम अत्यन्त सुन्दर पुष्ट हजारों गाय-घोड़े देकर हमको सन्तुष्ट करो । १ । हे शक्तिशालिन, हे सुन्दर नासिका-युक्त इन्द्र ! आपकी दया हमको सदा मिली है। हमको हजारों गाय-घोड़े प्रदान करो । २ । हे इन्द्र ! परस्पर देखने वाली दोनों विपत्ति और दरिद्रताको अचेत कर दो। वे कभीं जागरणशील न रहें। हमको असंख्य गाय और अश्वों से युक्त करो ।३। हे इन्द्र ! हमारे शत्रु सोते रहें और मित्र जागरणशील हों हमको सहस्रों गौ और घोड़े दो ।४। हे इन्द्र ! इस पापपूर्ण स्तुति करने वाले गधेके समान हमारे शत्रु को मार डालो ! हमको सहस्र-संख्यक गौ, अश्व प्रदान करो ।५। कुटिल गति वाली वायु जङ्गम से भी दूर रहे। तुम हमको गौ धन आदि के दाता होओ ।६। हे इन्द्र! हमारा अशुभ चिन्तन करने वालोंको मार डालो। हिंसकों को नष्ट करो, असंख्य गौ, अश्व प्रदान करो ।७। (२७)

सूक्त ३०

(ऋषि—शुनःशेपः आजीगर्तिः । देवता—इन्द्र—उषा । छन्द—गायत्री)

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
महिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥१
शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥२
सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥३
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥४
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ।५।२८

हे मनुष्यो ! तुमकों बाहु-बल प्राप्त कराने की इच्छा से महाबली इन्द्र को हम गढ़ेके समान सब ओर से सींचते हैं ।१। नीचे की ओर जाने वाले जल के समान हजारों कलश दूध में मिलाने के लिये सैकड़ों कलश गिरते हुए सोमों को इन्द्र प्राप्त करते हैं ।२। जल के लिए विस्तृत हुए समुद्र के समान इन्द्र बलकारी सोम के लिये अपने पेट को विस्तृत करता है ।३। हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए है। तुम इसे कबूतर द्वारा अपनी कबूतरी को प्राप्त

करने के समान प्रेम से प्राप्त करते हो हमारी वाणी भी पहुँचती है।४। हे धने-श्वर ! जिसके मुख में आपकी स्तुतिमय वाणी है, उसकी स्तुतियों से प्राप्त होने वाले तुम उस के घरमें ऐश्वर्य भर दो, उसकी वाणी मधुर और सत्य हो ।५।   (२८)

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥७
आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥९
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरहूत । सखे यसो जरितृभ्यः ।१०।२९

हे महाबली इन्द्र ! इस युद्ध में हमारी रक्षा के लिए उठो । हम दोनों भले प्रकार मन्त्रणा करें ।६। हे सखे ! हम प्रत्येक कार्य अथवा युद्धके आरम्भ में महाबली इन्द्र का आह्वान करते हैं ।७। यदि इन्द्रने हमारी पुकार सुन ली तो वे असंख्य रक्षक साधनों और शक्तियों के साथ अवश्य आयेंगे ।८। मैं अपने अग्रणी शक्ति-स्वरूप इन्द्र को पूर्वजों की भाँति बुलाता हूँ । हे इन्द्र हमारे पिता भी तुमकों बुलाते थे ।९। हे वरणीय इन्द्र ! बहुतों से बुलाये गये तुम स्तोताओं के शरणदाता मित्र हो । हम तुम्हारे आह्वान की कामना करते हैं ।१०।   (२९)

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम्॥११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥१२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१३
आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥१४

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ।१५।३०

हे सोमपायी वज्रिन् ! सोम से बलवान हुए हमारे मित्रों के तुम मित्र हो ।११। हे सोमपायी वज्रिन् ! हमारी यह इच्छा पूरी करो कि हम अपने अभीष्ट के निमित्त सदा तुम्हारी ही कामना किया करें ।१२। इन्द्र के प्रसन्न

होने पर हमारी गायें अधिक दूध दें, जिसमें हम अधिक पुष्टि को प्राप्त कर सकें ।१३। हे रुद्र ! तुम्हारी प्रार्थना करने पर तुम स्वयं ही पहिये की धुरी के समान भाग्य को घुमाकर धन देते हो ।१४। हे इन्द्र साधकों की साधना और कामना के अनुसार ही तुम पहिये की धुरीके समान उनकी दरिद्रता को पलट देते हो ।१५।
(३०)

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान् त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिण्यवत् ॥१७
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥१८
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥१९
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२०
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥२१
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ।२२।३१

इन्द्र सदा ही शत्रुओं के धन को अपने स्फूर्तियुत घोड़ों के द्वारा जीतता रहा है । अपने स्नेहवश हमको सोने का रथ प्रदान किया है ।१६। हे भीषण बल वाले अश्विनीकुमारो ! तुम अश्वों की गति से गौ और स्वर्णादि धन के साथ यहाँ आओ । १७ । हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों के लिए जुतने वाला एक ही रथ आकाश मार्ग में चलता है । उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ।१८। हे अश्विनी-कुमारो ! तुमने अपने रथ के एक पहिये को पर्वत पर स्थित किया है तथा दूसरा पहिया आकाश के चारों ओर चलता है ।१९। हे पापों का नाश करने वाली उषे ! कौन मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारे सुखको प्राप्त कर सकता है? ।२०। हे अश्व के समान गमन करने वाली, कांतिमती उषे ! तुम क्रोध-रहित का ही हमने निकट या दूर तक चिंतन किया है ।२१। हे आकाश-सुते ! तुम उन शक्तियों के साथ यहाँ आओ, जिनके द्वारा उत्तम ऐश्वर्य ही हमारे लिए स्थापना कर सको ।२२।
(३१)

सूक्त ३१ (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि–हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः। देवता–अग्नि। छन्द–त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने प्रथम अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनासो ऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तम कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥२
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये ऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥३
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः।
श्वात्रेण यत् पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥४
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवासति ।५।३२

हे अग्ने ! तुम अङ्गिरा ऋषि से सभी पहले हुए। होकर भी उनके और हमारे मङ्गलकी कामना वाले मित्र हो। मेधावी ज्ञान और कर्म वाले दमकते हुए शास्त्रों वाले मरुद्‌गण तुम्हारे नियम में प्रकट हुए हैं।१। हे अग्ने ! तुम अङ्गिराओं में श्रेष्ठ और प्रथम हो। तुम देवताओं को नियमों से सुशोभित करते हो। लोक-व्यापक दो माथे वाले वाले ! मनुष्यों के हित के निमित्त विद्यमान हो।२। हे अग्ने तुम सुन्दर कर्म की इच्छा से प्रकट हुए। होता के वरण करने पर तुम्हारे बल से आकाश-पृथिवी काँपते हैं। इसलिए तुमने यज्ञ का भार उठाकर देवताओं का पूजन किया है।३। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म वाले हो। तुमने मनु और पुरूरवा राजा को स्वर्ग के सम्बन्ध में बताया था। जब मातृ-भूत-भूत दो काष्ठों में उत्पन्न होते हो तब तुम्हें पूर्वकी ओर ले जाते हैं।४। हे पोषण-शक्ति वाले अग्ने ! स्रुक् हाथ में लिए हविदाता तुम्हारी स्तुति करता है तथा वषट्‌कार-सहित आहुति देता है। तुम प्रधान पुरुष उन यजमानों को प्रकाशित करते हो। ।५। (३२)

त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः ।।६
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ।।७
त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ।।८
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारव त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ।।९
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस् त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ।१०।३३

हे विशिष्ट द्रष्टा अग्ने ! तुम पाप-कर्मियों का भी उद्धार करते हो। तुम युद्ध उपस्थित होने पर थोड़े से धर्मवीरों द्वारा भी बहुसंख्यक पापियों को नष्ट करा देते हो ।६। हे अग्ने ! तुम उस सेवक कोभी अविनाशी पद देकर यशस्वी बनाते हो । उस पद की देवता और मनुष्य दोनों ही कामना करते हैं । तुम अपने साधकको अन्न-धन द्वारा सुखी करतेहो ।७। हे अग्ने ! हमको धन-प्राप्ति की योग्यता दो । साधकको यशस्वी बनाओ । नये उत्साहसे यज्ञादि कर्म करें। देवताओं-सहित आकाश-पृथिवी हमारे रक्षकहों ।८। हे निर्दोष अग्ने ! तुम देवताओंमें चैतन्य, आकाश-पृथिवी के मध्यमें स्थित, हमको पुत्र-रूप समझो । तुम शासकका कल्याण करने वाले उसे हर प्रकार का ऐश्वर्य दो।९। हे अग्ने ! तुम कृपा करन वाले हो । तुम्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, तुम वीर-युक्त गुण वाले और सहस्रों धनों के कर्त्ता हो ।१०। (३३)

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इलामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ।।११
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ।।१२

त्वमग्ने येज्यवे पायुरन्तरो ऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्यो ऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन् मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ।।१३
त्वमग्न उरुशंसाय वाधते स्पार्हं यद् रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः।१४
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज् जीवयाजं यजते सोपमा दिवः।१५।३४

हे अग्ने ! तुमको देवताओं ने मनुष्यों का हित करने को उनका राजा (स्वामी) बनाया है । मेरे पिता (अङ्गिरा ऋषि)के पुत्र-रूप से जब तुम उत्पंन हुए तब देवताओं ने इड़ा को मनु की उपदेशिका बनाया ।११। हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से धनी हुए हमारे शरीरोंका पोषण और रक्षण करो । अविलम्ब हमारी मन्तान और पशुओंकी रक्षा करो ।१२। हे अग्ने ! तुम पूजकके पालन-कर्त्ताहो । जिससे तुमको अहिंसित हवि दी है और जो निरस्त्र है,उसे तुम सब ओर से देखते हो । तुम अपने साधक की कामना पर ध्यान देते हो ।१३। हे अग्ने ! उत्तम अभीष्ट धन को ऋत्विज के निमित्त साध्य करते हो । तुम निर्बल के पिता और मूर्ख को ज्ञान देने वाले हो ।१४। हे अग्ने ! तुम दक्षिणा वाले यजमान के लिए कवच के समान रक्षक हो । जो अपने घर में मधुर अग्नि-हविसे सुख देने वाले यज्ञ को करता है, वह स्वर्गीय उपमाका अधिकारी होता है ।१५। (३४)

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम् ।।१६
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जन मा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ।।१७
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान् त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ।१८।३५

हे अग्ने ! तुम हमारे यज्ञ में हुई भूलों को क्षमा करो । जो कुमार्ग में बहुत बढ़ गया है, उसे क्षमा करो । तुम सोम वाले यजमान के बन्धु, पिता

और उस पर कृपा करने वाले हो ।१६। हे अग्ने ! हे अङ्गिरा ! तुम अत्यन्त पवित्र हमारे यज्ञ को प्राप्त होओ । पूर्वकाल में मनु, अङ्गिरा, ययाति के यज्ञ में आने वाले देवताओं को बुलाकर कुश पर प्रतिष्ठित करते हुए उनका पूजन करो ।१७। हे अग्ने ! इन मन्त्र रूप-स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ । यह स्तुति-शक्ति ज्ञान से तुम्हारे निमित्त ही हमने प्राप्त की है । तुम हमको ऐश्वर्य प्रदान करो और बल देने वाली बुद्धि दो ।१८। (३५)

सूक्त ३२

(ऋषि—हिरण्यस्तूपः आङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुत्)

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥१
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२
वृषायमाणो ऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिवत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ।५।३६

पूर्वकाल में वज्रधारी इन्द्र ने जो पराक्रम किए, उन्हें कहता हूँ । पहिले इन्होंने मेघ को मारा, फिर वर्षा की । प्रवाहित नदियों के लिए मार्ग बनाया ।१। इस इन्द्र के लिए त्वष्टा ने शब्दकारी वज्र को पैदा किया, जिससे पर्वत में टिके हुए मेघ को मारकर जल निकाला ! वे जब रम्भाती हुई गायों के समान सीधे समुद्र को चले गये ।२। बैल के समान बल से इन्द्र ने सोम का विवरण किया । त्रिकद्रु की (तीन प्रकार के) यज्ञ में सींचे हुए सोम को पिया । धनेश

इन्द्रने वज्र को ग्रहण कर मेघों में उत्पन्न जलको वेधा ।३। हे इन्द्र तुमने मेघों में उत्पन्न प्रथममेघ (वृत्र)का वध किया, प्रपंचियोंका नाश किया । फिर सूर्य, उषा और आकाश को प्रकट किया तब कोई शत्रु शेष नहीं रहा ।४। इन्द्र से घोर अन्धकार करने वाले वृत्रासुर का भीषण वज्र से वृक्षों के तनों के समान काट डाला । तब वह पृथिवी पर गिर पड़ा ।५। (३६)

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥७
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ।१०।३७।

मिथ्याभिमानी वृत्र ने महाबली, शत्रुनाशक, अत्यन्त वेग वाले इन्द्र को नौसिखिए को बुलाने के समान ललकारा । तब इन्द्र ने घोर जय-वर्षा की, जिससे बहते हुए वृत्रने नदियोंको भी पीस डाला ।६। पाँव और हाथों से हीन वृत्र ने इन्द्र से युद्ध की इच्छा व्यक्त की । इन्द्र ने उसके कन्धे पर वज्र प्रहार किया । तब वह क्षत-विक्षत हो धराशायी हुआ ।७। जैसे नदी-तटों को लाँघ जाते हैं, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल वृत्र को लाँघ जाते हैं । जो वृत्र अपने बल से जलों को रोक रहा था, वही अब उनके नीचे पड़ा सो रहा है ।८। वृत्र की माता उसकी रक्षाके लिए उसकी देह पर टेढ़ी होकर छागई । परन्तु इन्द्र के प्रहार करने पर वह बछड़े के साथ गौ के समान सो गयी ।९। स्थितिहीन अविश्रान्त जलों के मध्य गिरे हुए वृत्रासुर के देह को जल जानते हैं । वह अनन्त निद्रा में लीन पड़ा है ।१०। (३७)

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥११
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन् नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४
इन्द्रो यातो ऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान न नेमिः परि ता बभूव ।१५।३८

जैसे गायें छिपी हुई थीं, वैसे ही जल भी रुके हुए थे। इन्द्र ने वृत्र को मारकर उसके द्वार को खोल दिया ।११। हे इन्द्र ! जब तुम पर वृत्र ने प्रहार किया तब तुम घोड़े के बाल के समान हो गये। हे वीर ! तुमने गौओं और सोमों को जीतकर सातों समुद्रों को प्रवाहित किया ।१२। वृत्र द्वारा छोड़ी हुई बिजली, मेघ की गर्जना, जल-वर्षा भीषण वज्रभी इन्द्र का स्पर्श न कर सके। उस युद्ध में इन्द्र ने उसे हर प्रकार जीत लिया ।१३। हे इन्द्र ! तुमने वृत्र पर आक्रमण करते हुए क्या किसी अन्य आक्रमणकारीको देखा,जिसके कारण तुम बाज पक्षी के समान निन्यानवे नदियों के पार चले गये ।१४। वज्रधारी इन्द्र सभी स्थावर, जङ्गम प्राणियों के स्वामी हैं। वही मनुष्यों पर शासन करते हैं। पहियों की लीक जैसे रथ को धारण करती है। वैसे ही इन्द्र ने इन सबको व्यवस्थित कर लिया ।१५। (३८)

॥ द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त ३३

(ऋषि–हिरण्यस्तूप, आङ्गिरस । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥१

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२
नि सर्वसेन इषुधींरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥४
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्राऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ।५।१

आओ गाय की इच्छा वाले हम इन्द्र के समक्ष उपस्थित हों । वे विघ्न-नाशक, हमारे धनको बढ़ाते हुए, हमारी गौ की इच्छाको पूण करेंगे ।१। जैसे युद्ध में स्तोता बुलाते हैं, उस इन्द्र का कोई सामना नहीं कर सकता । मैं उस धनदाता इन्द्र की उपयुक्त स्तोत्रोंसे पूजन करता हुआ अभिलाषा करता हूँ ।२। सेना वाले इन्द्रने स्तोताओं के पक्षमें तूणीर किस लिये । प्रजाओंके स्वामी वे इन्द्र गवादि धन को जीतने में समर्थ हैं । हे इन्द्र ! तुम हमारे साथ विनिमय करने वाले न बनो ।३। हे इन्द्र सहायक मरुतों के साथ अपने भीषण वज्र से बहुत धन के चोर वृत्र को तुमने मारा । फिर उस वृत्र के अनुचरों ने संगठित होकर तुम पर आक्रमण किया, तब वे यज्ञ-कर्मों से हीन मृत्यु को प्राप्तहुए ।४। हे इन्द्र ! यज्ञ-कर्म वालों के सामने से अयाज्ञिक भाग गये । हे अश्वयुक्त, युद्धमें डटे रहने वाले भीषण इन्द्र ! तुमने आकाश और पृथिवी पर स्थित व्रत-हीनों को निःशेष कर दिया ।५। (१)

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः शंसमावः ॥७

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥८
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ।१०।२

अयाज्ञिकों ने अनिन्द्य इन्द्र से लड़ने की इच्छा की। तब वीरों के साथ कायरों के युद्ध करनेके समान परास्त हुए ।६। हे इन्द्र ! तुमने रोते और हँसते हुये वृत्रों को युद्ध में मारा। चोर वृत्र को ऊँचा उठाकर आकाश से जलाकर गिराया। फिर तुमने सोम वालोंकी स्तुतियोंसे हर्ष प्राप्त किया ।७। उन वृत्रों ने भूमि को ढक लिया, वे स्वर्ण-रत्नादि से युक्त हुए। परन्तु वे इन्द्र को न जीत सके। इन्द्र ने उन्हें सूर्यके द्वारा भगा ।८। हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी का सब ओर से उपयोग किया है। तुमने अपने अनुयाइयों द्वारा विरोधियोंको जीता। तुम्हारी मन्त्र-रूप स्तुतियों ने शत्रु पर विजय प्राप्त की ।९। मेघ आकाश-पृथिवी की सीमा को प्राप्त नहीं करते और गर्जन करते हुए अन्धकारादि कर्मों से भी सूर्य रूप इन्द्र को नहीं ढक सकते परन्तु इन्द्र अपने सहायक वज्र से, मेघ से जलों को गाय के समान दुह लेता है ।१०।   (२)

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्याऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११
न्याविध्यदिलीविशस्य दृह्ला वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥१२
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ।१५।३

स्वेच्छानुसार बहने वाले जलों में वृत्र बढ़ने लगा, तब इन्द्र ने उसे अपने शक्ति-साधनों से मार डाला ।११। इन्द्र ने भूमि की गुफा में सोये हुए वृत्र के गढ़ों का भेदन किया और उस सींग वाले को ताड़ना दी । हे धनवान् इन्द्र ! तुमने अपने बल-वेग से शत्रु को नष्ट कर दिया ।१२। इन्द्र के वज्र ने शत्रुओं को लक्ष्य कर तीक्ष्ण वर्षा के जल से उनके दुर्गों को छिन्न-भिन्न किया, उन्हें वज्र से मारकर स्वय उत्साहित हुआ ।१३। हे इन्द्र ! तुम जिस "कुत्स" को चाहते थे, उसकी तुमने रक्षा करते हुए 'दशायु' नामक बैल को भी बचाया । अश्वके खुरों से धूल उड़कर आकाश तक फैल गई तब भी तुम रण-क्षेत्रमें खड़े रहे ।१४। हे इन्द्र ! भूमि की इच्छा से जल में गये हुए 'श्वेत्रेय" की तुमने रक्षा की । जलों पर ठहरकर चिरकाल तक युद्ध करते रहे । शत्रुओं के ऐश्वर्य को तुमने जलों के नीचे पहुँचा दिया ।१५। (३)

सूक्त ३४

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुवाँ याय उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससो ऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ।।१
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ।।२
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ।।३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विन युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ।।४
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवतातातां त्रिरुता धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वा सूरे दुहिता रुहद् रथम्।।५

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ।६।४

हे मेधावी अश्विनीकुमारो ! यहाँ आज तीन बार आओ । तुम्हारा मार्ग और दान दोनों ही विस्तृत हैं । जाड़ों में वस्त्रोंके सहारे की भाँति हमको तुम्हारा ही सहारा है । तुम विद्वानोंके माध्यम से हमको प्राप्त होओ ।१। तुम्हारे मिष्टान्न ढोने वाले रथ में तीन पहिए हैं । देवताओं ने यह बात चन्द्रमा की प्रिय पत्नीके विवाह के समय जानी । उसमें सहारेके लिए तीन खम्भे लगे हैं । हे अश्विनो कुमारो ! तुम उस रथ से रात्रि में तीन-तीन बार गमन करते हो ।२। हे दोष कों ढकने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दिनमें तीन बार विशेष कर आज तीन बार यज्ञ को मधुर रस से सीचो और दिन-रात में तीन-तीन बार हमारे लिए अन्नों को लाओ ।३। हे कुमारद्वय ! तुम तीन बार हमारे घर आओ । तुम अपने अनुयायी जनको तीनबार सुरक्षित करो। हमको तीन बार सुखदायक पदार्थ तथा तीनबार ही दिव्य अन्न प्राप्त कराओ ।४। हे अश्विद्वय ! हमें तोन बार धन दो । हमारी वृत्तियों को तीनबार देवाराधन में प्रेरित करो । हमको सौभाग्य और यशभी तीन-तीन बारदो । तुम्हारे रथ पर सूर्य-पुत्री (उषा) चढ़ी हुई है ।५। हे अश्विद्वय ! हमें रोगनाशक दिव्यऔषधियाँ तीन बार दो । पार्थिव औषधियाँ तीन बार दो । जलोंसे तीन बार रोगों को नाश करो हमारी सन्तान की रक्षा करो और सुख दो सब सुखों को तिगुने रूप में प्रदान करो ।६। (४)

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे हरि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ।।७
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ।८
क्वत्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीलाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ।।९

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ॥१०
आ नासत्य त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनाऽर्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ।१२।५

हे अश्विद्वय ! तुम नित्य तीन बार पूजने योग्यहो । तुम पृथिवीपर तीन बार तीन लपटे वाले कुशासनपर सोओ । हे असत्य-रहित रथी ! आत्मा-द्वारा शरीरों को प्राप्त करने के समान तुम तीन यज्ञोंको प्राप्त कराओ ।७। हे अश्विद्वय ! सप्त मातृ-भूत जलों द्वारा हमने तीन बार सोमों कों सिद्ध किया है । यह तीन कलश भरकर है । इसी प्रकार से हवि भी तैयारकी है । तुम आकाश केऊपर चलते हुए तीनों लोकोंकी रक्षा करतेहो।८। हे अश्विद्वय ! जिस रथ के द्वारा तुम यज्ञको प्राप्त होते हो, उस त्रिकोण रथके तीन पहिए किधर लगे हैं ? रथ के आधारभूत तीनों काष्ठ कहाँ है ? तुम्हारे रथ में बलशाली गर्दभ कब संयुक्त किया जायेगा ? ।९। हे अश्विद्वय ! आओ, मैं हव्य देता हूँ ।अतः मधु पान करने वाले सुखों से मधुर हवियों को ग्रहण करो । उषा काल से पूर्व तुम्हारे घृतयुक्त रथको यज्ञ में आनेके लिए प्रेरणा देते हैं ।१० । हे असत्य-रहित अश्वियो ! तुम तेंतीस देवताओं के साथ यहाँ आकर मधु-पान करो । हमको आयु देकर पापों को हटाओ । शत्रुओं को भगाकर हम में वास करो ।११। हे अश्वियो ! त्रिकोण रथ-द्वारा, वीरों से युक्त ऐश्वर्य को यहाँ लाओ । तुम्हारा आह्वान करता हूँ । तुम युद्धों में हमारी बल-वृद्धि करो ।१२। (५)

सूक्त ३५

(ऋषि—हिरण्यस्तुप, आङ्गिरसः । देवता—अग्नि मित्रावरुणौ, प्रकृतिः
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥१

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥२
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥३
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथँ सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषी दधानः ॥४
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥५
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥६।६

कल्याण के लिए अग्नि, मित्र और वरुण का आह्वान करता हूँ और प्राणियों को विश्राम देने वाली रात्रि तथा सूर्य देवता का रक्षा के लिये आह्वान करता हूँ ।१। अन्धकार पूर्ण में भ्रमण करते हुए प्राणियों को चैतन्य करने वाले सूर्य सोने के रथसे हमको प्राप्त होते हैं ।२। वे सूर्य देवता नीचे मार्गों या ऊँचे मार्गों पर श्वेत अश्वों से युक्त रथ पर गमन करते हैं वे अन्धकारादि का नाश करते हुए दूर से आते हैं ।३। पूज्य एवं अद्भुत रश्मियों से युक्त सूर्य, अन्धकारयुक्त लोकों के निमित्त शक्ति को धारण करते हैं । वे स्वर्ण-साधनों से युक्त रथ पर चढ़ते हैं ।४। श्वेत आश्रय वाले, जुओंको बांधने वाले स्थान-युक्त रथ को चलाते हुए सूर्यके अश्वों ने मनुष्यों को प्रकाश दिया । सब प्राणी और लोक सूर्य के अङ्क में ही स्थित हैं ।५। तीन लोकों में पृथिवी सूर्य के समीप हैं । एक अन्तरिक्ष यमलोक का द्वार-रूप है । रथ के पहिए की अगली कील अवलम्बित रहने के समान सभी नक्षत्र सूर्य पर अवलम्बित हैं ।६। (६)

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥७
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास् त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।

हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूयमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृलीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥१०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ।११।७

गम्भीर कम्पनयुक्त, सुन्दर प्राणयुक्त सविता ने अन्तरिक्ष को प्रकाशित किया है। वह सूर्य कहाँ रहता है, उसकी किरणें किस आकाश में व्याप्त हैं—यह कौन कह सकता है ? ।७। सूर्य ने पृथिवी की आठों दिशाओं को मिलाने वाले तीनों को और सातों समुद्रोंको प्रकाशित किया। वह स्वर्णिम नेत्र वाले सूर्य साधक को धन देने के निमित्त यहाँ आवें ।८। सोनेके हाथ वाले सर्वद्रष्टा सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य गति करते हैं। वे रोगादि बाधाओं को मिटाकर अन्धकार नाशक तेज से आकाश को व्याप्त कर देते हैं ।९। सुवर्ण-पाणि, प्राणवान्, श्रेष्ठ, कृपालु, ऐश्वर्यवान्, सूर्य हमारे सामने आवें। वे सूर्य नित्यप्रति राक्षसों का दमन करते हुए यहाँ ठहरें ।१०। हे सूर्य ! आकाश में तुम्हारे धूल-रहित पुरातन मार्ग सुनिर्मित हैं। उन मार्गोंसे आकर हमारी रक्षा करो। जो मार्ग हमारे अनुकूल हो, उसे बताओ ।११। (७)

सूक्त ३६ (आठवाँ अनुवाक)

(छन्द—कण्वो घौरः। देवता—अग्निः। छन्द—बृहती आदि)

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्नि सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईलते ॥१
जनासो अग्नि दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमनां इहाविता भव। वाजेषु सन्त्य ॥२
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥३
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ।४
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ।५।८

हे मनुष्यो ! तुम बहु-संख्यक व्यक्ति देवताओं की कामना करते हो। तुम्हारे निमित्त हम उन महान् अग्नि के सूक्त-वचनों द्वारा प्रार्थना करते हैं। उनकी अन्य लोग भी स्तुति करते हैं ।१। मनुष्यों ने जिस बलवर्द्धक अग्नि को धारण किया है, हम उसको हवियों से तृप्त करें। दानी ! तुम प्रसन्न होकर, इस युद्धमें हमारी रक्षा करो ।२। हे सम्पूर्ण ऐश्वय वाले, देव-दूत और होता! तुम्हारा हम वरण करते हैं। तुम महान् और सत्य-रूप हो। तुम्हारी लपटें आकाश की ओर उठती हैं ।३। हे अग्ने ! तुम पुरातन पुरुष को वरुण, मित्र और अर्यमा प्रदीप्त करते हैं। तुमको हवि देने वाला साधक सभी धनों को प्राप्त करता है ।४। हे अग्ने ! तुम मन को प्रसन्न करने वाले, प्रजाओं के स्वामी, गृह-पालक और देवदूत हो। देवताओं के सभी कर्म तुम में मिलते हैं ।५। (८)

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥६
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥७
घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्दददश्वो गविष्टिषु ॥८
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥९
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ।१०।९

हे युवा अग्ने ! तुम सौभाग्यशाली हो क्योंकि तुममें ही सब हवियाँ डाली जाती हैं। तुम प्रसन्न होकर हमारे निमित्त आज और आगे भी पराक्रमी देवताओं का पूजन करो ।६। नमस्कार करने वाले व्यक्ति स्वयं प्रकाशित अग्निकी पूजा करते हैं। शत्रुओं से डरे हुए मनुष्य स्तुतियों द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ।७। देवताओं ने प्रहार पूर्वक वृत्र को जीता और तीनों लोकों का विस्तार किया। अभीष्ट-वर्षक अग्नि आह्वान करनेपर मुझ कण्वको गवादि धन प्रदान करें ।८। हे अग्ने ! आओ, विराजमान होओ। देवताओं के ज्ञान वाले, तुम चैतन्य होओ। उत्तम लालिमा लिए सुन्दर धुएँ को फैलाओ ।९। हे हविवाहक अग्ने ! तुम पूजने-योग्य को देवताओं ने मनुके निमित्त इस लोक में स्थापित किया। तुम धन से सन्तुष्ट करने वाले को कण्व और मेधातिथि ने (६)
तथा वृषा और उपस्तुत ने धारण किया ।१०।

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि ॥११
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम्।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृल महाँ असि ॥१२
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥१३
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ।१५।१०

जिस अग्नि को मेधातिथि और कण्व ने यज्ञ के लिए प्रज्वलित किया, वह अग्नि दीप्तिमान् है। इन ऋचाओं द्वारा हम उस अग्निको बढ़ाते हैं ।११। हे अन्नवान् अग्ने ! हमारे भण्डार भरो। तुम देवताओं के मित्र और ऐश्वर्य के स्वामी हो। हे महान् ! हम पर कृपा करो ।१२। तुम हमारी रक्षा के लिए ऊँचे खड़े होओ। तुम उन्मत्त शक्तिके प्रदाता हो। हम विद्वानों के सह-

योग से तुम्हारा स्तवन करते हैं ।१३। तुम उन्नत हुए पाप से हमारी रक्षा करो । मनुष्यो-भक्षकोंको भस्म कर हमको जीवनमें प्रगति करने के लिए ऊँचा उठाओ । हमारे कार्यों को देवताओं के प्रति निवेदित करो ।१४। हे अग्ने ! दैत्यों से रक्षा करो । दान करने वालों को बचाओ । तुम महान् दीप्ति वाले, निपट युवा और हिंसकों से रक्षा करने वाले हो, हमारी रक्षा करो ।१५।

(१०)

घनेव विष्वग्वि जह्यरोवणस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥१६
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन् मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ।१७
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ।:१८
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१९
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमित् यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ।२०।११

हे सन्ताप देने वाली दाढ़ों वाले अग्नि देव ! दृढ़ सोटे से मारने के समान दान न देने वाले को मारो । हमारे द्रोहियों और रात्रि में हमारे लिए शस्त्र पैनाने वालों के आधिपत्य को रोको ।१६। अग्नि ने मेरे निमित्त सौभाग्य की इच्छा की । उन्होने मेधातिथि और उपस्तु की धन-प्राप्ति के लिए रक्षा की ।१७। "तुर्वश" "यदु" और "उग्रदेव" को अग्नि के साथ दूर से बुलाते हैं । वे "नावस्त्व" बृहद्रथ" और "तुर्वीति" को भी यहाँ बुलावें ।१८। हे ज्योतिर्मान् अग्ने ! तुमको मनुष्यों के लिये मनु ने स्थापित किया । तुम यज्ञ के लिए प्रकट होकर हवि से तृप्त हो । साधक तुमको नमस्कार करते हैं ।१९। अग्नि की प्रदीप्त ज्वालाएँ बलवती और उग्र होती है

उनका सामना नहीं किया जा सकता । हे अग्ने ! तुम राक्षसोंको और मनुष्य-भक्षियोंको भस्म करो ।२०। (११)

सूक्त ३७

(ऋषि—कण्वो घौरः । देवता—मरुत । छन्द—गायत्री)

क्रीलं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ।।१
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः।२
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ।।३
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं गायत ।।४
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीलं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे।५।१२

हे कण्व गोत्र वाले ऋषियों ! क्रीड़ायुक्त अहिंसित मरुद्गण रथपर सुशोभित हैं । उनके लिए स्तुति-गान करो ।१। वे स्वयं प्रकाश वाले, बिन्दुचिह्न-युक्त मृग-वाहन शस्त्रों, युद्ध में ललकारों आभूषणादिसे युक्त उत्पन्न हुए हैं ।२। इनके हाथों में चाबुक का शब्द हम सुन रहे हैं । यह अद्भुत चाबुक युद्ध में साहस बढ़ाने वाली है ।३। वे मरुद्गण तुम्हारे बल को बढ़ाते और यशस्वी बनाते हैं, उन शत्रु-नाशक की स्तुति करो ।४। दुग्धदात्री धेनुओंने बैलसे क्रीड़ा करने वाले मरुद्गण की स्तुति की । वह वृष्टि-रूप रस को पीकर वृद्धि को प्राप्त हुए हैं ।५। (१२)

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । तत् सीमन्तं न धूनुथ।।६
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ।।७
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः भिया यामेषु रेजते ।।८
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ।।९
उद् त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ।१०।१३

आकाश-पृथिवी को कम्पित करने वाले मरुतो ! तुममें बड़ा कौन है ? तुम वृक्ष की डालियों के समान लोकों को हिलाते हो ।६। हे मरुतो ! तुम्हारी गति और क्रोध से भयभीत मनुष्यों ने सुदृढ़ खम्भे खड़े किए हैं । तुम बड़े

जोड़ों वाले पर्वतों को भी कँपा देते हो ।७। उन मरुतों की गति से पृथिवी वृद्ध राजा के समान भय से काँपती है ।८। इनका जन्म-स्थान स्थिर है । उनकी मातृ-भूमि आकाश में पक्षी की गति भी निर्बाध है । उनका बल दुगुना होकर व्याप्त है ।९। ये अन्तरिक्ष में उत्पन्न मरुद्गण गमन के लिये जल का विस्तार करते हैं । और रम्भाने वाली गायों को घुटने-घुटने जल में ले जाते हैं ।१०।
(१३)

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ।११
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ।।१२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ।।१३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ।।१४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् ।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ।१५।१४

अवश्य ही मरुद्गण उस विशाल, अबाध्याय वेन-पुत्र को अपनी गति से कँपाते हैं ।११। हे मरुतो तुमने अपने बल से मनुष्यों को कर्म में प्रेरित किया है । तुम्हीं मेघों को प्रेरित करने वाले हो ।१२। मरुद्गण चलते हैं, तब मार्ग में परस्पर बातें करते हैं । उनके उस शब्द को सुनते हैं ।१३। हे मरुतो ! वेग वाले वाहनसे शीघ्र आओ । यह कण्ववंशी और अन्य विद्वान एकत्रित हैं उनके द्वारा हर्ष प्राप्त करो ।१४। हे मरुतो ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए हवि प्रस्तुत है । हम आयु प्राप्त करने के लिए यहाँ विद्यमान हैं ।१५। (१४)

सूक्त ३८

(ऋषि—कण्वो घौरः । देवता—मरुतः । छन्द—गायत्री)

कच नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ।।१
क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः ।
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता । क्वो विश्वानि सौभगा।।३
यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ।।४
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्य गादुप ।५।१५

हे स्तुतियों को चाहने वाले मरुतो ! तुम्हारे लिए कुशा बिछायी गयी है।
पिता-द्वारा पुत्र को धारण करने के समान तुम हमें कब धारण करोगे ? ।१।
हे मरुतो ! अब तुम कहाँ हो ? किसलिए आकाश मार्ग में घूमते हो ? पृथिवी
में क्यों नहीं घूमते ? तुम्हारी गौएँ तुम्हें नहीं पुकारतीं क्या ? ।२। हे मरुतो !
तुम्हारी अभिनव कृपाएँ, शुभ और सौभाग्य कहाँ हैं ? ।३। हे आकाश-पुत्रो !
यद्यपि तुम मरणधर्मा पुरुष हो तुम्हारा स्तोता (उपदेष्टा) अमर और शत्रु से
कभी नष्ट न होने वाला हो।४। जिस प्रकार घास के मैदान में मृग आहार
प्राप्त करता है पर मृग के लिए घास असेवनीय नहीं होती उसी प्रकार स्तोता
भी सेवा प्राप्त करता रहे जिससे उसे यम-मार्ग से न जाना पड़े ।५। (१५)

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् । पदीष्ट तृष्णया सह ॥६
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥७
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८
दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन ।यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥९
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः।१०।१६

बारम्बार प्राप्त होने वाली पाप की शक्ति हमारी हिंसा न करे। वह तृण
के समान नष्ट हो जाय ।६। वे कान्तिमान् रुद्र के पुत्र मरुद्गण मरुभूमि में भी
वायु-रहित वर्षा करते हैं ।७। रम्भाने वाली गौके समान जब बिजली कड़कती
है और वर्षा होती है तब बछड़े का पोषण करने वाली गायके समान ही मौन
हुई बिजली मरुतों की सेवा करती है ।८। जलवर्षक बादलों मरुद्गण दिन में
भी अंधेरा कर देते हैं। उस समय वे भूमि को वर्षा से सींचते हैं ।९। मरुतों
की गर्जना से पृथिवी पर बने हुए घर तथा मनुष्य भी काँप जाते है ।१०।
(१६)

मरुतो वीलुपाणिभिश् चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥११
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः॥१२
अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम्।१३
मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४

वन्दस्व मारुत गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ।१५।१७

हे मरुद्गण ? तुम दृढ़ खुर वाले निरन्तर गति वाले अश्वों-द्वारा उज्ज्वल नदियों की ओर गति करो ।११। हे मरुतो ! तुम्हारी पहिये की हाल, रथ की धुरी और रासें उत्तम हों तथा अश्व स्थिर, बलिष्ठ हों ।१२। मित्र के समान वेद-रक्षक अग्निको साध्य बनाकर स्तुति-वचनों का उच्चारण करो ।१३। अपने मुख से स्तोत्र रचना । मेघ के समान स्तोत्र को बढ़ाओ । शास्त्रानुकूल स्तोत्र का गायन करो ।१४। कांतिमान्, स्तुत्य और स्तुतियों से युक्त मरुतों की स्तुति करो । वे महान् हमारे यहाँ वास करें '१५। (१७)

सूक्त ३८

(ऋषि—कण्वो घौरः । देवता—मरुतः । छन्द—बृहती)

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥१
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कमे ।
युष्माकमस्तु तविषी यनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥२
परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥३
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४
प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ।५।१८

हे कंपाने वाले मरुतो ! जब तुम दूर से धारा के समान, अपने तेज को इस स्थान पर फेंकते हो तब तुम किसके यज्ञ से आकर्षित होते और किसके पास जाते हो ? ।१। हे मरुतो ! तुम्हारे शस्त्र शत्रुओं का नाश करने को स्थिर हों । दृढ़ता पूर्वक शत्रुओं को रोकें । तुम्हारा बल स्तुत्य हो । कपट

करने वालों की हमारे निकट प्रशंसा न हो ।२। हे मरुतो ! तुम वृक्षों को गिराते, पत्थरों को घुमाते और पृथिवी के नये वृक्षों के मध्य से तथा पर्वतोंमें छिद्र करके निकल जाते हो ।३। हे शत्रु-नाशक मरुतो ! आकाश और पृथिवी में तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है । हे रुद्र पुत्रो ! तुम मिलकर शत्रुओं के दमनके बल बढ़ाओ ।४। वे मरुद्गण पर्वतों को कम्पित करते, वृक्षों को पृथक्-पृथक् करते हैं। हे मरुतो ! ! तुम मदमत्त के समान प्रजागण के साथ आगे चलो ।५। (१८)

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥९
असाम्योजो बिभृथा सुदानवो ऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ।१०।१९

हे मरुतो ! तुमने बिन्दुयुक्त मृगों को रथ में जोड़ा है । लाल मृग सबसे आगे जुड़ा है । पृथिवी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है और मनुष्य भयभीत हो गये हैं ।६। हे रुद्र-पुत्रो ! सन्तान की रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं । जैसे तुम पूर्वकाल में रक्षा के लिए आये थे, वैसे ही भयभीत यजमान के पास आओ ।७। हे मरुतो ! तुम्हारे द्वारा सहायता-प्राप्त या किसी अन्य द्वारा उकसाया हुआ शत्रु हमारे सामने आये तों तुम उससे अपने बल, तेज और रक्षक साधनों-द्वारा दूर हटा दो ।८। हे पूजनीय मेधावी मरुतो ! तुमने कण्व को सम्पूर्ण ऐश्वर्य दिया था । बिजलियों से वर्षा के निमित्त होने के समान समग्र रक्षण-साधनों से युक्त हुए हमको प्राप्त होओ ।९।

हे मङ्गलमय मरुतो ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। हे कम्पित करने वाले, तुम सम्पूर्ण बलों से युक्त हो। अतः ऋषि से यों वैर करने के प्रति अपनी उग्रता को प्रेरित करो।१०। (१९)

सूक्त ४०

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता—ब्रह्मणस्पति। छन्द—बृहती।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुत, सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥२
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥३
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इलां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥४
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ।५।२०

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो। देवताओंकी कामना करने वाले हम तुम्हारीस्तुति करते हैं। कल्याणकारी मरुद्गण हमारे निकट आवें। हे इन्द्र! तुम शीघ्र यहाँ आओ।१। हेबल के पुत्र ब्रह्मणस्पते ! धनी होने पर मनुष्य सुन्दर घोड़ों और बल से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।२। ब्रह्मणस्पति हमको प्राप्तहों। प्रिय सत्यरूप वाणी हमको प्राप्त हो। देवगण पञ्च हवि से युक्त हमारे यज्ञ में मनुष्यों के हित के लिए आवें।३। ऋत्विज को उत्तम धन देने वाला यजमान अक्षय प्राप्त करता है। उसके लिए लिए हम शत्रु (हिंसक) के द्वारा न मारी जाने वाली इड़ा को यज्ञ में बुलाते हैं।४। ब्रह्मणस्पति ही शास्त्र-सम्मत मंत्र का उच्चारण करतेहैं। उस मंत्रमें इन्द्र,वरुण,मित्र और अर्यमाका वास है।५।(२०)

तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥६
को देवयन्तमश्नवज् जनं को वृक्तबर्हिषम्।
प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिताऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥७
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ।८।२१

हे देवगण ! सुखकारक, विघ्ननाशक मंत्र का यज्ञ में हम उच्चारण करें। हे पुरुषो यदि उस मंत्ररूप वाणी को चाहते हो तो हमारे सभी सुन्दर वचन तुमको प्राप्तहों।६। देवताओं की कामना करने वालेके पास कौन आवेगा? कुश बिछाने वाले के पास कौन आवेगा ? हविदाता यजमान अन्य मनुष्यों के साथ पशु, पुत्रादि-युक्त घर के लिए चल चुका है ।७। ब्रह्मणस्पति अपने बलको बढ़ाकर राजा के साथ होकर शत्रु का नाश करते हैं। भय के समय सुख देने वाले होते हैं। वे वज्रधारी युद्धों में किसीं से दबते यहीं ।८। (२१)

सूक्त ४१

(ऋषि–कण्वो घौरः। देवता–आदित्यादयः। छन्द–गायत्री)

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित् स दभ्यते जनः ॥१
यं बाहुतेव पिप्रति यान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥२
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः॥३
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्तिं वः ॥४
य यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा।
प्र वः स धीतये नशत् ।५।२२

उत्कृष्ट ज्ञानी वरुण, मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करें, उस मनुष्य को कोई नहीं मार सकता ।१। अपने हाथ में विभिन्न धन देते हुए वरुणादि देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई शत्रु संतप्त नहीं कर सकता, बल्कि वह सब ओर से बढ़ता है ।२। वरुणादि देवता साधकों के कष्टों का नाश करते, शत्रुओं को मारते और दुःखों को दूर कर देते हैं ।३। हे आदित्यो !

यज्ञ को प्राप्त होने के लिए तुम्हारे मार्ग में कोई कंटक नहीं है। इस यज्ञ में तुम्हारे लिए हवि-रूप भोजन निकृष्ट नहीं है।४। हे पुरुषो ! जिस यज्ञको सरल विधान से करते हो, वह यज्ञ तुम्हें प्राप्त हो।५। (२२)

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं योकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥६
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ॥७
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्।
सुम्नैरिद् व आ विवासे ॥८
चतुरश्चिद् ददमानाद् विभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥९॥२३

हे आदित्यो ! तुम्हारा साधक किसी से पराजित नहीं होता। वह उपभोग्य धन और सन्तानों को प्राप्त करता है।६। हे मित्रो ! मित्र और अर्यमा के स्तोत्र का हम कैसे साधन करें ? वरुण के हवि-रूप भोजन को किस प्रकार सिद्ध करें ?।७। हे देवगण ! यजमानकी हिंसा करने के इच्छुक अथवा उसके प्रति कटु वचन कहने वालेकी बात तुमसे नहीं कहता। मैं तो स्तुतियोंसे तुम्हें प्रसन्न करता हूँ।८। चारों प्रकार के कुकर्म वालों को वश में रखने वाले से डरना चाहिए परन्तु दुर्वचन बोलने वाले को पास न बैठावे।९। (२३)

सूक्त ४२

(ऋषि–कण्वो घौरः। देवता–पूषा। छन्द–गायत्री)

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥१
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि ॥२
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज ॥३
त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥४
आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः ॥५॥२४

हे पूषन् ! हमको दुःखों से पार लगाओ और हमारे पापों को नष्ट करो। हमारे अग्रगामी बनो।१। हे पूषादेव ! हिंसक, चोर,जुआं खेलने वाले जो हम पर शासन करना चाहते हैं, उन्हें हमसे दूर कर दो।२। मार्ग रोकने वाले,

चोरी, लूट करने वाले, कुटिल दस्यु को हमारे मार्ग से हटा दो ।३। हे पूषन् ! तुम पाप को बढ़ावा देने वाले क्रोधी को अपने पैरों से कुचल डालो ।४। हे विकराल कर्म वाले ज्ञानी पूषादेव ! तुम्हारी रक्षा के निमित्त हम स्तुति करते हैं उस रक्षा ने हमारे पूर्व पुरुषों को भी बढ़ाया था ।५। (२४)

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ।।६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ।।७
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ।।८
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ।।९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ।।१०।२५

हे परम सौभाग्यशाली, स्वर्ण-रथ वाले पूषादेव ! हमारे लिए सुसाध्य धनों को प्राप्त करने की शक्ति दो ।६। क्लेश में पड़े हुए हमको शत्रुओं से दूर ले जाओ । हमकों सरल मार्गावलम्वी बनाओ । हे पूषन्! हमारी रक्षाके लिए बल प्रदानकरो ।७। जहाँ कृषिके उपयुक्त सुन्दर भूमिहो हमको वहाँ ले चलो । मार्ग में कोई नया सङ्कट न आवे । हमारी रक्षा के लिए बलिष्ठ होओ ।८। हे समर्थ पूषन् ! हमको इच्छित धनादि दो । हमको तेजस्वी बनाओ । हमारी उदर-पूर्ति करो ।हमारे लिए बल प्राप्त करो ।९। हम पूषादेवकी निन्दा नहीं, स्तुति कहते हैं । हम उस अद्भुत देव से धन मांगते हैं ।१०। (२५)

सूक्त ४३

(ऋषि–कण्वो घौरः । देवता–रुद्रः मित्रावरुणौ । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्)

कद रुद्राय प्रचेतसे मीह्लुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ।।१
यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम्।।२
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ।।३
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलापभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ।।४
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ।५।२६

मेधावी, अभीष्ट-वर्षक, महोली रुद्र के निमित्त किस सुखकारी स्तुति का पाठ करें ।१। जिससे पृथिवी हमारे पशु, मनुष्य, गौ, सन्तान आदि के निमित्त रुद्र-सम्बन्धी ओषधि को उपजावे ।२। जिससे मित्र, वरुण और रुद्र देवता तथा समान प्रीति वाले, अन्य सभी देवता हमसे सन्तुष्ट हों ।३। हम स्तुतियों को बढ़ाने वाले, यज्ञ के स्वामी, सुख-स्वरूप-औषधियों से युक्त रुद्रसे आरोग्य और सुखकी याचना करते हैं ।४। सूर्यकी तरह दमकते हुए, स्वर्ण की तरह चमकते हुए वे रुद्र देवताओं में श्रेष्ठ और ऐश्वर्यों के स्वामी हैं ।५। (२६)

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम्॥७
मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥८
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ।९।२७

हमारे अश्व, मेढ़ा, भेड़ और गवादि के लिए वे रुद्र कल्याणकारी हों ।६। हे सोम ! मनुष्यों में व्याप्त सौगुना ऐश्वर्य दो । हमको बल-सहित महान यश प्रदान करो ।७। सोमयाग में बाधा देने वाले हमको दुःख न दें । शत्रु हम को न सतावें । हे सोम ! हमको बल प्रदान करो ।८। हे सोम ! उत्तम स्थान वाले तुम संसार की मूर्धा के समान अपनी प्रजा पर स्नेह करो । तुम अपनेको विभूषित करने वाली प्रजा को जानने वाले बनो ।९। (२७)

सूक्त ४४ (नवाँ अनुवाक)

(ऋषि—काण्वः प्रस्कण्वः । देवता—अग्न्यादयः । छन्द-बृहती, त्रिष्टुप्)

अग्ने विवस्वदुषसश् चित्रं राधो अमर्त्य ।
मा दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनो ऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥३
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥४
स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ।५।२८

हे अविनाशी, सर्व भूतोंके ज्ञाता अग्ने ! तुम हविदाताके निमित्त विभिन्न धन प्राप्त कराओ तथा प्रातः कालमें जानने वाले देवताओंको भी यहाँ लाओ ।१। हे अग्ने ! वास्तव में तुम देवदूत, हविवाहक और यज्ञोंके रक्षक-रूप हो । ऐसे तुम अश्विनी कुमारों और उषाके सहित महान् पराक्रमसे युक्त हुए हमको यश प्राप्त कराने वाले होओ ।२। धनवान, प्रिय, धूमध्वजा वाले, उषाकाल में प्रकाशित यज्ञों में यज्ञ-रूप से सुशोभित अग्नि का आज हम दौत्य-कर्मके लिए वरण करते हैं ।३। सर्व श्रेष्ठ युवा, सहज-प्राप्य अतिथि-रूप, यजमान के लिए प्रसन्न रहने वाले, सर्व भूतों के ज्ञाता अग्नि का उषाकाल में स्तवन करता हूँ ।४। हे अविनाशी, पोषक, हवि-वाहक, पूज्य अग्ने ! मैं तुम रक्षक का स्तवन करता हूँ ।५। (२८)

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥६
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥७
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववितां पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ।१०।२९

हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम स्तुत्य, मधुर-जिह्व, सरलता से प्राप्त हो। स्तोता की ओर ध्यान दो और आयु-वृद्धि करते हुए देवताओं का पूजन करो ।६। हे ऐश्वर्य वाले ! तुमको मनुष्य उत्तम प्रकार से प्रज्वलित करते हैं। तुम अत्यन्त देवगण को इस स्थान पर लाओ ।७। हे सुन्दर यज्ञ वाले अग्ने ! तुम प्रातःकालों और रात्रियों में उषा अश्विद्वय भग और अग्नि देवताओं के लिए यहाँ लाओ। सोम निष्पन्न कर्त्ता यजमान तुम हविवाहक को प्रदीप्त करते हैं ।८। हे अग्ने ! तुम यज्ञ-स्वामी और प्रजा-दूत हो। तुम प्रातः चैतन्य, प्रकाश-दर्शी देवगण को सोमपान के लिए यहाँ लाओ ।९। हे प्रकाश-रूप-धन के स्वामिन् ! सबके दर्शन योग्य तुम पूर्वकाल में भी उषाओं के साथ प्रदीप्त किये गये हो। मनुष्यों के लिए तुम ग्रामों के रक्षक और यज्ञ में पुरोहित होओ ।१०।

(२९)

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद् देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ।।११
यद् देवानां मित्रमहः पुरोहितो ऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयो ऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ।।१२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ।।१३
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतो ऽश्विभ्यामपसा सजूः ।१४।३०

हे अग्ने ! तुम देवार्चनके साधन, होता, ऋत्विज,ज्ञानी, वेगवान् दूत और अविनाशी हो। मनु के समान हम भी तुम्हें अपने घरों में स्थापित करते हैं ।११। हे मित्रों के तितैषी अग्ने ! जब यज्ञ में पुरोहित-रूप से तुम देव-कर्मोंको प्राप्त होते हो, तब तुम्हारी ज्वालायें समुद्र की लहरोंके समान वेग और ध्वनि वाली होकर दमकती हैं ।१२। हे अग्ने ! हमारे सुनने-योग्य स्तुति-वचनों को सुनो। मित्र, अर्यमा, और प्रातःकाल जागने वाले देवताओं के सहित यज्ञ में कुश पर विराजमान होओ ।१३। मंगलकारी अग्नि की जिह्वासे हवि आस्वा-

दन करने वाले मरुद्गण हमारी स्तुतियों को सुनें। दृढ़ नियम वाले वरुण, अश्विद्वय, और उषा के साथ सोमपान करें।१४। (३०)

सूक्त ४५

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–अग्निर्देवाश्च । छन्द–अनुष्टुप्)

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस् त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥२
प्रियमेधवदत्रिवज जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥३
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥४
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ।५।३१

हे अग्ने ! वसु, रुद्र आदित्यों को इस यज्ञ में पूजो । यज्ञ-युक्त, घृत, अन्न-वर्षक, मनु-पुत्र देवताओं का पूजन करो ।१। हे अग्ने ! देवगण मेधावी हविदाताके सुखकी कामना करने वाले हैं। तुम रोहित नामक अश्व वालेहो । हे स्तुत्य ! उन तैंतीस देवताओं को यहाँ लाओ ।२। हे सर्व प्राणियों के ज्ञाता, महान् कर्म वाले अग्ने ! जैसे प्रिय मेधा, रात्रि,विरूप और अङ्गिरा की पुकार तुमने सुनी थी, वैसे ही अब प्रस्कण्व की पुकार सुनो ।३। महान् प्रकाश वाले अग्निदेव यज्ञ में प्रकाशित होते हैं। प्रियमेध-वंश वालों ने अग्नि को अपनी रक्षा के निमित्त बुलाया था ।४। हे घृत से हवन करने योग्य, दाता अग्ने ! कण्व-पुत्र जिन स्तुतियों से अपनी रक्षा के लिए तुम्हें बुलाते हैं उन स्तुतियों को ध्यान से सुनो ।५। (३१)

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाऽग्ने हव्याय वोह्लवे ॥६

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ।।७
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद् भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ।।८
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ।।९
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस् तं पात तिरोअह्न्यम् ।१०।३२

हे अद्भुत कीर्ति वाले अग्निदेव ! तुम बहुतों के प्रिय हो । तुम प्रकाश वाले का हवि के निमित्त आह्वान करते हैं ।६। हे अग्ने ! होता, ऋत्विज,धन के जानने वाले, प्रख्यात, स्तुति सुनने वाले, तुमको विद्वानोंने स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से यज्ञों में स्थापित किया ।७। हे अग्ने ! निष्पन्न सोम और हवि वाले, विद्वानोंने आपको मरणधर्मा यजमानके निमित्त स्थापित किया है ।८। हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम दाता और धनके स्वामी हो । प्रातः कालमें आने वाले देवगणको कुश पर बैठाकर सोम-पानके लिए तैयार करो ।९। हे अग्ने ! साक्षात् हुए देव-समूह को स्तुति-पूर्वक पूजो । हे मङ्गलकारी देवगण ! यह निचोड़ा हुआ सोम प्रस्तुत है, इसका पान करो ।१०। (३२)

सूक्त ४६

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–अश्विनौ । छन्द–गायत्री)

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ।।१
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ।।२
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद् वांरथो विभिष्पतात्।। ३
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ।।४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ।५।३३

जो प्रिय उषा पहले दिखाई नहीं दी, वह आकाश से प्रकट होती है ।

हे अश्विनीकुमारो ! मैं हृदय से तुम्हारी स्तुति करता हूँ।१। जो समुद्र से उत्पन्न मन से ही ऐश्वर्य का उत्पादन करने वाले तथा ध्यान से धनोंके ज्ञाता हैं, उन का स्तवन करता हूँ।२। हे अश्विद्वय ! जब तुम्हारा रथ अन्तरिक्ष में जाता है, तब तुम्हारी सभी स्तुतियाँ करते हैं।३। हे पुरुषो ! जलों से स्नेह करने वाले धन-पूरक, गृह-पालक और द्रष्टा अग्नि हमारी हवि से तुम्हें पूर्ण करते हैं।४। हे मिथ्यात्व रहित अश्वियों ! हमारे आदर-पूर्वक वचनों को ग्रहण करते हुए, स्तुतियों-द्वारा प्रेरित सोम का निःशङ्क पान करो।५। (३३)

या नः पीपरश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम्॥६
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम्॥७
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्द्रवः॥८
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्व वव्रिं कुह धित्सथः॥६
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः।१०।३४

हे अश्विनी ! प्रकाश से युक्त और अँधेरे से रहित अन्न-धन को हमारे पोषणार्थ प्रदान करो।६। हे अश्विनीकुमारो ! हमारी स्तुतियोंके प्रेमपूर्ण बंधन में बँधकर हमको दुःख-समुद्र से पार करो। अपने रथ में अश्वों को जोतो।७। हे अश्विनी ! तुम्हारा जहाज समुद्र से भी विस्तृत है। समुद्र के किनारे पर तुम्हारा रथ खड़ा है तथा यहाँ सोमरस तैयार है।८। हे कण्व-वंशियो ! सोम दिव्य-गुणों से पूर्ण हुआ है। समुद्र के किनारे पर ऐश्वर्य है। हे अश्विद्वय तुम अपना स्वरूप कहाँ रखना चाहते हो ?।९। उषाकाल में सूर्य सोने की आभा-सहित प्रकाशित हो गया। अग्नि श्यामवर्ण का होता हुआ अपनी लपट-रूप जिह्वा से प्रकट होने लगा।१०। (३४)

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः॥११
तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषयि। मदे सोमस्व पिप्रतोः॥१२
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम्॥१३
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। क्रता वनथो अक्तुभिः॥१४
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म गच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः॥१५।३५

पार जाने के लिए यज्ञ-रूप उत्तम मार्ग है। उसमें से निकलती हुई आकाश की पगडन्डी दिखाई दे रही है।११। स्तोता, सोम के आनन्द से पूर्ण करने वाले अश्विदेवों की रक्षा को बार-बार सराहना दे ।१२। हे प्रकाशमय आकाश के निवासी, सुखदायक अश्विनी कुमारो ! मनु की स्तुतियों से उनको प्राप्त होने के समान हमारे स्तवन से हमको प्राप्त होओ ।१३। हे अश्विद्वय ! तुम चारों ओर गमन करने वाले की शोभा के पीछे-पीछे उषा फिर रही है। तुम रात्रि में हवियों की इच्छा करो ।१४। हे अश्विनी ! तुम दोनों सोम-पान करते हुए अपनी रक्षाओं से हमको सुखी करो ।१५। (३५)

॥ तृतीयोऽध्याय: समाप्त: ॥

सूक्त ४७

(ऋषि—प्रास्कण्व: काण्व। देवता—अश्विनौ। छन्द—बृहति, पंक्ति)

अयं वां मधुमत्तम: सुत: सोम ऋतावृधा
तमश्विना पिवतंअतिरोअह्लचं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१
त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु विभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं निमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवा हवन्ते अश्विना ॥४
याभि: कण्वमभिष्टिभि: प्रावतं युवमश्विना ।
ता:भि: ष्व स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ।५।१

हे यज्ञ-वर्द्धक अश्विनी ! यह अत्यन्त मधुर सोम तुम्हारे लिए निचोड़ा गया है उसका पान करो और हविदाता को रत्नादि धन प्रदान करो ।१। हे अश्विद्वय ! अपने तीन काठोंसे युक्त त्रिकोण सुन्दर रथसे हमको प्राप्त हौओ । यह कण्ववंशी अपने यज्ञ में मन्त्रयुक्त स्तुतियाँ अर्पित करते हैं, उनको ध्यान से

सुनो ।२। हे यज्ञ-वर्द्धक विकराल अश्विनी ! तुम मधुर सोमों का पान करो । हे
फिर अपने रथ में धनों को धारण करते हुए हविदाता की ओर पधारो ।३। हे
सर्वज्ञाता अश्विद्वय ! तीन स्थानों में रखे हुए कुशपर विराजमान होकर मधुर
रस से यज्ञ का सिंचन करो । स्वर्ग की कामना से सोम को निष्पन्न करने
वाले कण्ववंशी तुम्हारा आह्वान करते हैं ।४। हे यज्ञवर्द्धक सुकर्मों का पोषण
करने वाले अश्विद्वय ! जिन साधनों से तुमने कण्व की रक्षा की थी, उनसे (१)
हमारी भी रक्षा करो और इस सोम-रस का पान करो ।५।

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
र्यि समुद्रादुत वां दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ।।६
यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।।७
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ।।८
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ।।९
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुमश्विना ।१०।२

हे उग्र-कर्मा अश्विद्वय ! रथ में धन को धारण कर तुमने सुदास
नामक राजा को अन्न पहुँचाया । उसी प्रकार अन्तरिक्ष या आकाश से बहुत
सा इच्छित धन हमारे लिये स्थापित करो ।६। हे असत्य-रहित अश्विद्वय !
तुम दूर हो या पास, सूर्य की किरणों सहित, घूमने वाले रथ से हमको प्राप्त
होओ ।७। हे पुरुषों ! यज्ञ में जाने वालेअश्व सोमयाग में तुम्हें हमारे सामने
ले आवें । उत्तम कर्म और दान वाले यजमान को बल से युक्त करते
हुए तुम कुश के आसनों पर बैठों ।८। हे असत्य-रहित अश्विद्वय !
जिस रथ से तुमने हविदाता को निरन्तर धन दिया है, उसी
से सोमों का पान करने के लिए यहाँ पधारो । ९ । हे ऐश्वर्यशाली

अश्विद्वय ! रक्षा के निमित्त स्तोत्रों से हम बारम्बार आह्वान करते हैं। कण्ववंशियों के समाज में तुम सोम-पान करते रहे हो, यह प्रसिद्ध ही है।१०।२

सूक्त ४८

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः । देवता—उषाः छन्द—बृहती पंक्तिः)

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ।।१
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ।।२
उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ।।३
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत् कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ।।४
आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ।५।३

हे आकाश-पुत्री अत्यन्त कीर्तिमती उषे! हमको प्रशंसायुक्त उपभोग्य और यश प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्य के साथ तुम प्रकट होओ ।१। अश्वों और गौओं से युक्त, सबको जानने वाली उषा हमको निरन्तर प्राप्त हो । हे उषे ! मेरे निमित्त प्रिय और सत्य बात कहो तथा धन प्रेरित कर धनी बना दो ।२। उषा पहिलेभी हमारे पास निवास करती थी । वह आजभी प्रकट हो । उसके आगमन की हम प्रतीक्षा में हैं । जैसे रत्नों के इच्छुक समुद्र में मन लगाये रहते हैं ।३। हे उषे ! तुम्हारे आने के साथ ही जो स्तोता दान की इच्छा करते हैं, उन पुरुषों के नाम को कण्व-वंशियोंमें महान् कण्व प्रशंशा-वचनो सहित कहता है ।४। उत्तम-मार्ग पर चलती हुई उषा गृह-स्वामिनीके समान सबको पालती

है। वह गमनशीलों को वृद्धावस्था प्राप्त कराती हैं। पैर वाले जीवों को कर्म में लगाती और पक्षियों को उड़ाती हैं।५। (३)

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥६
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज् ज्योतिष्कृणोति सूनरी।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ।१०।४

वही उषा युद्धों की ओर प्रेरित तथा कर्मशीलों को काम में लगाती है। वह स्वयं विश्राम नहीं करती। हे अन्न वाली उषा ! तुम्हारे आने पर पक्षी भी अपने घोंसले छोड़ देते हैं।६। इसने सूर्य के उदयस्थान से दूर देशोंको जोड़ दिया। यह सौभाग्य-शालिनी उषा सौ रथों-द्वारा मनुष्य-लोक में आती है।७। सब संसार इसके दर्शनों के लिए झुकता है। यह प्रकाशवती सबको सुमार्ग बताती है। आकाश की पुत्री, धन वाली यह उषा हमारे वैरियों और दुःख देने वालों को दूर हटावे।८। हे आकाशपुत्री उषे ! हमको सौभाग्यशाली बनाती हुई हमारे यज्ञों में प्रकट हो और आनन्द-दायक प्रकाश से सर्वत्र चमकती रहे।९। हे सुमार्ग पर ले चलने वाली उषे ! तू प्रकट होती है, इसी में तेरी महत्ता और जीवन हैं। तुम कांतिमती, धन वाली हमारी ओर रथ में आकर आह्वान को सुनो।१०। (४)

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११

विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये ऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३
ये चिद्धि त्वामृषय पूर्व ऊतये गुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि जुणिहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिलाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ।१६।५

हे उषे ! मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों की कामना करो। हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सुकर्मयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ।११। हे उषे ! सोमपानके लिए अन्तरिक्ष से सब देवताओंको यहाँ लाओ । तुम हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदान करो ।१२। जिसकी चमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा सबके वरण करने योग्य उक्त धनों को हमारे लिए सुप्राप्य कराये ।१३। हे पूजनीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते थे । तुम हमारे स्तोत्रोंका उत्तर यश और धन से दो ।१४। हे उषे ! तुमने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है । तुम हमको हिंसकों से रहित बड़ा घर और गवादि-युक्त धन प्रदान करो ।१५। हे उषे ! हमको ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो । हमको शत्रुका नाश करने वाला पराक्रम देकर अन्नों से संपन्न बनाओ ।१६। (५)

सूक्त ४९

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–उषाः । छन्द–अनुष्टुप्)

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२
वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३
व्युच्छन्तीहि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ।४।६

हे उषे ! प्रकाशवान आकाशसे भी उत्तम मार्गोंसे आओ । सोमयाग वाले के घर लाल रङ्ग के घोड़े तुम्हें पहुँचावें ।१। हे आकाश की पुत्री उषे ! तुम जिस सुन्दर और सुखदायक रथ पर विराजमान हो,उसके सहित आकर यज-मान की रक्षा करो ।२। हे उज्ज्वल वर्ण वाली उषे ! तेरे आतेही दो पैर वाले मनुष्य, पंख वाले पक्षी तथा चौपाये आदि सब ओर विचरने लगते हैं ।३। हे उषे अपनी किरणों से उदय होती हुई तुम समस्त संसार को प्रकाशित करती हो । धन की कामना से कण्ववंशी स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ।४।   (६)

सूक्त ५०

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता सूर्य । छन्द–गायत्री)

उद त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥२
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ।।४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ।५।७

सर्वभूतों के ज्ञाता प्रकाशवान सूर्य की रश्मियाँ आकाश में ही गमन करती हैं ।१। सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोर के समान छिप जाते हैं ।२। सूर्य की ध्वजा-रूप-रश्मियाँ प्रज्ज्वलित अग्नि के समान मनु-ष्यों की ओर जाती हुई स्पष्ट दिखाई देती है ।२। हे सूर्य ! तुम वेगवान्, सबके

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथाऽरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्त चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥८
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूमिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः॥९
तक्षद् यत् त उशना अहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ।१०।१०

हे इन्द्र ! तुमने 'शुष्ण' के साथ युद्ध कर 'कुत्स' को बचाया । 'शम्बर' को 'अतिथिग्व' से पराजित कराया । 'अर्बुद' नामक असुरको पाँवोंसे रोंदा। तुम राक्षसोंका नाश करने को ही उत्पन्न हुए हो ।६। हे इन्द्र ! तुम सभी बलों से पूर्ण हो । सोम पीने के निमित्त तुम हर्ष-प्राप्त कर वज्र हाथ में लिए हो। उसी से शत्रुओं के सम्पूर्ण बलों को नष्ट करते हो ।७। हे इन्द्र तुम आर्य और अनार्य को भले प्रकार जानते हो। कर्महीनों को ललकारते हुए कुश-आसन बिछाने वाले यजमान को वशीभूत करो । यज्ञानुष्ठानके प्रेरक तुम्हारा मैं यज्ञों में आह्वान करता हूँ ।८। हे इन्द्र तुम कर्महीनों को कर्मवान् के वशीभूत करते एवं प्रशंसकों द्वारा निन्दकों को मारते हो । 'वभ्र' ऋषि ने बढ़ते हुए, इन्द्र से दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त किया ।९। हे इन्द्र ! 'उशना' ने स्तुतियों-द्वारा तुम्हारा बल-बढ़ाया । उस बल ने आकाश और पृथिवी को भी कम्पित कर दिया । हे मनुष्यों पर कृपा करने वाले ! सब ओर से प्रसन्नताप्रद होकर, मन से जुतने वाले अश्वों-सहित हविरूप अन्न-सेवन के निमित्त यहाँ आओ ।१०। (१०)

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः ॥११

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनो ऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२
अपदा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ।१५।११

'उशना' की स्तुति से प्रसन्न हुए इन्द्र वेगवान् अश्वों पर चढ़े। फिर उन्होंने मेघों से प्रवाह-रूप-जल को मुक्त किया और 'शुष्ण' के दुर्गों को नष्ट कर दिया।११। हे वीर्यवान् ! तुम सोम पीने के लिए रथपर चढ़ते हो। जिन सोमों से तुम प्रसन्न होते हो, वे 'शार्य्याति' ने सिद्ध किये थे। सोम निष्पन्न करने वाले यज्ञकी जितनी कामना करते हैं उतनी ही विमल कीर्ति तुम्हें प्राप्त होती है।१२। हे इन्द्र ! तुमने स्तुति करने वाले राजा 'कक्षीवान् को 'वृचया' नामक पत्नी प्रदान की तुम श्रेष्ठ कर्म वाले, 'वृषणश्व' राजा के लिए वाणी-रूप बने, इस बात को भले प्रकार कहना चाहिए।१३। अङ्गिरा-वंश वालों के स्तोत्र-रूप-द्वार में स्तम्भ के समान स्थिर इन्द्र उत्तम कर्म वालों को अश्व, गौ, रथ तथा अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।१४।हे श्रेष्ठ ! तुम प्रकाशवान्,बलवान् और उन्नतिशील को हमारा प्रणाम है। हे इन्द्र ! इस युद्ध में अपने सब वीरों के सहित हम आपकी शरण में उपस्थित हैं।१५। (११)

सूक्त ५२

(ऋषि–सव्य आङ्गिरसः। देवता–इन्द्रः। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।

इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः॥५
१२

स्वर्ग प्राप्त कराने वाले इन्द्र का भले प्रकार पूजन करो। गतिमान् अश्व के रथ में स्तुतियों से इन्द्र शीघ्र आते हैं। मैं आगत इन्द्र का नमस्कार-पूर्वक स्वागत करता हूँ।१। जब जलों में पर्वत के समान अविचल रूप से प्रजाओंकी रक्षा के लिए इन्द्र ने जलों को रोकने वाले राक्षसों को मारा, तब वे अत्यन्त बलिष्ठ हो गये।२। इन्द्र ने जलों को रोकने वालों पर विजय प्राप्त की इन्द्र आकाशव्यापी हैं। त आनन्द के मूल और विद्वानों-द्वारा सोम-रस से वृद्धि को प्राप्त हैं। मैं उन महान् दाता इन्द्र का अन्नके निमित्त आह्वान करता हूँ।३। समुद्र में गिरती हुई नदियाँ जैसे समुद्र को भरती हैं वैसे ही कुश पर रखे हुए सोम इन्द्र को पूर्ण करते हैं। शत्रुओं का शोषण करने वाले वह इन्द्र अविचल मरुद्गण को सहायक बनाते हैं।४। अभिमुख गमन करने वाली नदियों के समान वृत्र से युद्ध करने वाले इन्द्र और उसके सहायक मरुतों को सोम का आनन्द प्राप्त हुआ। तब सोम-पान से साहस में बढ़े हुए इन्द्र ने उसके दुर्गों को तोड़ दिया।५। (१२)

परी घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८।
बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ।१०।१३

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । बल से उत्तेजित हुए तुमने वृत्र के जबड़े के नीचे वज्र-प्रहार किया ।६। हे इन्द्र ! प्रवाहित जल के जलाशय को प्राप्त करने के समान ये स्तोत्र तुमको प्राप्त होते हैं । त्वष्टा ने तुम्हारे बल की वृद्धि की और जीतने वाली शक्ति से तुम्हारे वज्र को बनाया ।७। हे इन्द्र ! तुमने अश्व पर चढ़कर मनुष्यों के हित के लिए वृत्र को मारा । इस समय लोहे का वज्र हाथमें लेकर हमारे दर्शन के लिए सर्य को स्थापित किया ।८। आनन्द देने वाली, बलयुक्त तथा स्तुति के योग्य स्तुति की मनुष्यों ने वृत्र के भय से बचने के लिए रचना की । तब मनुष्योंके लिए युद्ध करने वाले उपकारी इन्द्र की मरुतों ने सहायता की ।९। हे इन्द्र ! वृत्र के भय से विशाल आकाश काँप गया । तब तुमने वज्र से उसे मार डाला ।१०। (१३)

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ।१५।१४

हे इन्द्र ! पृथिवी दश गुने भोग वाली हो और मनुष्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हों । ऐश्वर्यशालिन् ! तुम्हारा पराक्रम पृथिवी और आकाशमें सर्वत्र फैले ।११। हे निर्भय इन्द्र ! तुमने अन्तरिक्ष के ऊपर रहते हुए हमारी रक्षा के लिए पृथिवी को रचा । तुम जल और ज्योति के पुंज हुए स्वर्ग में वास करते हो ।१२। हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी के प्रतिमान हो । तुम वीरों से युक्त आकाश के स्वामी और अन्तरिक्ष के पूर्ण करने वाले हो । वास्तव में तुम्हारे समान कोई नहीं हैं ।१३। जिसकी समानता आकाश और पृथिवी नहीं कर सकते, अन्तरिक्ष के जल जिसकी सीमा को नहीं पाते, वृत्र के प्रति युद्ध करते हुए जिसकी तुलना नहीं हो सकती । हे इन्द्र ! येसब प्राणी एकमात्र तुम्हारे ही अधीन हैं ।१४। उस युद्ध में मरुतों ने तुम्हारी स्तुति की और सब देवता हर्षित हुए । तब हे इन्द्र ! तुमने वृत्रके मुखपर वज्र प्रहार किया था ।

सूक्त ५३

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द —जगती, त्रिष्टुप्)

न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्न ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ।५।१५

हम इन्द्र के लिए सुन्दर स्तोत्रों को कहते हैं । इन्द्र ने दैत्यों के धनों को, सोते हुए मनुष्यों के धन पर अधिकार करने के समान, छीन लिया । धन

देने वालों की उत्तम स्तुति की जाती है ।१। हे इन्द्र ! तुम अश्व, गाय, धन, धान्यादि के दाता हो । तुम प्राचीनकाल से दान करते आये हो तुम किसीकी आशा भङ्ग नहीं करते तथा मित्रता रखने वालोंके मित्र हो । हम तुम्हारे लिए यह स्तुति करते हैं ।२। हे मेधावी, बहुकर्मा, धनों को प्रकाशित करने वाले इन्द्र ! सम्पूर्ण धन तुम्हारा ही बताया जाता है। उसे हमारे निमित्त लाओ । अपने स्तोताओं की कामना व्यर्थ न करो ।३। हे इन्द्र ! दमकती हुई हवियों और सोमों से हर्षित हुए तुम गौ, घोड़ोंसे युक्त धन देकर हमारी दरिद्रता दूर करो । हमारे शत्रुओं को मारकर द्वेष-रहित बल हमको दो ।४। हे इन्द्र ! हम अन्नधन वाले हों, बहुतों को प्रसन्न करने वाले बलों से युक्त हों । वीरतायुक्त अश्व, गवादि प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से सम्पन्न हों ।५। (१५)

ते त्वा मदा अमदन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वंगृदस्याभिनत् पुरो ऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१०
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६

हे सज्जनों के रक्षक इन्द्र ! वृत्र को मारने वाले युद्ध में सोमों से प्राप्त आनन्दों ने तुम्हें बढ़ाया । तब यजमान की स्तुति से दश हजार शत्रुओं को तुमने मारा । ६ । हे इन्द्र ! तुम युद्ध में निःशङ्क जाते हो ।

तुम एक के बाद दूसरे दुर्ग को तोड़ते हो। तुमने अपने वज्रसे 'नमुचि' नामक दैत्यको दूर ले जाकर मार डाला।७। हे इन्द्र ! जिसके समान कोई दानी नहीं ऐसे तुमने 'अतिथिग्व' के लिए 'करंज' और 'पर्णय' नामक दैत्यों को अत्यन्त चमकते हुए अस्त्र से मारा। तुमने 'ऋजिश्वा' राजा के द्वारा 'वंगृद' नामक दैत्य को पराजित कराया।८। हे इन्द्र ! तुमने 'सुश्रवा' से युद्ध के लिए आते हुए बीस राजाओं को उनके साठ हजार निन्यानवे अनुचरों-सहित रथके पहिये से भगा दिया।९। हे इन्द्र ! तुमने अपने रक्षा-साधनों से 'सुश्रवा' को पोषण-साधनों से 'तूर्वयाण' को बचाया। तुम्हीं ने 'कुत्स, 'अतिथिग्व' और 'आयु' नामक राजाओं को 'सुश्रवा' के अधीन कराया।१०। हे इन्द्र ! देवताओं-द्वारा रक्षित हम तुम्हारे मित्र हैं। हम भविष्य में भी सुखी रहें। हम बहुत से वीरों से युक्त लम्बी आयु को धारण करते हुऐ तुम्हारा स्तवन करते रहें।११। (१६)

सूक्त ५४

(ऋषि—सव्य आङ्गिरस-। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे।
अक्रन्दयो नद्यो रोरुवद् वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥२
अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयो ऽवत्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि।५।१७

हे महान् इन्द्र ! इस कष्ट-रूप-युद्ध में हमको प्रवृत्त न करो। तुम्हारा बल अनन्त है। तुमने जलों को शब्द देकर नदियों को शब्द-युक्त किया

तब पृथिवी क्यों न डरती ? ।१। हे मनुष्यो ! सर्वशक्तिमान मेधावी इन्द्र को नमस्कार करो। आदर-सहित स्तुतियों को सुनने वाले इन्द्र की प्रशंसा करो, जो प्रजाओं और धनों के वर्षक श्रेष्ठ बल द्वारा आकाश-पृथिवी को सुशोभित करते हैं ।२। जिस बली इन्द्र का मन भय-रहित है, उसके निमित्त आदरपूर्वक वचनों को कहो। वे शत्रुओं कों दूर करने वाले, अश्वतुक्त और अभीष्टकी वर्षा करने वाले हैं ।३। हे इन्द्र ! तुमने आकाशकी मूर्द्धाको कँपा दिया और अपनी महान् सामर्थ्य से 'शम्बर' को मारा। तुम निःशङ्क मन से युद्ध में राक्षसों को मारने की इच्छा करते हो ।४। हे इन्द्र ! तुमने वायु के ऊपर जलों को गर्जना लिए प्रेरित करते हुए भी शुष्ण का वध किया। तुम उसी कार्य को करने की अब इच्छा करो तो कोई नहीं रोक सकता ।५। (१७)

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥८
तुभ्यदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥९
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमो ऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषालिन्द्र तव्यम् ।
पक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ।११।१८

हे बहुकर्मा इन्द्र ! तुमने प्रजाजनों के हित-चिन्तक 'तुर्वश', 'यदु' और 'तुर्वीति' की रक्षा की। तुमने रथ और घोड़ों को बचाते हुए 'शम्बर' के निन्यानवे गढ़ों कों नष्ट कर डाला ।६। हविदाता और नियम पर चलने

वाला मनुष्य उत्तम पुरुषोंका स्वामी हुआ बढ़ता है । उत्तम स्तुतियों के गायक के निमित्त आकाश से जल-वर्षा होती है ।७। सोमपायी इन्द्र के बल-बुद्धि की तुलना नहीं हो सकती । हेइन्द्र ! तुम दानशीलके राज्य और बल को बढ़ाने वाले हो ।८। हे इन्द्र ! पाषाणों से कूटकर और छानकर यह पेय सोम रखे हैं, इनका उपभोग करो । ये तुम्हारे ही निमित्त हैं । अपनी इच्छा तृप्त करने के पश्चात् हमको देनेकी बात सोचो ।९। जब जलों की धाराओं को रोकने वाला पर्वत स्थिर था और मेघ (अन्धकार) बृत्र के उदर-प्रदेश में थे, तब इन्द्र ने उन जलों को नीचे स्थानों की ओर बहाया ।१०। हे इन्द्र ! सुख, यश, मनुष्यों को वशीभूत कर ने वाला शासन और शक्ति की हम में स्थापना करो । तुम हमारे प्रमुख जनोंकी रक्षा करते हुए ऐश्वर्य, श्रेष्ठ सन्तान और बल को हमारी ओरप्रेरित करो ।११। (१८)

सूक्त ५५

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती)

दिविश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३
स इद् वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाग इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम्।५।१९

इन्द्र की कीर्ति सर्वत्र फैली है । पृथिवी भी इनके समान नहीं है । विकराल, बलवान् मनुष्यों को सन्तापित करने वाला इन्द्र बैल के समान तीक्ष्ण वज्र को तेज करता है ।१। अन्तरिक्ष-व्यापी इन्द्र प्रवाहित जलोंको समुद्र-द्वारा

नदियों को प्राप्त करने के समान भाव से ग्रहण करते हैं। वे सोम-पानके लिए बैल के समान गति करते हैं। वहाँ बली इन्द्र स्तुतियों को चाहते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम मेघ के स्वामी और सब धनों के धारणकर्त्ता हो। तुम बलोंमें बढ़े हुए विकराल कर्म वालों में अग्रगण्य हो ।३। वह इन्द्र मनुष्यों में वीर्यरूप, पूजकों से स्तुत्य, पूज्य, अभीष्ट वर्षक हैं। जब हव्यदाता यजमान स्तुति वाक्य-उच्चारण करता है, उस समय अभीष्टप्रदायक इन्द्र उसे यज्ञ में तत्पर करते हैं ।४। वही वीर इन्द्र अपने पवित्र बल से मनुष्यों के लिए युद्ध करते हैं। मनुष्य-गण वज्र-धारी इन्द्र को श्रद्धा से नमस्कार करते हैं ।५। (१९)

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतिषि कृण्वन्नवृकाणि यज्ववे ऽव सुक्रतुः सर्वंवा अपः सृजत ।६
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते ऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ।।७
अप्रक्षितं वसु विभर्षि हस्तयोरषाह्लं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ।८।२०

उस यश की इच्छा वाले, उत्तम कर्म वाले इन्द्र ने असुरों के घरों को नष्ट करते हुए आकाश के नक्षत्रों को निवारण कर जलवर्षा की ।६। हे सोम-पायी इन्द्र ! तुम देने में मन लगाओ। तुम स्तुतियों को सुनते हो, तुम अपने घोड़ोंको हमारे सामने लाओ। तुम अश्व-विद्या में कुशल सारथी हो, जो मार्ग नहीं भूलते ।७। हे इन्द्र तुम्हारे दोनों हाथों में अक्षय धन है। तुम्हारे शरीरमें महान बल है। स्तुति करने वालों ने तुम्हारे बल को बढ़ाया है ।८। (२०)

सूक्त ५६

(ऋषि—सव्य, आङ्गिरसः। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती,)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषो ऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ।।१

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४

वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीह्ले यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारजः ।६।२१

यह इन्द्र यजमान के पात्रों में रखे सोमों को पीने को इच्छा से उठते हैं । वह अपने रथको रोककर सोम पीते हैं ।१। हविदाता यजमान धनके लिए समुद्र होने वाले मनुष्यो के समान बल और यज्ञ के स्वामी इन्द्र को प्राप्त करते हैं । मनुष्य ! तू भी उसे आत्मबल से प्राप्त कर ।२। वे द्रुतवेग वाले महान् इन्द्र युद्धमें पर्वत के शिखरके समान चमकते हैं । उन्हीं बलीने मायावी 'शुष्ण' को बाँध कर रखा था ।३। हे स्तोता ! सूर्य-द्वारा उषा को प्राप्त करने के समान तेरे द्वारा बड़ाया गया बल इन्द्र को प्राप्त होता है तब वह शत्रुओंमें आर्तनाद उठाकर दुष्कर्मों को मिटाते हैं ।४। हे इन्द्र ! तुमने आकाशकी दिशा-ओं में जल धारण करने वाले अन्तरिक्ष की स्थापना की । सोम का आनन्द प्राप्त कर तुमने वृत्र को मारकर जलों को नीचे की ओर प्रवाहित किया ।५। हे इन्द्र ! तुमने अपने बल से आकाश-पृथिवी के मध्य जल स्थापित किया । तुमने निष्पन्न सोम के आनन्दमें जलों को छुड़ाया और पाषाण-दुर्गों का खंडन किया ।६। (२१)

सूक्त ५७

[ऋषि—सव्य आङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती,)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः॥४
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ।६।२२

अष्यन्त दानीं, महान् धनी, पराक्रमी वृद्धि को प्राप्त इन्द्र को अपनी बुद्धि से नमस्कार करता हूँ, नीचे की ओर जाते हुए जल के वेग के समान जिसका बल कोई भी नहीं धारण कर सकता तथा जिस बलके लिए ऐश्वर्य का प्रकाश किया । १ । हे इन्द्र ! तुम्हारे मारक-वज्र-प्रहार करते समय सोता नहीं रहा । यह संसार तुम्हारे लिए यज्ञ-कर्मों में लगा और हविदाता यजमान गिरते हुए जल के समान तुम्हारी शरण में पहुँचा ।२। हे प्रकाशवती उषे ! इस स्तुत्य और विकराल इन्द्र के लिए यज्ञ में नमस्कार के साथ हवि सम्पादन करो । उस इन्द्र का नाम, बल और कीर्ति सुनने के लिए ही रचे गये हैं ।३। हे अनेकों-द्वारा पूजित इन्द्र ! तुम्हारा आश्रय पाने वाले हम तुम्हारे ही हैं । तुम हमारी स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हो, अन्य कोई नहीं । जैसे पृथिवी अपने प्राणियों की शरणदात्री है वैसे ही तुम भी हमको शरण देते हो । ४ । हे धन के स्वामी इन्द्र ! स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करो !

तुम अत्यन्त बलवान् हो। आकाश भी तुम्हारे बल का लोहा मानता है और पृथिवी तुम्हारे सामने झुकी हुई है ।५। हे वज्रिन् ! तुमने उस फैले हुए वृत्रको खंड-खंड किया और जलों को छोड़ा। तुम अवश्य ही बहुत बलवान् हो ।६। (२२)

सूक्त ५८ [ग्यारहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—नोधा गौतमः। देवता—अग्निः। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

न चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यानतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषालमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षित पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ।५।२३

बल से उत्पन्न अविनाशी अग्नि कभी भी सन्ताप देने वाले नहीं है। वह यजमान के दूत एवं होता नियुक्त हुए। उन्होंने ही अन्तरिक्ष को प्रकटाया तथा वे ही यज्ञ में हव्य-द्वारा देवताओं की सेवा करते हैं ।१। जरा-रहित अग्नि हवियों को एकत्रित कर खाते हुए काष्ठ पर चढ़े। इनकी घी से चिकनी पीठ अश्व के समान दमकती है। इन्होंने आकाशस्थ मेघ-गर्जनाके समान शब्द वाली ज्वाला को प्रकट किया ।२। अमर अग्नि रुद्रों और वसुओं के सम्मुख स्थान पाये हुए हैं और यज्ञ-स्थानों में उपस्थित रहते हैं। प्रकाश-युक्त अग्नि यजमानों की स्तुतियाँ सुनकर मनुष्यों को बार-बार धन प्रदान करते हैं ।३। हे अग्ने ! वायु के योग से अधिक शब्दवान् हुए तुम दराँत के समान जिह्वाओं से काष्ठों को प्राप्त होते हो। तुम जरा-रहित दीप्तिमान् ज्वालायुक्त वन-वृक्षों

में वृष-समान आचरण करते हो। तुम्हारा मार्ग कृष्ण वर्णका हो जाता है।४। ज्वाला-रूप-दाढ़ वाले, विजेता वायु-द्वारा प्रेरित तुम जब वन में तैरते हुए, गौ के पहलू में जाने वाले बैल के समान, आकाशकी ओर उठते हो, तब सभी जीव काँप जाते हैं।५। (२३)

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाधतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥८
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।९।२४

हे अग्ने! मनुष्य के सुख के निमित्त आह्वान किये गये, होता एवं वरणीय अतिथि, देवताओं के मित्र, तुम्हें भृगुओं ने मनुष्योंमें स्थापित किया।६। आह्वानकर्त्ता सात ऋत्विज श्रेष्ठ एवं पूज्य होता अग्नि का यज्ञमें वरण करते हैं। उनकी अन्न-रूप-हवि से सेवा करता हुआ मैं रमणीक धन की याचना करता हूँ।७। हे बल के पुत्र! हे मित्रों को सुखी करने वाले अग्निदेव! हम स्तोताओं को उत्तम आश्रय दो और रक्षा करते हुए मुझे पाप से बचाओ।८। प्रदीप्तिमान! स्तोता के लिये आश्रय-रूप होओ। धन वालों को शरण दो। तुम प्रातःकाल शीघ्र प्राप्त होते हुए मुझे पाप से बचाओ।९। (२४)

सूक्त ५९

(ऋषि—नोधा गौतमः। देवता—अग्निर्वैश्वानरः। छन्द-त्रिष्टुप्)

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ ॥१
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥२
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥३
बृहयी इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥४
दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥६
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ।७।२५

हे अग्नि देव ! तुम ज्वालाओं से युक्त अमर हो और देवताओं को प्रसन्न करने वाले हो । तुम मनुष्यों में नाभिके समान हो । तुम उनको भम्भे के समान सहारा देते हो ।१। अग्नि आकाश की मूर्द्धा और और पृथिवी के अधिपति हैं । सब मनुष्यों में व्याप्त उस अग्नि को ज्योति-रूप से देवताओं ने प्रकट किया । २ । सूर्य में सदा रहने वाली किरणों के समान देवगण ने वैश्वानर अग्नि में धनों की स्थापना की । जो धन पर्वतों में, औष-धियों में, जलों में और मनुष्यों में स्थित है, उसके वही स्वामी हैं । ३ । आकाश-पृथिवी के समान स्तुतियाँ भी महान् हैं । वे होता अग्नि मनुष्य के समान चतुर, प्रकाशित बलवान हैं । हे मनुष्यों ! उनके निमित्त पुरातन स्तुतियाँ करो ।४। प्राणियों के दाता, मनुष्यों में वास करने वाले अग्निदेव ! तुम्हारी महिमा आकाश से भी अधिक है । तुम मनु द्वारा उत्पन्न प्रजाओं के स्वामी हो । तुमने युद्ध-द्वारा दिव्य धनों को प्राप्त कराया है ।५। अब मैं उन पुरुष-श्रेष्ठ की महिमा कहता हूँ । उन वृत्रनाशक वैश्वानर अग्नि ने जलों के चोर को मारा: दिशाओं को कँपाया और शम्बर को काट डाला । ६ । वे मनुष्यों के स्वामी, अत्यन्त प्रकाशित, पूज्य, सत्यवाणी-युक्त वैश्वानर अग्नि

शतवनि पुत्र 'राजा पुरणीथ, के वंशधरों द्वारा प्रस्तुत किए गये हैं।७।
(२५)

सूक्त ६०

(ऋषि–नोधा गौतमः। देवता–अग्निः। छन्द–त्रिष्टुप्)

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्थं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा॥१

अस्य शासुरुभयासः सचन्तं हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः॥२

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त॥३

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम्॥४

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।५।२६

अग्रणी, यशस्वी, द्रुतगामी दूत, अरणि-मन्थन से उत्पन्न धन के समान प्रशंसित अग्नि को भृगु के समीप ले आवें।१। मेधावी और हविदाता मनुष्य अग्नि का सेवन करते हैं। ये प्रजापालक, फल-वर्षक अग्नि सूर्य से भी पहले प्रभाओं में स्थापित होते हैं।२। हृदय से उत्पन्न उस मधुर जिह्वा अग्नि को हमारी अभिनव स्तुतियाँ प्राप्त हों,जिसे मनुवंशियों ने हवियोंसे उत्पन्न किया।३। वे मनुष्यों-द्वारा इच्छित पावक धन युक्त प्रजाओं में वरणीय नियुक्त हुए हैं। घर में आसक्ति वालों के रक्षक हमारे घरों में धन की वृद्धि करें।४। हे अग्ने! हम गौतमवंशी तुम धनाधिप, हविदाहक की स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं। उषा-काल में हमें प्राप्त होओ।५।
(२६)

सूक्त ६१

(ऋषि—नोधा गोतमः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१
अस्मा इदु प्रय प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२
अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ।५।२७

वृद्धि को प्राप्त शीघ्र कार्य करने वाले, मन्त्रों में वर्णित कीर्ति वाले इन्द्र को अन्न के समान ही स्तोत्र को अर्पण करता हूँ । वे मेरी हवियों को ग्रहण करें ।१। मैं उस इन्द्रके लिए हवियुक्त स्तोत्र अर्पित करता हूँ । उन शत्रु पीड़क के लिये स्तुति-गान करता हूँ । ऋषिगण उस प्राचीन इन्द्रके निमित्त मन-बुद्धि से स्तुतियाँ करते हैं ।२। वृद्धि को प्राप्त मेधावी इन्द्रको आकर्षित करने वाली उपमा-योग्य स्तुतियोंका सुन्दर नादपूर्वक उच्चारण करता हूँ ।३। जिस प्रकार रथ का बनाने वाला उसे तैयार करके स्वामी के पास ले जाता है, उसीप्रकार मैं मेधावी इन्द्र को आकर्षित करने को इस स्तोत्र को उनके समीप पहुँचाता हूँ ।४। घोड़ों को रथ में जोड़ने के समान, यश-प्राप्ति के लिए इन्द्रका स्तोत्र-गान करता हूँ। यह स्तोत्र भङ्ग करने वाले दानशील, गुण-गान-योग्य यशस्वी इन्द्र को प्राप्त हो ।५। (२७)

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६
अस्येद् मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।

मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ।।७
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ।।८
अस्यदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ।।९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न त्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ।१०।२८

त्वष्टा ने इन्द्र के लिए कार्य सिद्ध करने वाले, घोर शब्द-युक्त वज्र को बनाया। उससे (इन्द्र ने) वृत्र के मर्म-स्थल को नष्ट किया।६। संसार के रचयिता इन्द्र को यज्ञ में तीन अभिषेक दिये, जिनमें उन्होंने सोमको तुरन्त पी लिया तथा हव्य भी सेवन किया। असुरों का धन जीतने वाले इन्द्र जगत् में व्याप्त हैं। वे विजेता, वज्रधारी और मेघ का भेदन करने वाले है।७। वृत्रके मरने पर देव-पत्नियों ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्रने आकाश-पृथिवी का अतिक्रमण किया, परन्तु आकाश और पृथिवी इन्द्रकी मर्यादा को नहीं लाँघ सकते।८। आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष से भी इन्द्र की महिमा महान् है। स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, अपीमित बल वाले इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हुए हैं।९। इन्द्र-बल से क्षीण होता हुआ वृत्र उसके (इन्द्र के) द्वारा वज्र से मारा गया। इससे अपहृत गायों के समान जल भी मुक्त हुआ। हविदाताको वे इन्द्र अभीष्ट अन्न देते हैं।१०। (२८)

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ।।११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यापां चरध्यै ।।१२
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ।।१३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ला द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।

उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥१४
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।१६।२६

इन्द्र की दीप्ति से नदियाँ सुशोभित हैं क्योंकि इन्द्र ने वज्र से उनको सीमित कर दिया । हविदाता को धन देते हुए ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र ने "तुर्वीति" के लिए उचित स्थान दिया ।११। हे शीघ्र कार्यकारी, महाबली, इन्द्र-रूप ईश्वर ! तुम इस वृत्र पर वज्र फेंको और उसके जोड़ोंको वधिक-द्वारा पशुओं को काटने के समान काट डालो ।१२। मनुष्यो ! इन्द्र के प्राचीन पराक्रमों का बखान करो । वे उत्तेजित हुए अस्त्रोंको चलाकर शत्रुओंको पीड़ित करते हैं। ।१३। इन प्रत्यक्ष हुए इन्द्र के डर से दृढ़ पर्वत, आकाश तथा पृथिवी सभी काँपते हैं । नोधा ऋषि इन्द्र के रक्षण-सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए बल प्राप्त कर सके ।१४। अत्यन्त धन वाले इन्द्रने जो इच्छा की,वही अर्पण किया गया। सोम-साधक "एतश" ऋषि ने स्पर्द्धा करने वाले स्वश्व-पुत्र 'सूर्य' को पराजित कराया ।१५। दो अश्वों से युक्त रथ वाले इन्द्र ! गोंतमों ने तुम्हें आकर्षित करने वाली मन्त्र-रूप-स्तुतियों को किया । तुम प्रातःकाल आकर हमको सर्व कर्म सिद्ध करने वाली बुद्धि प्रदान करो ।१६। (२६)

॥ चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त ६२

(ऋषि–नोध। गौतमः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

प्र मन्महे शवसानाय शूषमांगूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायाऽर्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्त्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥३
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ।५।१

हम इन्द्र के प्रति अंगिराओं के समान स्तुतियों को धारण करते हैं ! हम अत्यन्त आकर्षक मन्त्रों का उच्चारण करें ।१। हे मनुष्यो ! उस महान इन्द्र को नमस्कार करो, जिसकी स्तुति से अंगिराओं ने गौओं को प्राप्त किया था, उसकी उच्च स्वर से स्तुतियाँ गाओ ।२। इन्द्र और अंगिराओं की इच्छा से 'सरमा' ने अपनी सन्तान के लिए अन्न पाया । इन्द्र ने राक्षस को मारा, गौओं को पाया तथा गायों के साथ देवगणने भी हर्षयुक्त नाद किया ।३। हे शक्तिशालिन ! उत्तम स्तोत्र से गाने योग्य तुमने शीघ्रता पूर्वक नौ अथवा दश महीनों यज्ञ सम्पन्न करने वाले सप्त-ऋषियों की प्रार्थना सुनी । तुम्हारे शब्द से पर्वत और मेघ भी काँप गए ।४। हे विचित्रकर्मा इन्द्र ! तुमने अङ्गिराओं की स्तुतियाँ प्राप्त की और उषा, सूर्य तथा रश्मियों द्वारा अन्धकार हटाया । तुमने पृथिवी पर पर्वतों को बढ़ाया तथा आकाश के नीचे अन्तरिक्ष को दृढ़ किया ।५।   (१)

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ।६
द्विता वि वव्रे सनजा सनीले अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥७
सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥८
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥९

सनात् सनीला अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ।१०।२

अद्‌भुत्कर्मा इन्द्र का यह कर्म प्रशंसनीय है कि इसने नदियों को जल से भर दिया ।६। ऋषियो-द्वारा स्तुत्य इन्द्र ने परस्पर मिले हुए प्राचीन आकाश और पृथिवी को पृथक्-पृथक् किया । फिर उत्तम कर्म वाले ने आकाश में सूर्य के समान उन दोनों को धारण किया ।७। श्याम वर्णसे रात्रि और दीप्ति-युक्त वर्ण से उषा अपनी गतियोंसे बारम्बार उत्पन्न होती हैं और आकाश-पृथिवीके चारों ओर पुरातन काल से ही चक्कर काटती हैं ।८। उत्तम कर्म वाले महा-बली यजमानों से मित्रता रखते हैं । हे इन्द्र ! तुम अपरिपक्व गायोंमें भी दूध स्थापित करते हो । काले रङ्ग वाली गायों में भी श्वेत दूध देते हो ।९। सदा से एक साथ रहने वाली उंगलियाँ असंख्य कर्मों को करती हैं । ये सभी बहनें गृहस्थ पत्नियों के समान गति करती हुईं इन्द्र का सेवा-कार्य करती हैं। १०।

(२)

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ॥११
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।१३।३

हे अद्‌भुत कर्म वाले ! प्राचीन धर्म की इच्छा से अभिनव स्तोत्रों के साथ ऋषिगण आपको शान्त करते हैं । कामना वाले पतियों को प्राप्त होने वाली पत्नियों के समान यह स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त होती हैं ।११। हे विचित्र इन्द्र तुम्हारी सम्पत्ति का नाश नहीं होता वह कम नहीं होती । तुम दीप्तियुक्त, ज्ञान युक्त, दृढ़ विचार वाले हो । हमको धन और बल प्रदान करो ।१२। हे इन्द्र ! पुरातन पुरुष ! तुम अग्रणी रथ में घोड़ों को जोतने वाले हो । गौतम ने

अभिनव स्तोत्रों की रचना की है, प्रातःकाल में शीघ्रता पूर्वक पधारो ।१३।
(३)

सूक्त ६३

(ऋषि—नोधा गौतमः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्)

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृह्लासः किरणा नैजन् ॥१
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥२
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥४
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृह्लस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ।
व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ।५।४

हे इन्द्र ! तुम महान हो। तुमने प्रकट होते ही ब ा से आकाश-पृथिवी को धारण किया। तब तुम्हारे भयसे सभी प्राणी और महान् पर्वत भी किरणों के समान काँपने लगे ।१। हे निष्काम, स्तुत्य इन्द्र ! अब तुम अपने अश्वोंको लाते हो, तब स्तोता तुम्हारे हाथों में वज्र देता है। उससे तुम शत्रुओं पर प्रहार करते हुए उनके दुर्गों को तोड़ते हो ।२। हे सत्य-रूप-इन्द्र ! तुम शत्रुओं को वश में करने वाले और महान हो। तुम मनुष्यों का हित करने वाले विजेता हो। तुमने युवक "कुत्स" के सहायक होकर युद्ध में "शुष्ण" का वध किया ।३। हे वीर कर्मा वज्रिन ! तुम मित्रता को निभाने वाले हो। वृत्र को मार-कर राक्षसों को गृह-सहित तुमने नष्ट किया ।४। हे इन्द्र ! तुम किसी दृढ़ मनुष्य से भी पीड़ित नहीं हो सकते। तुम वज्रधारी हमारे घोड़ो के लक्ष्य को बाधा-रहित करो। कठिन वज्र से हमारे शत्रुओं का विनाश करो ।५। (४)

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीह्ळे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥६
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥७
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥८
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।९।५

हे इन्द्र ! धन-प्राप्ति और कीर्ति के निमित्त मनुष्य युद्ध में सहायतार्थ तुम्हारा आह्वान करते हैं। युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारी रक्षा निरन्तर प्राप्त होती है ।६। हे वज्रिन् 'पुरुकुत्स' के लिए युद्ध करते हुए तुमने सातों दुर्ग ध्वस्त किये। तुमने 'सुदास' के लिए शत्रुओं को कुश के समान काट डाला । राजा 'पुरु' की दरिद्रता दूर करने को धन दिया ।७। हे इन्द्र ! जल के समान विभिन्न अन्नों की वृद्धि करो । तुम हमारे लिए जीवन और बल प्रदान करते हो ।८। हे इन्द्र ! गौतम ने तुम्हारी मंत्रयुक्त स्तुतियाँ की । तुम्हारे अश्व को भी नमस्कार किया । तुम हमको श्रेष्ठ धन दो । प्रातःकाल में शीघ्र यहाँ पधारो ।९। (५)

सूक्त ६४

(ऋषि—नोधा गौतमः । देवता—मरुतः । छन्दः—जगती, त्रिष्टुप्)

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृह्ळा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना । ३
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।

अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ।।४
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ।५।६

हे नोधा ! पौरुषवान्, पूज्य, मेधावी मरुतों के निमित्त आकर्षक स्तुतियाँ करो । जैसे कर्मवान् व्यक्ति जलों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मैं स्तुतियों को सिद्ध करता हूँ ।१। वे महान्, समर्थ मरुत् के पुत्र हैं । वे प्राणवान्, निष्पाप, पवित्रकर्त्ता, सूर्यके समान तेजस्वी, विकराल रूप वाले हैं ।२। युवा, विकराल, अजर, न देने वालों के हिंसक अबाधगति से चलने वाले मरुद्गण पर्वत के समान महत्व वाले हुए अपने बल से पृथिवी-आकाशमें उत्पन्न जीवोंको कँपाते हैं ।३। शोभा के निमित्त विविध अलङ्कारों को सजाने वाले मरुद्गणने स्वर्णाभूषण धारण किये । ये कन्धे पर अस्त्र रखे स्वेच्छासे आकाश-द्वारा प्रकट हुए ।४। ऐश्वर्यदाता, शत्रु को भयभीत करने वाले भक्षक, मरुतों के अपने बल से वायु और विद्युतको प्रकट किया । सर्वत्र गमनशील वे आकाशस्थ मेघको दुह कर पृथिवी को सींचते हैं ।५। (६)

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ।।६
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ।।७
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समि[सबाधः शवसाहिमन्यवः ।
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ।।९
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ।१०।७

कल्याणकारी मरुद्गण जलों को सीचते हुए यज्ञों में घृत-युक्त दूध की

वर्षा करते हैं। अश्व के समान मेघ को वर्षा की प्रेरणा देते और उसे दुहते हैं ।६। हे मरुद्गण ! महान् बुद्धि वाले तुम विभिन्न दीपयुक्त पर्वतों के समान, उन्नत द्रुतगामी हाथियों के समान वन का भक्षण करते हो। तुमने लाल रङ्ग की अग्नि को बल प्रदान किया ।७। श्रेष्ठज्ञानी, हरिणोंके समान सुन्दर, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त, अद्भुत अस्त्रों से सम्पन्न, प्रजा पीड़कों के नाशक मरुद्गण सिंहों के समान क्रोध से गर्जन करते हैं ।८। हे गतिशील वीर, उपकारी, शत्रु-नाशक मरुतो ! तुम क्रोध से बढ़े बल से आकाश-पृथिवीको गुँजा दो। तुम्हारे रथ में चन्द्रमा के समान कांतिवाली विद्युत्-रूपिणी देवी विराजमान है ।९। सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले, बल वाले, शत्रुनाशक, रण-कुशल मरुतों ने दोनों हाथों में हथियार धारण किए हैं ।१०। (७)

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति । १३
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ।१५।८

जलोंको बढ़ाने वाले पूज्य, द्रुतगति वाले, अचल पथार्थोंको चलाने वाले, अबाध गतियुक्त मरुद्गण सोने के रथ-चक्रों से मेघों को उठाते हैं ।११। शत्रु-नाशक पतितपावन, बहुकर्मा रुद्र-पुत्र मरुतों की हम स्तुति करते हैं उन धूल-प्रेरक, वृद्धिप्रद, वीर्यवान् मरुतों के आश्रय में धन के निमित्त जाओ ।१२। हे मरुतो ! तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य सब मनुष्यों में अधिक बली हुआ। उसने अश्वों-द्वारा और मनुष्यों-द्वारा धनोंको प्राप्त करके उत्तम यज्ञ द्वारा सुख पाया

।१३। हे मरुतो ! कार्यों में समर्थ युद्धों में अजेय, दीप्तिमान तुम बल की स्थापना करो। हम अपने पुत्रों को सौ वर्ष तक पालने वाले हों ।१४। मरुद्गण ! तुम हमको स्थायी और शत्रु को जीतने वाली सामर्थ्य दो। हममें शत, सहस्र, एक लाख-संख्यक धन स्थापित करो। तुम प्रातःकाल शीघ्र हमको प्राप्त होओ ।१५। (८)

सूक्त ६५ (बारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः। देवता—अग्निः। छन्द—द्विपदा विराट्)

पश्वा न तायुं, गुहा चतन्तं नमो युजानं, नमो वहन्तम् ।।
सजोषा धीराः, पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ।।१
ऋतस्य देवा, अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना, गर्भे सुजातम् ।।२
पुष्टिर्न रण्वा, क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म, क्षोदो न शंभु।
अत्यो नाज्मन्, त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः, क ईं वराते ।।३
जामिः सिन्धूनां, भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा, वनान्यत्ति।
यद् वातजूतो, वना व्यस्थादग्निर्ह दाति, रोमा पृथिव्याः ।।४
श्वसित्यप्सु, हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो, विशामुषर्भुत्।
सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा, विभुर्दूरेभाः ।५।९

हे अग्ने ! पशु चराने वाले के पीछे-पीछे जाने वाले मनुष्य के समान तुम्हारे पद-चिन्हों पर मेधावी देवता चलें। तुम यज्ञ-धारण करने वाले देवताओं को हवि पहुँचाते ही इसलिए देवता तुमको प्राप्त होते हैं ।१। देवगण अग्नि की खोज में पृथिवी पर आये। अग्नि जल के गर्भ में जन्मे और स्तोत्रों-द्वारा उनकी वृद्धि हुई।२। ये अग्नि अभीष्ट फलके आश्वासन के समान रमणीय, पृथिवीके समान विस्तृत, पर्वत के समान भोजनदाता, जलके समान शांतिप्रद, अश्व के समान युद्ध में अग्रणी और समुद्रके समान विशाल हैं। इन्हें कौन रोक सकता है ।३। बहिनों के भाई की भाँति जलों के भ्राता अग्नि राजा के शत्रुओं के समान वनों का भक्षण करते हैं। वायु के

योगसे वनों में फैलते हैं । तब भूमि के बनस्पति-रूप वालों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ।४। अग्नि जलों में हंस के समान बैठकर प्राण धारण करते हैं। उषा वेला में चैतन्य होकर मनुष्यों को जगाते हैं। सोम के समान औषधियों को बढ़ाते है। बालक के समान प्रदीप्त हुए अग्नि बढ़ने पर विस्तृत प्रकाश वाले होते हैं ।५। (९)

सूक्त ६६

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः । देवता—अग्निः । छन्द–द्विपदा विराट्)

रयिर्न चित्रा, सूरो न संदृगायुर्न प्राणो, नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो, जेता जनानाम् ॥
ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो, वयो दधाति ॥२
दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट्, छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी, त्वेषः समत्सु ॥३
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्, त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो, यमो जनित्वं जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम् ॥४
तं वश्चराथा, वयं वसत्यास्तं न गावो, नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः, प्र नी ीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ।५।१०

अग्नि रमणीक धन के समान अद्भुत, सूर्य के समान दिव्य, जीवन के समान प्राणवान्, पुत्र के समान नित्य सम्बन्धित, अश्व के समान द्रुतगामी गौ के समान उपकारी हैं। वे अपनी दीप्ति से वनों को जला डालते हैं ।१। वे अग्नि-गृह के समान रमणीय, अन्न के समान परिपक्व, ऋषि के समान प्रशासित तथा स्तोता-द्वारा स्तुत्य हैं। वे समर्थ गृहिणीके समान घर में बसने वाले जब प्रदीप्त होते हैं तब प्रजाओं के समान प्रकाशित होते हैं ।२। चतुर सेना के समान भयभीत करने वाले, अस्त्रधारी के समान बली दीप्तियुक्त सुख वाले हैं। उत्पन्न हुआ हो या जो भविष्य में उत्पंन होगा वह अग्नि-रूप हैं। अग्नि

कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने आले तथा विवाहिता के पति हैं। (स्त्रियाँ गार्हपत्य अग्नि का पति के साथ नित्य पूजन करती हैं, इस दृष्टिसे उनको पति कहा गया है, ।४। (पशु के दूध घृत) की तथा अन्न की आहुति से प्रदीप्त अग्नि को हम प्राप्त करे। वह अग्नि प्रवाहित जल के समान जवालाओं को प्रवाहित करते हैं। उनकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊपर की ओर ऊठती हैं ।५। (१०)

सूक्त ६७

(ऋषि–पराशरः शाक्त्यः। देवता–अग्निः। छन्द–द्विपदा विराट्)

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं, राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः, क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधी, होता हव्यवाट् ॥१
हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वान्यमे देवान् धाद, गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र, नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान्, मन्त्राँ अशंसन् ॥२
अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि, पश्वोनि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः ॥३
य ईं चिकेत, गुहा भवन्तमा यः ससाद, धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद् वसूनि, प्र ववाचास्मै ॥४
वि यो वीरुत्सु, रोधन्महित्वोत प्रजा, उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां, दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः, संमाय चक्रुः ।५।११

जैसे राजा सर्वगुण-सम्पंन वीर पुरुष का सम्मान करता है, वैसे ही जङ्गलों में उत्पन्न जयशील अग्नि यजमानपर कृपा करते हैं। वह अग्नि चतुर के समान अनुकूल और ज्ञान के समान कल्याणकारी हों ।१। अग्नि अन्नों को साथ में धारण कर गुफा-हृदय में बैठ गये, इसके फल-स्वरूह देवता भयभीत हो गये। इस गुफा-स्थित अग्नि को मेधावी जन हृदय से उत्पंन स्तुतियों के उच्चारण-द्वारा जान पाते हैं ।२। जैसे सूर्य पृथिवी को धारण करता है, वैसे अग्नि ने अन्तरिक्ष को धारण किया है तथा सत्य संकल्पों से आकाश को भी धारण किया है। हे अग्ने ! तुम पशुओं के स्थान की रक्षा करो। सब

प्राणियों के आयु-रूप तुम गुफा से गुफा में प्रवेश करते हो। ३। जो गुफा में स्थित अग्नि को जानता है, जो यज्ञानुष्ठान में अग्नि को प्रदीप्त करता है, उस यजमान को वे शीघ्र ही धन देते हैं ।४। जो अग्नि औषधियों में अपना गुण स्थापित करते हैं, जो लताओं से विभिन्न पुष्प-फलादि को प्रकट करने वाले हैं, ज्ञानी पुरुष जलों में स्थित उस आयु-रूप अग्नि की पूजा कर शरण प्राप्त करते हैं ।५। (११)

सूक्त ६८

(ऋषि–पराशरः शाक्त्यः । देवता—अग्निः । छन्द–द्विपदा विराट्)

श्रीणन्नुप स्थाद्, दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो, देवावां महित्वा ।।१
आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव, जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो, अमृतमेवैः ।।२
ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे, अपाँसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व ।।३
होता निषत्तो, मनोरपत्ये स चिन्नवासां, पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो, मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ।।४
पितुर्न पुत्राः, क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य; शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्, दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं, स्तृभिर्दमूनाः ।५।१२

शीघ्र कार्यकारी अग्नि स्थावर, जङ्गम वस्तुओं की परिपक्व कर आकाश को प्राप्त हुए । यहाँ रश्मियों को अन्धकारसे रहित करनेके कारण अन्य देवों से यह अधिक महिमावान हो गये ।१। हे अग्ने शुष्क काष्ठ के घर्षण से तुम उत्पंन हुए, इसके पश्चात् ही वे सब देवगण यज्ञमें पहुँच सके । तुम अविनाशी के अनुगमन से ही वे सब देवत्व को प्राप्त कर सके ।२। सब प्राणी अग्नि की प्रेरणा से यज्ञ करते हैं । अग्नि ही वायु हैं, उन्ही का यज्ञ किया जाता है । हे अग्ने ! तुम्हारा ज्ञान प्राप्त कर जो तुमको हव्य देता है, उसीको जानकर तुम धन प्रदान करो ।३। मनुष्यों में होता–रूप से विद्यमान अग्नि ही प्रजाओं और

धनों के स्वामी हैं । उन्होंने तुम्हारी शक्तिसे सन्तानोत्पत्ति की इच्छा की और सामर्थ्य से सन्तान युक्त हुए ।४। पिता का आदेश मानने वाले पुत्र के समान जिन मनुष्यों ने अग्नि का आदेश पालन किया, उनके लिए अग्निने अन्न और धन के भण्डार खोल दिये । यज्ञ-कर्म वाले घरों में आसक्त अग्नि ने ही नक्षत्रों से आकाश को अलंकृत किया है ।५। (१२)

सूक्त ६९

(ऋषि—पराशरः शक्तिपुत्रः । देवता—अग्निः । छन्द—द्विपदा विराट्)

शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः, क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन् ॥१
वेधा अदृप्तो, अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां, स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव, आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो, रण्वो दुरोणे ॥२
पुत्रो न जातो, रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो, विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे, नृभिः सनीला अग्निर्देवत्वा, विश्वान्यश्याः ॥३
नकिष्ट एताव्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः, श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत् तु ते दंसो, यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद् युक्तो, विवे रपांसि ॥४
उषो न जारो, विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे, स्वर्दृशीके ।५।१३

उषा-प्रेमी सूर्य के समान प्रकाशित, कांतिमान तुम सूर्य के प्रकाश के समान आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हो । हे अग्ने ! तुम प्रकट होकर बल से वृद्धि को प्राप्त हुए । तुम दूत-रूप से देवताओं के पुत्र-समान होते हुए भी हव्य देकर उनके पिता तुल्य हो गये हो ।१। बुद्धिमान अहङ्कार-रहित गौ के थन के समान स्वादिष्ट अन्न को वर्षा ने वाले अग्नि यज्ञ-कर्म वाले घर में बुलाने पर आकर यजमान को सुखी करते हैं ।२। घर में उत्पन्न हुए पुत्र के समान सुखदायक अग्नि भर-पेट खा लेने वाले अश्व के समान मनुष्यों को दुःख से पार लगाते हैं । जब मैं मनुष्यों के साथ यज्ञ में विश्वेदेवताओं का

आह्वान करता हूँ तब ये अग्नि ही सर्व-देव-भाव को प्राप्त हो जाते है ।३। हे अग्ने ! जिन-कर्म नियमोंसे तुमने मनुष्योंको सुखी किया, वे तुम्हारे नियमों को नहीं तोड़ते । तुमने ही पाप -रूप-दैत्यों को मनुष्यों के सहयोग से मारकर भगा दिया ।४। उषा-प्रेमी सूर्य के समान प्रकाशित, प्रख्यात अग्नि मुझे जानें। अग्नि की सुन्दर लपटें, हविवाहक हुई यज्ञ-गृह के द्वार खोल कर आकाश मार्ग को जाती हैं ।५। (१३)

सूक्त ७०

(ऋषिः—पाराशरः शक्ति—पुत्रः । देवता— अग्निः । छन्द—द्विपदा विराट्)

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि, व्रता चिकित्वाना मानुषस्य, जनस्य जन्म ।।१
गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो, अमृतः स्वाधीः ।।२
स हि क्षपावाँ, अग्नी रयीर्णां दाशद यो अस्मा, अरं सूक्तैः ।
एता चिकित्वो, भूमा नि पाहि देवानां जन्म, मर्तांश्च विद्वान् ।।३
वर्धान्यं पूर्वीः, क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।
अराधि होता, स्वर्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ।।४
गोषु प्रशस्ति, वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ।५
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ।६।१४

हे मनुष्यो ! हम बहुत अन्न की कामना वाले स्तोत्रों को पढ़े। उत्तम प्रकाशवान अग्नि देवता मनुष्यों के कार्यों और सृष्टि के रूप को जानते हुए सब में व्यापक हैं ।१। अग्ने ! जल, वन, स्थावर, जङ्गम के बीच विद्यमान अमर ध्यान-युक्त प्राणियों को आत्मा के समान तुमको यजमान के घर या पर्वत पर हवि देते हैं ।२। रात्रि में अग्नि उत्तम स्तुति करने वालों को धन देते हैं। हे चैतन्य देव अग्नि ! तुम देवता और मनुष्य को जानते हुए उनके रक्षक हो ।३। विभिन्न रूप वाली उषा और रात्रि जिस

अग्नि को बढ़ाती हैं, वह अग्नि स्थावर और जङ्गम प्राणियों के निमित्त यज्ञ में प्रतिष्ठित कर, उत्तम कर्मानुष्ठानों द्वारा प्रसन्न किये जाते हैं ।४। हे अग्ने ! तुम्हारे गुण किरणों और नक्षत्रों में भी स्थापित हैं । वे सब हमको प्रकाश देते हैं । बहुत कालों से मनुष्य तुमको पूजता आया है और वृद्ध पिता से पाने के समान तुमसे धन पाता रहा है ।५। वे अग्नि परोपकारीके समान शुभ कामना वाले, अस्त्र चलाने वाले के समान वीर, दण्डदाता के समान विकराल और युद्ध क्षेत्र में साक्षात् तेज हैं ।६। (१४)

सूक्त ७१

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीलाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषञ्च चित्रामुच्छन्तीमुषसं न गावः ।।१
वीलु चिद् दृह्ळा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमस्राः ।।२
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ।।३
मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय ।।४
महे यत् पित्र ईं रसं दिवेकरव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ।५।१५

प्रेम पूर्ण पत्नियों के काम्य-पतियों को प्राप्त करनेके समान, इकट्ठी रहने वाली उँगलियाँ अग्नि को प्रसन्न करती है । काले रङ्ग वाली फिर पीले और अरुण रंग वाली उषा की जैसे किरणें सेवा करती हैं, वैसे ही उँगलियां अग्नि की सेवा करती हैं ।१। हमारे पितर अंगिरा ने मन्त्र-द्वारा अग्नि की स्तुति की और 'पणि' नामक असुर को नाद से ही नष्ट कर दिया । तब आकाश में मार्ग दिन में ज्योति-रूप-सूर्य तथा ध्वज-रूप किरणोंको हमने प्राप्त किया ।२। अंगिरा ने यज्ञाग्नि को धारण किया और अग्नि को ही साधना

का लक्ष्य बनाया । फिर मनुष्यों ने अग्नि की स्थापना की और उसे धारण कर सेवा-रत हुए उनकी हवियाँ देव और मनुष्यों की वृद्धि करती हुई अग्नि को प्राप्त होती हैं ।३। मातरिश्वा-द्वारा अग्नि के मथे जाने पर यह उज्ज्वल ज्योति वाले घर-घर में प्रकट हुए । फिर भृगु के समान मनुष्यों ने इस अग्नि को दूत बनाया, जैसे निर्बल राजा अधिक बलवान राजाके पास दूत भेजता है ।४। तब उसके महान कर्म को जानकर दैत्यादि पलायन करते हैं । उस समय अग्नि अपने प्रदीप्त बाणों को उन पर चलाते और सूर्य-रूप से उषा में तेज स्थापित करते हैं ।५। (१५)

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नभो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि ॥६
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥८
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९
या नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्टा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिरस्तेधीहि ।१०।१६

हे अग्ने ! अपने घर में तुम्हें प्रदीप्त करने वाला याचक तुमको हवि-रूप अन्न देता है । तुम उसे अपने दुगुने बल से युक्त करो । तुम्हारी प्रेरणा से जो व्यक्ति युद्ध में जाता है, वह धन प्राप्त करता है ।६। जैसे सातों नदियाँ समुद्रको प्राप्त होती हैं, वैसे ही सभी हवियाँ अग्निको प्राप्त होती हैं । हमारा अन्न सम्बंधीभी नहीं पा सकते । अतः देवताओंसे हमको प्रचुर धन दिलाओ । (जिससे हम उसे सम्बंधियों तथा अन्य लोगों को दे सकें) ।७। जब मनुष्य के स्वामी अग्नि ने अन्न के लिए तेज धारण किया, तब उसने आकाशके गर्भ

में बीज को डाला । इससे अनिद्य, युवा, उत्तम कर्म वाले मरुत् उत्पंन हुए जिन्हें वृष्टि के लिए प्रेरित किया ।८। मन के समान द्रुत गति वाले, मेधावी, धन के स्वामी, सुन्दर भुजाओं वाले मित्र और वरुण हमारी गायों के उत्तम और अमृत-तुल्य दूध की रक्षा करें ।९। हे अग्ने ! सर्वज्ञाता और मेधावी तुम हमारी पैतृक मित्रता को न भूलो । बुढ़ापा कायरके समान आकर हमको नष्ट करता है । अतः वह हमारे विनाश को न आवे, उससे पहले ही वह उपाय करो ।१०। (१६)

सूक्त ७२

(ऋषि–पाराशर: शाक्त्यः । देवता–अग्निः । छंद–त्रिष्टुप)

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपतीरयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥२
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्व सुजताः ॥३
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ।५।१७

मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि बहुत सा धन हाथ में लिए हुए हैं । वे विधाता के ज्ञान से सभी रमणीय धनों को उत्पंन करते हुए ऐश्वर्यों के स्वामी होते हैं ।१। हमारे प्रिय अग्नि की इच्छा होते हुएभी अमर और सुमति वाले देवताओं ने उन्हें ठीक प्रकार नहीं जाना । तब वे थके हुए पैरों से चलते हुए, ध्यान-पूर्वक अग्नि के स्थान में पहुँचे ।२। हे अग्ने ! जब मरुतों ने तीन वर्ष-पर्यन्त तुम्हारा घृत से पूजन किया तब उन्होंने यज्ञयोग्य नामों को धारण कर उच्च देवों में उत्पंन हो अमरत्व को प्राप्त किया ।३। महान

पृथिवी और आकाश का ज्ञान कराते हुए पूज्य मरुतों ने अग्निके योग्य स्तोत्रों को भेंट किया, तब उन्होंने उत्तम स्थान में स्थित अग्नि को पाया ।४। देवगण दत्तचित्त हुए जाँघ के बल बैठे और पत्नियों सहित उनकी पूजा की फिर अग्नि को मित्र जानकर शोषण कर यज्ञ किया और अपने शरीरों की रक्षा की ।५। (१७)

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥६
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥७
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद् गव्यं सरमा दृह्लमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥८
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ।१०।१८

हे अग्ने ! तुममें स्थित जिन इक्कीस गूढ़ पदों को देवगण ने प्राप्त किया, वे उनसे अपनी रक्षा करते हैं। हे अग्ने ! तुम पशुओं और स्थावर-जंगम की रक्षा करो ।६। हे अग्ने ! मनुष्यों के व्यवहारों के ज्ञाता तुमने जीवन के निमित्त अन्नों की स्थापना की तथा देव-मार्गों को जानते हुए तुम निरालस्य हुए, हविवाहक दूत बने ।७। हे अग्ने ! ध्यान से सृष्टि के नियमों को जानने वाले ऋषियों नें आकाश से निकली सप्त नदियों को धन का द्वार-रूप समझा । तुम्हारी प्रेरणा से सरमा ने गौओं को खोज लिया जिनसे मनुष्यों का पोषण होता है ।८। हे अग्ने ! जिन्होंने उत्तम कर्मों-द्वारा अमरत्व-प्राप्ति का यत्न किया, उन्हीं के सत्कर्मों से यह पृथिवी महिमा-पूर्वक अपने स्थान पर स्थित है ।९। देवगण ने इस लोक में सुन्दर शोभा स्थापित की ओर आकाश को दो नेत्र दिए । इसके पश्चात् ही मनुष्य नदियों के समान नीचे उतरती हुई उषा को जान सके ।१०। (१८)

सूक्त ७३

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥१
देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भून् ॥२
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥३
तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५।१९

यह अग्नि पैतृक धन के समान देते हैं, मेधावी के समान शासक हैं, अतिथि के समान प्रिय हैं तथा होता के समान यजमान के घर की वृद्धि करते हैं।१। जाज्वल्यमान सूर्य के समान प्रकाशित अग्नि अपने कर्मों-द्वारा रक्षक हैं। मनुष्यों से प्रशंसा पाये हुए वे प्रकृति के समान परिवर्तन शील नहीं है। वे आत्मा के समान सन्तोषी और यजमान-द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।२। दीप्तिमान सूर्य के समान संसार का धारक यह अग्नि अनुकूल अनुचरों से सम्पन्न राजा के समान निर्भय है। सभी जीव उसके पितृ-तुल्य आश्रयमें रहते हैं और पतिव्रता प्रशंसित नारी के समान अग्नि का अभिनन्दन करते हैं।३। हे अग्ने! उपद्रव-रहित घरों में प्रदीप्त हुए तुम्हारी मनुष्यगण सेवा करते हैं। देवताओं ने तुम में अत्यन्त तेज भरा है। तुम सबके प्राण-रूप हो। हमारे लिए सब धनों को दो।४। हे अग्ने! सम्पन्न यजमान अन्न प्राप्त करें। हविदाता पूर्ण आयु प्राप्त करें। यज्ञ के निमित्त देवताओं को हवि देते हुए हम युद्ध में शत्रु के अन्न को प्राप्त करें।५। (१९)

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥७
यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वाताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥१०॥२०

नित्य दूध देने वाली गौएँ कामना-पूर्वक यज्ञ-स्थान में अग्नि को दूध से सींचती हैं। कल्याणकारिणी नदियाँ, पर्वत के निकट से बहती हुई अग्नि के सामने झुकती हैं।६। हे अग्ने ! कल्याणकारी बुद्धि की याचना करते हुए पूज्य देवगणने तुमको यशस्वी बनाया है। विभिन्न रूप वाली रात्रि और उषा को विभिन्न अनुष्ठानों के लिए नियुक्त किया है। इन दोनोंके काले और अरुण रङ्ग हैं।७। हे अग्ने ! तुम जिन्हें धन के लिए प्रेरित करते हो, वे और हम धनवान हों। तुम सब संसार के साथ छाया के समान रहते हो। तुम्हीं ने आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को प्राप्त किया।८। हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा में रहते हुए हमने पैतृक धन को प्राप्त किया। हमारे घोड़ों से शत्रु के घोड़ों को, मनुष्यों से मनुष्यों को, योद्धा से योद्धा को हटाते हुए स्तोता को शतायु करो।९। हे मेधावी अग्ने ! ये स्तोत्र तुमको प्रिय हों। देवताओं के दिए हुए धन को धारण करते हुए हम तुम्हारे धनवाहक रथको स्थित करने में समर्थ हों।१०। (२०)

सूक्त ७४ [तेरहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१

य: स्नीहितीषु पूर्व्य: संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद दाशुषे गयम् ॥२
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥३
यस्य दूतो क्षये असि वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् ॥४
तमित् सुहव्यमङ्गिर: सुदेवं सहसो यहो । जना आहु: सुबर्हिषम् ।५।२१

दूर से भी स्तुतियों को सुनने वाले अग्नि के निमित्त यज्ञ के समीप जाते हुए स्तुति करें ।१। जो अग्नि हिंसक स्वभाव वाली प्रजाओं के एकत्र होने पर यजमान के घर की रक्षा करते हैं उनका हम स्तवन करें ।२। अग्नि शत्रु-नाशक और युद्ध में धन को जीतने वाले हैं, उनका जय-घोष करें ।३। हे अग्ने ! जिस घर में दूत बने तुम देवताओंके लिए हवि वहन करते हो, उस घर में यज्ञ को अभीष्टदायक बनाते हो ।४। हे बल के पुत्र अग्ने ! तुम यजमान को सुन्दर हवि से युक्त सुन्दर देवताओं से तथा सुन्दर यज्ञ से पूर्ण करते हो ।५। (२१)

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप यज्ञस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६
न योरुपब्दिरश्व्य: शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७
त्वोतो वाज्यह्रयो ऽभि पूर्वस्मादपर: । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥८
उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ।९।२२

हे सुखदाता अग्ने ! उन देवता को स्तुतियाँ सुनने और हवि ग्रहण करने के लिए यहाँ लाओ ।६। हे अग्ने ! जब तुम दूत बनकर चलते हो तब तुम्हारे गतिशाली रथ या अश्व का शब्द सुनाई नहीं पड़ता ।७। हे अग्ने ! पहले अरक्षित रहा यजमान तुमसे रक्षित होने पर बलयुक्त साहसी हुआ वृद्धिको प्राप्त होता है ।८। हे अग्ने ! तुम हविदाता के लिए सुन्दर तेज तथा बल को देवताओं से प्राप्त कराते हो ।९। (२२)

सूक्त ७५

(ऋषि--गौतमो राहूगण: । देवता--अग्नि: । छन्द—गायत्री)

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥१

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ।।२
कस्ते जमिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।।३
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ।।४
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवा ऋतं बृहत ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।५।२३

हे अग्ने ! मुख में हवियों को ग्रहण कर हमारे द्वारा देवताओं को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले स्तोत्र को स्वीकार करो ।१। अङ्गिराओं में श्रेष्ठ अग्ने ! हम स्नेह-पूर्वक तुम मेधावी की स्तुति करते हैं ।२। हे अग्ने ! मनुष्यों में तुम्हारा बन्धु कौन है, तुम्हारा पूजक कौन है ? तुम कौन हो तथा किसके आश्रित हो ? ।३। हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में सबके बन्धु हो । पूजक के रक्षक और मित्रों के लिए स्तुत्य मित्र हो ।४। हे अग्ने ! तुम हमारे लिए मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं की पूजा करो । अपने यज्ञ वाले घर में निवास करो ।५।
(२३)

सूक्त ७६

(ऋषि—गौतम राहूगणः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ।।१
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान ।।२
प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ।।३
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ।।४
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ।५।२४

हे अग्ने ! तुम्हारा मन सन्तुष्ट करने के लिए तुम्हारे पास आकर कौन-सी स्तुति करें जो तुमको सुख देने वाली हो ? तुम्हारे सामर्थ्य के योग्य कौन सा यज्ञ करे ? किस बुद्धि म तुमकों हवि दें ? ।१। हे अग्ने ! यहाँ इस यज्ञ में 'होता' रूप से विराजो । तुम पीड़ा-रहित हुए हमारे लिए अग्रणी बनो। सर्व-व्यापक आकाश-पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें। तुम हमको महान् प्रसाद प्राप्त कराने के लिए देवार्चन करो ।२। हे अग्ने ! राक्षसों को दग्ध करो। यज्ञ को हिंसकों से बचाओ । फिर सोम-स्वामी इन्द्र को अश्वों-सहित हमारे आतिथ्य के लिए लाओ ।३। तुम अग्रणी का मैं आह्वान करता हूँ। तुम देवताओं के साथ यज्ञ में रहते हो। हे पूज्ज ! तुम 'होता' और 'पोता' का कर्म करने वाले हो । तुम धनोत्पादक हो, धन के निमित्त मुझ पर कृपा करो ।४। हे अग्ने ! तुम सत्य-स्वरूप तथा होता-रूप हो ! तुमने ऋषियों के साथ मेधावी मनु की हवियाँ देवताओं को ग्रहण करायी थीं। अतः प्रसन्नता देने वाली जुहू (आहुति देने का पात्र) से आहुति ग्रहण करो ।५। (२४)

सूक्त ७७

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥१
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद् वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥२
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥४
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥५॥२५

अग्नि को किस प्रकार हवि दें ? कौन-सी देव-प्रिय स्तुति कहें ? ये मरण-धर्म वाले मनुष्यके लिए उत्तम यज्ञ करने वाले, देवताओंके निमित्त यज्ञ करते हैं ।१। यज्ञ-कर्म द्वारा अत्यन्त सुखदायक यज्ञ-युक्त होता को नमन करो। देवताओं के समीप पहुँचने वाले अग्नि उनको जानते हैं और हृदय से उनको पूजते हैं । अग्नि ही यज्ञ, यजमान हैं, वे ही दिव्य धन प्राप्त कराने वाले मित्र के समान परोपकारी हैं तथा देवताओं की कामना करते हैं । यज्ञों में पहले उन्हीं अद्‌भुत कर्म वाले का आह्वान किया जाता है ।३। मनुष्यों में श्रेष्ठ, शत्रु-भक्षक वह अग्नि हमारी स्तुतियोंको चाहें । वे महान ऐश्वर्य वाले,ऐश्वर्य प्रेरित करनेके लिए हमारे पूजनको ग्रहण करें।४। यज्ञ युक्त अग्निकी गौतमोंने स्तुति की । सर्व प्राणियों के ज्ञाता-अग्नि ने यश और धनकी वृद्धि कर पोषण-शक्ति को बढ़ाया । वे अग्नि अपने साधक की भक्ति को जानकर कृपा करते हैं ।५। (२५)

सूक्त ७८

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि णोनुमः ।।१
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि णोनुमः ।।२
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि णोनुमः ।।३
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूरवधूनुषे । द्युम्नैरभि णोनुमः ।।४
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद् वचः । द्युम्नैरभि णोनुमः ।५।२६

हे सर्वभूतों के ज्ञाता द्रष्टा अग्ने ! गौतम वंशी तुम्हारे लिए अत्यन्त उज्ज्वल स्तुतियों को मधुर वचनों से निवेदन करते हैं ।१। धन की कामना से गौतमवंशी तुम्हारी स्तुतियाँ करते हैं । हम भी उज्ज्वल मन्त्रों से तुम्हारा स्तवन करते हैं ।२। अत्यन्त अन्न-प्रदानकर्त्ता तुम्हारा हम अङ्गिराओं के समान आह्वान करते हैं और उज्ज्वल मन्त्रों से तुम्हारी पूजा करते हैं ।३।

मनुष्यों के शत्रुओं को कँपाने वाले वृत्र-नाशक अग्निको हम मन्त्रों-द्वारा नमस्कार करते हैं ।४। राहूगण वंशियों ने अग्नि के प्रति मधुर स्तुतियाँ की। उन्हीं के निमित्त हम प्रकाशित मन्त्रों से स्तुति करते हैं ।५। (२६)

सूक्त ७९

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री)

हिरण्यकेशो रजसो विसारे ऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ।। १
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ।।२
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ।।३
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ।।४
स इधानो वसुष्कविरग्निरीलेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ।।५
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ।६।२७

अग्नि आकाश के समान विस्तृत लहराते हुए सर्पों के समान, स्वर्णिम केशों वाले वायु के समान वेग वाले, उत्तम प्रकाशयुक्त तथा उषा के ज्ञाता हैं। वे कर्तव्य में लीन यशस्विनी महिला के समान शोभित हैं ।१। हे अग्ने ! काले बादल-रूप वाले बैल के गर्जन के समान पंखयुक्त तुम्हारी दामिनी दमक, कर लुप्त हो गयी, तब कल्याणकारी वृष्टि हँसती-सी बर्षने लगी और मेघों में तुम गर्जने लगे ।२। यज्ञ के हव्य से वृद्धि को प्राप्त अग्नि सरल मार्ग से देवगण को यज्ञ में पहुँचाते हैं। तब अर्यमा, वरुण और मरुत् दिशाओं में मेघों को एकत्र करते हैं ।३। हे बल के पुत्र अग्ने ! सब

उत्पन्न जीवों के ज्ञाता तुम गवादि धनों के स्वामी हमको अत्यन्त यशस्वी बनाओ ।४। वह प्रकाशवान, धनों के ईश्वर, मेधावी अग्नि उत्तम वाणियों से स्तुति प्राप्त करते हैं । हे हे बहुकर्मा, तुम, धनों से युक्त हुए प्रदीप्त होओ ।५। हे तीक्ष्ण दाढ़ वाले ! तुम स्वयं प्रकाशित होते हुए रात्रि, दिवस और उषा-काल में भी दैत्यों को भस्म करो ।६। (२७)

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ।।७
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्।।८
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे।।९
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ।।१०
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद् वृधे भव ।।११
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ।१२।२८

हे सम्पूर्ण कर्मों में पूज्य अग्ने ! हमारे द्वारा स्तोत्र निवेदन करने पर तुम अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ।७। हे अग्ने ! हमारे निमित्त सदा जयशील, दूसरों के द्वारा न जीता जा सके, ऐसे ग्रहणीय धन को प्राप्त कराओ ।८। हे अग्ने ! हमारे जीवन में सुख देने वाले तुम पूर्ण आयु के पोषण-धन को स्थापित करो ।९। हे गोतम ! सुख की इच्छा से तीक्ष्ण से तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि के निमित्त पवित्र वचनों वाली स्तुतियाँ उच्चारण करो ।१०। हे अग्ने ! पास या दूर वाला जो भी हमको वश में करना चाहे उसका पतनहो । तुम हमारी वृद्धि करने वाले होओ ।११। हे सहस्राक्ष अग्ने ! तुम यशस्वी होता और विशेष दृष्टि वाले हो । तुम राक्षसोंको दूर करने वाले हो, हम तुम्हारा पूजन करते हैं ।१२। (२८)

सूक्त ८०

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—इन्द्रः । छन्द-पंक्तिः)

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ।।१

स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीलितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नते ऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ।५।२६

हे महाबली इन्द्र ! हर्षदायक सोम के प्रभाव में स्तोता ने प्रशंसा की । तुम वज्रधारी ने अपने बल से वृत्र को दण्डित किया । तुम स्वराज्य में प्रकाशित हुए प्रतिष्ठित हो । १ । हे वज्रिन ! श्येन से लाये निष्पन्न बलयुक्त सोम से तुमको हर्ष-युक्त और बलवान बनाया, उससे तुमने वृत्र को जलों से पृथक् कर पीड़ित दिया । तुम स्वराज्य में प्रकाशित हो ।२। हे इन्द्र ! बढ़ो, शत्रु का सामना करो । तुम निर्भय हो । तुम्हारे वज्र का सामना कोई नहीं कर सकता । तुम्हारा वीर्य ही बल है ।३। तुमने वृत्र को पृथिवीसे खींचकर मारा और आकाशसे खींचकर वध किया । तुम जीव-रक्षक मरुतों से युक्त जलों की वर्षा करो । अपने में तुम स्वयं प्रकाशित हो ।४। क्रोधित इन्द्र ने भय से काँपते हुए वृत्र पर प्रहार किया और जलों को प्रवाह में प्रेरित किया । वे इन्द्र स्वयं प्रकाशवान है ।५। (२६)

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं मायायावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु ।

महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८
सहस्रं माकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥९
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत् तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ।१०।३०

सोम से आनन्दित इन्द्र ने सौ गाँठों वाले वज्र से जबड़े पर प्रहार किया। वे मित्रों के लिए धन की कामना करते हुए प्रकाशवान हैं ।६। हे वज्रिन ! शत्रुओं का तिरस्कार करने वाला पुरुषार्थ तुम्हारा ही है। तुम्हीं ने पशु-रूप मायावी वृत्र को मारा। तुम स्वयं प्रकाशवान हो ।७। हे इन्द्र ! नब्बे बाड़ी नदियोंके समान तुम्हारा वज्र विस्तृत है। तुम्हारा बल महान है। तुम्हारी दोनों भुजाएँ दृढ़ हैं। तुम स्वयं प्रकाशवान हो ।८। हे मनुष्यो ! तुम हजारों की संख्या में एकत्रित होकर इन्द्रका स्तवन करो। बीस स्तोत्र गाओ। ये इन्द्र बहुतों द्वारा स्तुत्य हैं। ऋषियों ने इन्द्र के लिए मन्त्र-रूप-स्तुतियों को उन्नत किया है। वे स्वयं प्रकाशवान हैं ।९। इन्द्र ने वृत्र का बल क्षीण किया। अपने साहस से उसे साहसहीन बनाया। वृत्र को मारना इनका बल है। अपने राज्य में ये स्वयं प्रकाशवान हैं ।१०। (३०)

इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२
यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३
अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ।१६।३१

हे वज्रिन् ! भयसे आकाश और पृथिवीभी कम्पित होते हैं । तुमने मरुतों के सहयोग से वृत्र को मारा ।११। इन्द्र को वह वृत्र न कँपा सका, न गर्जना से वह डरा सका । उस पर इन्द्र का लोह-वज्र गिरा ।१२। हे इन्द्र ! जब वृत्र के फेंके हुए वज्र से तुमने अपना वज्र टकराया तब उसे मारने की इच्छा से अपने बल को आकाश में स्थापित किया ।१३। हे वज्रिन ! तुम्हारी गर्जना से स्थावर-जङ्गम सभी काँपते हैं । त्वष्टाभी भयसे काँपता है । तुम अपने राज्य को स्वयं प्रकाशित करते हो ।१४। पुरुषार्थ में इन्द्र से अधिक कोई नहीं । देवगण ने उनमें ज्ञान, बल, पुंस्त्व की स्थापना की है । वे अपने राज्य को स्वयं प्रकाशित करते हैं ।१५। 'अथर्वा', "पिता" "मनु", "दध्यङ्" ने जो-जो कर्म किये उनकी हवियाँ और स्तुतियाँ इन्द्र में एकत्रित हुईं ।१६। (३१)

॥ पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त ८१

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—इन्द्र—पंक्तिः)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषुतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१
असि हि वीर सेन्यो ऽसि भूरि परादतिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥४

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते ऽति विश्वं ववक्षिथ ।५।१

वृत्र को मारने वाले इन्द्र की प्रसंनता और बल में मनुष्यों द्वारा वृद्धि की जाती है । उन इन्द्रका बड़े-छोटे युद्ध में रक्षाके लिए आह्वान करते हैं ।१। हे वीर इन्द्र ! तुम सेना, श्रेष्ठ तथा अत्यन्त धन दाता हो । तुम छोटे को बढ़ाते हो । तुम सोम वाले यजमान को बहुत धन देते हो ।२। युद्धों में अभय देने वाले इन्द्र ! तुम दोनों अश्वों को रथ में जोड़ों । तुम मारते भी हो धन भी देते हो । हमको धन प्रदान करो ।३। महान बुद्धि वाले विकराल इन्द्र ने अपने इच्छित बल की वृद्धि की और अश्वों से युक्त दृढ़ दाढ़ वाले इन्द्र ने यश के निमित्त-लौह वज्र को ग्रहण किया ।४। इन्द्र ने पृथिवी से सम्बन्धित अन्तरिक्ष को पूर्ण किया और आकाशमें नक्षत्र स्थापित किये । हे इन्द्र ! उत्पंन हुए प्राणियों में तुम्हारे समान कोई नहीं, तुम अत्यन्त महान हो ।५।   (१)

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ।६
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो भयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ।।७
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महे ऽथा नोऽविता भव ।।८
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ।९।२

जो इन्द्र ! हविदाता को मनुष्यों के उपभोग्य पदार्थों को देते हैं, वह हमको भी दें। हे इन्द्र ! तुम्हारे पास अनन्त धन है, उसे बाँट डालो । मैं भी तुम्हारे धन में भाग प्राप्त करूँ ।६। उत्तम बुद्धि वाले इन्द्र हमको गवादि धन देते हैं । हे इन्द्र ! हमको दोनों हाथों से धन प्राप्त करने के लिए हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करो ।७। हे वीर इन्द्र ! सोम-सिद्धि होने पर तुम धन के

लिए उससे हर्ष प्राप्त करो । तुम अत्यन्त धन वाले माने गये हो । तुम हमारी कामना पर ध्यान देते हुए रक्षा करो ।८। हे इन्द्र ! ये मनुष्य आपके ग्रहण करने योग्य पदार्थों को बढ़ाते हैं । तुम दान करने वालों के धनों को जानकर हमारे लिए ले आओ ।६। (२)

सूक्त ८२

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता–इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः, जगती ।)

उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद् योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा त्विन्द्र ते हरी ॥२
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ।६।३

हे धन के स्वामी इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों को निकट से सुनो । पूर्वकाल के समान ही स्तुति सुनने वाले रहो । तुमने हमको सत्य और प्रिय-वाणी से युक्त किया है, तुम स्तुतियाँ सुनने के इच्छुक भी हो । अपने रथ में अश्वों को जोड़कर यहाँ आओ ।१। प्रिय मनुष्यों ने तुम्हारा प्रसाद-रूप-सोम सेवन कर लिया । आनन्द में वे झूमने लगे । मेधावी ऋषियों ने अभिनव स्तोत्र पढ़ा । हे इन्द्र ! रथ में अश्वों को शीघ्र जोड़ों ।२। हे मघवन् ! तुम कृपा-पूर्ण दृष्टि वाले को हम नमस्कार करते हैं । तुम स्तुति से प्रसन्न हुए धनों से पूर्ण रथ-सहित आओ ।३। वह अभीष्ट-वर्षक, गौओं को

दिलाने वाले, धान्ययुक्त सोम की कामना वाले इन्द्र रथ पर अवश्य चढ़कर आवें ।४ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली हो तुम्हारे रथ के दोनों ओर दो घोड़े जुते हैं। सोम से तेज-युक्त हुए रथ में अश्व जोड़कर अपनी प्रिय पत्नी के पास जाओ ।५। हे वज्रिन् ! मैं तुम्हारे दोनों घोड़ों को स्तोत्र से रथ में जोतता हूँ। तुम हाथ में रास लेकर जाओ। सोम से हर्षित हुए पत्नी के पास जाओ ।६।

(३)

सूक्त ८३

(ऋषि–गोतमो राहूगणः देवता–इन्द्रः। छन्द–जगती)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ।१
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ।६।४

हे इन्द्र ! तुम्हारे ! द्वारा रक्षित मनुष्य गौओं से युक्त धन वालों में मुख्य होता है। सब ओर से जल समुद्र में ही जाते हैं, वैसे ही तुम उसी को धनों से युक्त करते हो जो धन वालों में मुख्य होता है ।१। होता के चमस पात्र को जैसे जल प्राप्त होते है, वैसे ही स्तोता को स्नेह करने वाले देवता आकाश से नीचे की ओर देखते हुए साधक को प्राप्त होते हैं और कन्या को प्रीति करने

वाले वर के समान उत्तम मार्गोंसे ले जाते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुमने अपने पूजक में प्रशंसा-योग्य वचनों की स्थापना की है। वह पूजक तुम्हारे नियमों पर दृढ़ रहता और वृष्टिको प्राप्त करता है। तुम उस सोम वाले को मङ्गल-मय शक्ति देते हो ।३। जिन अङ्गिराओं ने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रदीप्त कर पहले हवि-रूप-अन्न सम्पादित किया, फिर उन्होंने गवादि-युक्त धनों की प्राप्ति की ।४। पहले 'अथर्वा' ने स्वर्ग-मार्गों को बढ़ाया, फिर धृतनियमा सूर्य-रूप-इन्द्र प्रकट हुए तब 'उशना' से गौओं को हाँका। हम उस शत्रुओं के मारने वाले इन्द्र की पूजा करते हैं ।५। जब उत्तम यज्ञके लिए कुशा काटते हैं, साधक गण स्तोत्र-पाठ करते हैं, सोम कूटने वाला पाषाण स्तोत्र के समान शब्दवान् होता है, तब इन्द्र प्रसन्न होते हैं ।६। (४)

सूक्त ८४

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता–इन्द्रः । छन्द–अनुष्टुप् प्रभृति)

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१
इन्द्रमिद्धरी वहतो ऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥३
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥४
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ।५।५

हे सर्वाधिक बल-सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम निचोड़ा है, तुम निःशङ्क यहाँ आओ। सूर्य अपनी किरणों से लोकों को पूर्ण करता है, उस प्रकार सोम से उत्पन्न बल तुम्हें पूर्ण करे ।१। किसी के वश में न होने वाले इन्द्र को उनके अश्व यज्ञों में स्तुति करते हुए ऋषियों के समीप पहुँचाते

हैं ।२। हे वृत्र-नाशक इन्द्र ! स्तोत्र-द्वारा तुम्हारे दोनों घोड़े रथ में जुत गये। तुम उन पर चढ़कर सोम कूटने के शब्द से आकर्षित हुए इधर आओ ।३। हे इन्द्र ! इस उत्तम हर्षदायक निष्पन्न सोम का पान करो । इस यज्ञ में सोमकी उज्ज्वल धार तुम्हारी ओर प्रवाहित है ।४। अब स्तोत्र उच्चारण करते हुए इन्द्र की पूजा करो । निष्पन्न सोम से प्राप्त बल वाले इन्द्र को प्रणाम करो ।५।

(५)

नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ।।६
य एक इद् विदयते वसु मतीय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ।।७
कदा मर्तमराराधसं पदा क्षुम्प्रमिव स्फुरत ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ।।८
यश्चिद्धि त्वावहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ।।९
स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ।।१०।६

हे इन्द्र ! जब घोड़ोंको रथ में जोतते हो तब तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ रथी दिखाई पड़ते हो । कोई बलवान् या अश्वारोही तुम्हारे समान नहीं ।६। जो हविदाता को अकेला ही धन देने में समर्थ है, वह इन्द्र किसी के द्वारा पीछे नहीं हटाया जा सकता ।७। दान न देने वाले व्यक्तिको यह इन्द्र साँपकी छत्री(कुकुरमुत्ता) के समान कब कुचलेंगे ? वे कब हमारी स्तुतियों को सुनेंगे ? ।८। अनेकों में जो कोई सोम निष्पन्नकर श्रद्धा भक्तिसे तुम्हें पूजता है, वही अनन्त बल प्राप्त करता है । वह इन्द्र उसकी अवश्य सुनते हैं ।९। सुस्वादु, शरीर में रम जाने वाले मधुर सोम को गौर वर्ण वाली गौएँ सेवन करती हैं । वे आनन्दके लिए इन्द्र की अनुगत होती हुई उन्हीं के शासन में रहती हैं ।१०। (६)

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१३
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥१४
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।१५।७

इन्द्र की वे प्रिय गौएँ सोम में अपना दूध मिलाती हुईं उनके वज्र को प्रेरणा देती हुईं उनके राज्य में निवास करती हैं ।११। श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त वे गौएँ इन्द्र के बल को नमन करती हुईं उनके आश्रय में रहती हैं तथा उनके नियमों को घोषित करती हैं ।१२। शत्रुओं से कभी न हारने वाले इन्द्र ने दधीचि की हड्डी से बने वज्र-द्वारा वृत्र आदि आठ सौ दश दैत्यों का हनन किया ।१३। अश्व का सिर दूरस्थ पर्वत में जा पड़ा था, इन्द्र ने उसे 'शर्य्यणावात्' सरोवर में पड़ा पाया ।१४। देवताओं ने चन्द्र-गृह में छिपे हुए त्वष्टा के तेज को जाना ।१५। [७]

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥१६
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत राये ऽधि ब्रवत् तन्वे को जनाय ॥१७
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो ऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ।२०।८

आज कौन कर्मवीर अत्यन्त तेज से युक्त, क्रोध-सम्पन्न इन्द्र के घोड़ों

को जोड़ सकता है ? कौन शत्रु को छातियों को रौंदकर मित्रों को सुख देता हैं ? कौन इसका बल बढ़ाता हुआ दीर्घ जीवन प्राप्त कराता है ? ।१६। कौन चलता है ? कौन कष्ट उठाता है ? कौन इन्द्र से डरने वाला उनका सत्कार करता है ? कौन समीपस्थ इन्द्रको जानता है ? कौन सन्तान, भृत्य एवं परिजनों की रक्षा के लिए इन्द्र से आश्वासन माँगता है, ।१७। कौन अग्नि की स्तुति करता है ? कौन घृतयुक्त हविसे यज्ञ करता है ? किसके लिए देवता धन लाते हैं ? कौन देवताओं-सहित इन्द्र को जानता है ? ।१८। हे महाबली इन्द्र ! तुम मरणशील मनुष्यों का उत्साह-वर्द्धन करते हो। तुम धैर्यदाता हो। मैं तुम्हारे निमित्त सत्य-वाणी से स्तुति करता हूँ ।१६। हे धन रूप इन्द्र ! तुम्हारे दान और रक्षाओं से हम कभी वञ्चित न रहें। तुम मनुष्यका हित करने वाले हो। हमारे लिए सब प्रकार के धनों को लाओ ।२०। (८)

सूक्त ८५ (चौदहवाँ अनुवाक)

(ऋषि–गोमतो राहूगण: । देवता—मरुत: । छन्द–जगती, त्रिष्टुप् ।)

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३
वि ते भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा पृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४
प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ।६।६।

द्रुतगामी मरुत् जो रुद्र के पुत्र हैं, यात्रा के समय महिलाओं और पृथिवी की वृद्धि करते हैं। वे घर्षणशील हमारे यज्ञमें आनन्द प्राप्त करें।१। वे महान् मरुद्गण महत्तावान् हैं। उन्होंने आकाश में अपना स्थान बनाया है। इन्द्रके लिए स्तोत्र उच्चारण कर, बल धारण करते हुए उन-उन पृथिवी-पुत्रों ने ऐश्वर्योंको पाया।२। वे पृथिवी-पुत्र मरुत् अलङ्कारों से सजकर अधिक दीप्ति को धारण करते हुए शत्रु का हनन करते हैं। उनके मार्गों पर चलकर मेघ-वृष्टि करते हैं।३। सुन्दर यज्ञ वाले ये मरुद्गण अपने आयुधों को चमकाते हुए पर्वत जैसे अपतनशील पदार्थों को भी गिराने में समर्थ हैं। हे मरुद्गण ! तुम मन के समान वेग वाले हो। तुम वीरों के रथोंसे बिन्दु-चिह्नित हिरणियों को जोड़ते हो।४। हे मरुतो ! जब तुम युद्ध में वज्र प्रेरित करते हुए बुंदकियों वाले मृग को रथमें जोड़कर सूर्य के निकट से जल को प्रेरित करते हो तब वह गिरती हुई वर्षा पृथिवी को पूर्णतः आर्द्र कर देती है।५। मरुतो ! तुमको मन्द चाल वाले अश्व यहाँ लावें। हाथमें धन लेकर यहाँ आओ। तुम्हारे लिए विस्तृत कुशासन यहाँ है, उस पर बैठकर मधुर सोम का पान करो।६। (६)

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७
शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८
त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषण: सुवीरम् ।११।१०

अपने बल से ही वृद्धि को प्राप्त मरुद्गण स्वर्ग में विस्तृत स्थान बना चुके हैं । वे मनोरथ-दाता यज्ञ की रक्षा करते हैं ।७। वीरोंके समान आक्रमण करने वाले मरुद्गण यश के लिए वीर-कर्म करते हैं । इनसे सब लोक भयभीत होते हैं । ये अत्यन्त तेजस्वी हैं ।८। उत्तम कर्म बाले त्वष्टा ने सहस्र धारों वाले वज्र को बनाया, उसे इन्द्र ने वीरकर्मोंके लिए धारण किया । उसीसे वृत्र को मार-कर जलों को नीचे गिराया ।६। अपने बल से मरुतों ने भूमिपर स्थित जलको ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृढ़ मेघों का भेदन कर शव्दवान् हुए तथा कल्याणकारी सोम के बल से उन्होंने अत्युत्तम कर्मों को किया ।१०। मरुतों ने जलाशय (मेघ) को तिर्छा करके उड़ाया और प्यासे गोतम के लिए झरनों को सींचा । वे रक्षा के लिए गये और ऋषि को सन्तुष्ट किया ।११। हे मरुतो ! स्तोता और हविदाता को तुम जो इच्छित से तिगुना सुख देते हो, वह हमको दो । वीरो ! उत्तम सन्तान से युक्त धनों को हमें धारण कराओ ।१२। (१०)

सूक्त ८६

(ऋषि—गोतमों राहूगणः । देवता–मरुतः । छन्द—गायत्री ।)

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥१
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥२
उत वा यस्य वाजिनो ऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥३
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥५॥११

हे महापुरुषो ! तुम जिसके घर में सोम-पान करते हो, वह पुरुष नितांत रक्षित होता है ।१। हे यज्ञ को पूर्ण करने वाले मरुद्गण ! हमारे यज्ञ में स्तु-तियों को ग्रहण करो ।२। हे मरुतो ! जिस यजमान के ऋत्विजको तुमने ऋषि बनाया, वह यजमान अधिक गौओं वाला होता है ।३। यज्ञों में जो मरुतों के

लिए कुशा पर निचोड़ा सोम रखता है उसके घर में प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का गान होता है। ४। हे मरुद्गण ! इस श्रेष्ठ यजमान की प्रार्थना को सुनो। मैं स्तोता भी उनसे अन्न प्राप्त करूं ।५। (११)

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥८
यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ।१०।१२

हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षण-सामर्थ्यों से युक्त हुए हम बहुत समय से हवि देते रहे हैं।६। हे उत्तम प्रकार से पूज्य मरुतो ! जिसे तुम अन्नसे भाग्य शाली बनाओ वह तुम्हारा उपासक हो।७। हे सत्य बल वाले मरुतो ! यज्ञ-परिश्रम से थके हुए स्तोता की इच्छा पूर्ण कर उसके अभीष्ट को प्राप्त कराओ ।८। हे सत्य बल से युक्त मरुतो ! तुम अपनी महत्ता से दैत्यों को मारने वाले प्रसिद्ध बल कों प्रकट करो।९। हे मरुद्गण ! अन्धकार को छिपाओ, राक्षसोंको भगाकर प्रकाश करो। तुमसे ज्ञान की याचना करते हैं।१०। (१२)

सूक्त ८७

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता–मरुतः । छन्द–गायत्री ।)

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीलयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३

स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणो ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्यो ऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ।४।
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ।५।
श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः।६।१३

महान् बली, वक्ता, अपतित,अभय, द्रुतगामी प्रिय मरुद्गण स्वल्प तारों से सजे हुए इस प्रकार दिखाई देते हैं, जैसे प्रात-कालीन उषा सुन्दर दिखाई देती है ।१। हे मरुतो ! तुमने आकाश के निचले मार्गों में मेघ को अवस्थित किया है । तुम्हारे रथ में बूंदें बरसता हैं तुम उपासक को मधुर जलसे सींचो ।२। मरुतों के युद्ध में जाने पर पृथिवी भयसे काँपती है । वे खेलने वाले, गर्जन-शील, चमकते आयुधों से युक्त मरुत् विजय के निमित्त पूजे जाते हैं ।३। स्व-चालित, चित्र-विचित्र अश्ववाले मरुत् बलों से युक्त हैं । वे सत्य-रूप, पापियों को छानने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं ।४। मरुतों की जन्म-कथा हमने पूर्वजोंसे सुनी । हमारी जिह्वा सोमको देखकर अधिक स्तुति करती हैं । स्तुति करते हुए मरुत् जब युद्ध में इन्द्र के सहायक हुए तब उन्होंने यज्ञ-योग्य नामों को धारण किया ।५। उन सुशोभित मरुतों ने स्तोताओं के निमित्त वर्षा करने की इच्छा की । वेग से चलते हुए अपने प्रिय स्थानको पाया ।६। (१३)

सूक्त ८८

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता-मरुतः । छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप)

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ।१।
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ।२।
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ।३।
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ।४।
एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ।५।
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ।६।१४

हे मरुद्गण ! तुम अत्यन्त दीप्ति, श्रेष्ठ गति और आयुधों से युक्त हुए उड़ने वाले अश्वोंको रथ में जोतकर आओ । तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है । अधिक अन्नोंके साथ हमको प्राप्त होओ ।१। वे विजय की आशासे लाल-पीले रङ्ग के घोड़ों से दौड़े आते हैं, उसका रथ सोने के वर्ण का है । वे वज्र युक्त हैं । उस रथके पहियेकी लीकसे पृथिवी को उखाड़ते हैं ।२। हे मरुद्गण! तुम शोस्त्रों से सुशोभित हो । यज्ञों को वृक्षोंके समान ऊपर उठाओ । यजमान तुम्हें आकर्षित करने को सोम कूटने के पाषाण से शब्द करते हैं ।३। हे स्तुति की इच्छा वालो ! तुम्हारे शुभ दिन लौट आये हैं । स्तुति करतेहुए गौतमों ने, पीने लिए मेघ-रूप कूप को यज्ञ-कर्म द्वारा ऊपर की ओर प्रेरित किया है ।४। हे मरुतो ! इस प्रसिद्ध स्तोत्र को हमने पहले नहीं जाना, जिसे गौतम ऋषि ने तुम्हारे लिए उच्चारण किया था ।५। हे मरुतो ! मेरी जिह्वा ऋषियों की वाणी का अनुकरण कर तुम्हारी स्तुति करती है । यह स्तुति सहज स्वभाव से ही की जा रही है ।६। (१४)

सूक्त ८९

(ऋषि-गोतमो राहूगणः । देवता-विश्वेदेवा इत्यादयः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।१।
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ।२।
तान् तूर्वया निविदा हूमये वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करन् ।३।
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी त ा पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ।४।
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।५।१५

अमर, अपराजित, वृद्धियुक्त, कल्याणकारी संकल्प को हम प्राप्त करें, जिससे विश्वेदेवा हमारी वृद्धि करते हुए रक्षक हों ।१। देवताओं का ध्यान और दान हमारी ओर प्रेरित हों । हम उनके मित्र बनने का यत्न करें । वे हमारी आयु-वृद्धि करें ।२। उन भग, मित्र,अदिति, दक्ष,अर्यमा, वरुण, चन्द्र और अश्विनी-कुमारों का हम प्राचीन स्तुतियों से आह्वान करते हैं । वे और सौभाग्य देने वाली सरस्वती हमको सुख दें ।३। वायु, हमको सुख देने वाली औषधि प्राप्त करावें । माता पृथ्वी,पिता आकाश और सोम निष्पन्न करने वाले पाषाण वह औषधि लावें । हे अश्विदेवो ! तुम ऊँचे पद वाले हो, हमारी प्रार्थना सुनो।४। स्थावर-जङ्गम के पालनकर्त्ता, बुद्धिप्रेरिक विश्वेदेवों को हम रक्षार्थ बुलाते हैं, जिससे अहिंसित पूषा हमारे धन के बढ़ाने वाले और रक्षक हों ।५। (१५)

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।६।
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ।७।
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।८।
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ।९।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।१०।१६

यशस्वी इन्द्र कल्याणकारी हों । धनयुक्त पूषा भी मङ्गल करें । जिनके रथके पहियेकी गति को कोई रोक नहीं सकता ऐसे अश्व (सूर्य)और बृहस्पति हमारा कल्याण करें ।६। चित्र-विचित्र अश्वों से युक्त सुन्दर गति से यज्ञों को प्राप्त होने वाले मरुद्गण, सूर्य के समान तेजस्वी मनु और सब देवगण अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित वहाँ पधारें ।७। हे पूज्य देवगण ! हम स्तोता कल्याण-प्रद वाणी सुनें । मङ्गल-कार्यों को नेत्र से देखें । पुष्ट शरीरों से देवताओं द्वारा नियतकी गयी पूर्ण आयुका उपभोग करें ।८। हे देवताओं ! जब हमको बुढ़ापा देते हो तब लगभग सौवर्ष होते हैं । उस समय हमारे पुत्रभी पिता बना जाते हैं । तुम हमको अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त न कराओ ।९। आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता सभी जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा यह सभी अदिति रूप हैं ।१०।   (१६)

सूक्त ९०

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री त्रिष्टुप्)

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ।१।
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रभूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ।।२
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ।।३
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ।।४
उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः ।
कर्ता नः स्वस्तिमतः ।५।१७

वरुण, मित्र एवं देवताओं के साथ रमे हुए अर्यमा हमको सरल मार्ग प्राप्त करावें ।१। वे धन का विचार कर किसी महानता से न दबकर नियमों में दृढ़ रहते हैं ।२। वे अमरत्व-प्राप्त देवता हमारे शत्रुओं को नष्ट करें और हम मरणशील मनुष्यों के आश्रय दाता हों ।३। इन्द्र

मरुद्गण, पूषा, भग ये स्तुत्य देवगण हमको कल्याण मार्ग पर चलावें ।४। हे पूषा हे उत्तम मार्ग वाले विष्णो ! तुम हमको ऐसे कर्म की ओर प्रेरित करो जिससे हम गौऐं प्राप्त कर सकें । तुम हमारे लिए कल्याणकारी बनो ।५। (१७)

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः षन्त्वोषधीः ॥६
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।६।१८

यज्ञशील के लिए वायु, नदियाँ तथा औषधियाँ मधुर रस वर्षक होती हैं ।६। रात्रि और दिवस माधुर्यमय हों । पृथिवी और अन्तरिक्ष तथा हमारे पिता (आकाश) मधुर रस देने वाले हों ।७। वनस्पतियाँ मधुर हों, सूर्य मधुर रस की वर्षा करें, गौऐं हमको मधुर दूध दें ।८। मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विस्तृत पैर रखने वाले विष्णु हमारे लिये साक्षात् सुखके स्वरूप हों ।६। (१८)

सूक्त ९१

(ऋषि–गोतमो राहूगणः । देवता–सोमः । छन्द गायत्री, उष्णिक्)

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥१
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥२
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद् गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेलन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥४

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ।५।१९

हे सोम ! बुद्धिसे तुमको हम जान सके । तुम हमको सुन्दर मार्ग बतातेहो तुम्हारे नेतृत्वमें हमारे पितर देवताओं से रमणीय सुखको प्राप्त करनेमें समर्थ हुए ।१। हे सोम ! तुम उत्तम प्रज्ञा वाले सभी धनों से युक्त, मन की शक्ति द्वारा चतुर हुए । तुम मनुष्योंको उत्तम सीख देने वाले महिमा से पुरुषार्थ युक्त तथा तेजस्वी हुए ।२। हे सोम ! वरुण के सभी नियम तुममें निहित हैं । तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । तुम पवित्र, मित्र के समान प्रिय और अर्यमा के समान वृद्धि-कारण हो ।३। हे राजा सोम ! तुम्हारे जो तेज आकाश, पृथिवी, पर्वतों औषधियों और जलों में हैं, उनके सहित क्रोध सहित मुद्रा में, प्रसन्नता पूर्वक हमारी हवियों को ग्रहण करो ।४। हे सोम ! तुम उत्तम पुरुषों के पालक वृत्र नाशक एवं उत्तम बल के साक्षात् रूप हो ।५। (१९)

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥७
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा॥८
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥९
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषण उपागहि ।
सोम त्वं नो वृधे भव ।१०।२०

हे सोम ! प्रिय स्तोत्रों से युक्त वन-राज ! तुम हमारे जीवन की चाहना करो, जिससे हम मृत्यु को प्राप्त न हों ।६। हे सोम ! यज्ञाभिलाषी युवक तथा वृद्धों को ऐश्वर्य और जीवन के निमित्त आप शक्ति धारक हों ।७। हे सोम ! पापी जनों से हमारी रक्षा करो। तुम्हारे मित्र हम कभी दुःख न उठावें ।८। हे सोम ! हविदाता को सुखी करने वाले

अपने रक्षा-साधनों से तुम हमारे रक्षक हो ।९। हे सोम ! इस यज्ञ में हमारी इन स्तुतियों को ग्रहण कर हमारी वृद्धि के निमित्त पधारो ।१०। (२०)

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृलीको न आ विश । ११
गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मय इव स्व ओक्ये ॥१३
यः सोम सख्ये तव रारणद देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥१४
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ।१५।२१

हे सोम ! स्तुति वचनों के ज्ञाता हम तुम्हें स्तुतियों से सम्पन्न करते हैं । तुम कृपा पूर्वक हमारे शरीरोंमें प्रविष्ट होओ ।११। हे सोम ! तुम हमारे धन की बृद्धि करने वाले, रोगनाशक पुष्टिदायक और उत्तम होओ ।१२। हे सोम ! गौओं के घासों के समूह में और मनुष्योंके घरमें रमण करनेके समान. तुम हमारे हृदयोंमें रमण करो ।१३। हे सोम ! जो मनुष्य तुम्हारी मित्रताका का इच्छुक है तुम मेधावी ओर शक्तिमान् सदा उसके साथी रहते हो ।१४। हे सोम ! हमको अपयश से बचाओ, पाप से हमारी रक्षा करो, तुम हमारे लिए सुखकारी मित्र होओ ।१५। (२१)

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१६
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रयांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो ऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥१९

सोमो धनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ।२०।२२

हे सोम ! तुम बुद्धि को प्राप्त होओ। तुम वीर्यवान होओ। युद्ध-काल उपस्थित होने पर हमारे सहायक बनो ।१६। हे अत्यन्त हर्षित करने वाले सोम ! तुम सुन्दर यश रूप रश्मियों से तेजवान् बनो । तुम हमारे मित्र रहकर सुबुद्धि की ओर प्रेरित करते रहो ।१७। हे सोम ! तुम शत्रुओं को वश में करने वाले हो। हमको अन्न, बल और वीर्यकी प्राप्ति हो । अमरत्व की इच्छामें बढ़ते हुए आकाशके समान उत्तम यश तुम्हें प्राप्त हो ।१८। हे सोम ! तुम्हारे जिन तेजों से यजमान हविद्वारा यज्ञ करते हैं, वे सब तेज हमारे यज्ञके सब ओर विद्यमान हों। तुम धन की वृद्धि करने वाले, पाप से उबारने वाले, वीरतायुक्त, संतानों के रक्षक हमारे घरों में निवास करो ।१६। गौ-अश्व के देने वाले तथा कर्मवान् गृह कार्य कुशल, यज्ञाधिकारी, पितरों को यज्ञ दिलाने वाले पुत्र के दाता सोम को हवि देनी चाहिए ।२०। (२२)

अषाह्लं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ।२३।२३

हे सोम ! हम युद्धों में प्रबल, पालक, प्रकाशदाता, जलों के पोषक शक्ति रक्षक, स्तोत्ररूप, उत्तम वास वाले, यशस्वी और अजेय होते हुए तुम्हारे बलसे प्रसन्न रहें ।२१। हे सोम ! तुमने औषधि जल और गौओं को उत्पन्न किया, अन्तरिक्ष को चारों ओर फैलाकर विशाल किया तथा अन्धकार को दूर कर दिया ।२२। हे शक्तिशाली सोम! तुम दिव्य हृदय वाले युद्ध में हमारे धन-भाग जीतकर लाओ । इस कार्य में तुम्हें कोई रोक न सके । तुम बल के स्वामी हो, युद्ध में दोनों पक्षों को समझ लो कि कौन मित्र है और कौन शत्रु है ।२३। (२३)

सूक्त ९२

(ऋषि–गौतमो राहूगण: । देवता–उषादय: । छन्द--जगती, त्रिष्टुप्,उष्णिक)

एता उ त्या उषस: केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णव: प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातर: ।।१
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयु: ।।२
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभि: समानेन योजनेना परावत: ।
इषं वहन्ती सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ।।२
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो नव्रजं व्युषा आवर्तम: ।।४
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जन्‌ चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत ।५।२४

उषाएँ अन्तरिक्षके पूर्वार्द्ध में प्रकाश को फैलाती हुई संकेत करती हैं। ये अरुण वर्ण की गौ मातायें शस्त्रों से सजे हुए वीरों के समान आगे बढ़ रही हैं ।१। अरुण उषा उदय हो गयी। उसने शुभ्र गौओं (रश्मियों) को रथ में जोड़ा है। पूर्व के समान स्थानों को स्पष्ट करती हुई वह चमकीले प्रकाश को सेवन करती है ।२। सोम निष्पन्नकर्त्ता उत्तम कर्मवान् तथा दानशील यजमानको दूर से आकर भी उषाएँ सब धनों को पहुँचती हुई कार्यव्यस्त महिलाओं के समान सुशोभित होती है ।३। उषा नर्तकीके समान विविध रूपोंको धारण करती तथा गौ के समान स्तन प्रकट कर देती है वह समस्त लोकोंके लिए प्रकाश से भरती और अन्धकार मिटाती है ।४। उषाकी दमक सर्वत्र फैलरही है, जिसने विशाल-काय अन्धकार को दूर किया। आकाश की पुत्री उषा अद्भुत् प्रकाश से युक्त है ।५। (२४)

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीग: ।।६

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्याम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभग बृहन्तम् ॥८
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥९
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ।१०।२५।

हम उस अन्धकार से निकल गये । उषा ने स्थानों को स्पष्ट कर दिया वह दमकती हुई स्वच्छन्द भाव से हंस रही है । वह हर्षित हुई सुन्दर मुख वाली स्त्री के समान शोभित है ।६। प्रिय सत्यवाणीकी ओर प्रेरित करने वाली, दमकती हुई आकाश-पुत्री उषा गौतमो द्वारा स्तुत्य है । हे उषे ! तुम हमको पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ।७। हे उषे ? तू सौभाग्यवती है । मुझे सुन्दर पुत्रों, सेवकों, अश्वों से युक्त उस यशपूर्ण धन को प्राप्त कराओ, जिसे तू अपने बल से और कर्म से प्रेरित करती है ।८। सब लोकों को देखती हुई देवी पश्चिम की ओर मुख करके चमकती और सब जीवोंको गति देती हुई चैतन्य करती है । यह चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है ।९। पुनः पुनः प्रकट होतीहुई और समान रूपसे सब ओर सुशोभित हुई यह प्राचीन उषा मरणशील जीवों की आयु क्षीण करने वाली है, जैसे व्याध-स्त्रियाँ पक्षियों को मारती हुई उनकी गणना कम करती है ।१०। (२५)

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति॥१४
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ।१५।२६

वह स्त्री आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है । अपनी बहिन (रात्रि) को दूर करती हुई छिपाती हैं । वह मनुष्यों से युगों का ह्रास करने वाली अपने प्रेमी दर्शनसे दमकती हैं ।११। उज्ज्वल वर्ण वाली सौभाग्यशालिनी उषा पशुओं के समान वृद्धि को प्राप्त हुई, नदियों के समान फैलती है । वह देवताओं के नियमों की अवहेलना नहीं करती और सूर्य की किरणों सहित दीखती है ।१२। हे उषे ! तू अत्यन्त अन्न वाली है । उस अद्‌भुत अन्नको हमारे लिए ला, जिससे हम अपने पुत्रादि का पोषणकर सकें ।१३। गौ, अश्व प्रकाश, सत्यवाणी से युक्त उषे ! तू हमारे लिए धन वाली होकर आ ।१४। हे अत्यन्त अन्न वाली उषे ! अरुण घोड़ोंको जोड़कर हमारे लिए सभी सौभाग्यों को लाने वाली बनो ।१५। (२६)

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६
यावित्था श्लोकमादिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ।१८।२७

हे विकराल कर्म वाले अश्विदेवों ! तुम एक मन वाले, गौ-घोड़ों से युक्त अपने रथको हमारे घर के सामने रोको ।१६। हे अश्विनीकुमारो ! तुमने आकाश से स्तोत्रों को लाकर मनुष्यों को प्रकाश दिया है । तुम हमारे निमित्त भी बल लाने वाले बनो ।१७। स्वर्णिम मार्ग वाले सुखदाता विकराल कर्म अश्विनीकुमारों को उषा काल में चैतन्य हुए उनके अश्व सोमपानार्थ यहाँ लावें ।१८। (२७)

सूक्त ९३

(ऋषि–गोतमो राहूगणः। देवता–अग्नीषोमौ। छन्द–अनुष्टुप् जगती,
उष्णिक् पंक्ति त्रिष्टुप् गायत्री)

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१
अग्नीषोमा अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥२
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥३
अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषो ऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥४
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥५
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।६।२८

हे पुरुषार्थ युक्त अग्नि और सोम ! तुम दोनों मेरे आह्वान् को सुनो। मेरे सुन्दर वचनों से हर्षित होओ। मुझ हविदाता के लिए सुखस्वरूप बनो।१। हे अग्ने ! हे सोम ! तुम दोनों के प्रति निवेदन करता हूँ, तुम उत्तम पुरुषार्थ धारण कर सुन्दर अश्वों और गौओं की वृद्धि करो।२। हे अग्ने ! हे सोम ! जो तुमको घृत युक्त हवि दे, वह सन्तानवान्, वीर्यवान् हो और पूर्ण आयु को प्राप्त करे।३। हे अग्ने ! तुम दोनों बल से प्रसिद्ध हो। तुमने 'पणि' के अन्न रूप गौओं का हरण किया 'बृसय" की सन्तान का हनन किया और असंख्यों के लिए ही प्रकाश (सूर्य) को प्राप्त किया।४। हे सोम ! हे अग्ने ! तुम दोनों समान कर्म वाले हो।

तुमने आकाश में ज्योतियाँ स्थापित की तुम दोनों ने हिंसिक वृत्र से नदियों को मुक्त कराया ।५। हे अग्ने ! हे सोम ! तुम में से एक को मातरिश्वा आकाश से लाये, दूसरे को श्येन पक्षी पर्वत के ऊपर से लाया । तुम स्तोत्रों से बढ़ने वालों ने लोक को यज्ञ के लिए विस्तृत किया ।६। (२८)

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ।७
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।।८
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ।।९
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत्।।१०
अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा।।११
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ।१२।१९

हे वीर्यवान् अग्नि, सोम ! तुम हमारी हवियोंको ग्रहणकरके प्रसंन होओ । तुम उत्तम सुख युक्त रक्षा करो । मुझ यजमान के रोगों को दूर कर शांति दो ।७। हे अग्नि. सोम ! जो देवताओं में मन लगाने वाला घृत, हवि से तुमको पूजता है, उसके व्रत की रक्षा करो । उसे पापसे बचाओ और उसके कुटुम्बियों को शरणागत करो ।८। हे अग्ने, सोम ! एकत्रित ऐश्वर्य वाले तुम दोनों एक साथ बुलाये जाते हो । तुम दोनों देवत्वसे युक्त हो । हमारी स्तुतियों को ग्रहण करो ।९। हे अग्ने ! सोम ! जो तुम दोनों के लिए घृत युक्त हवि दे, उसके लिए तुम जाज्वल्यमान होओ ।१०। हे अग्नि ! हे सोम ! तुम दोनों हमारी हवियाँ ग्रहण करो हमको प्राप्त होओ ।११। हे अग्नि सोम ! तुम दोनों हमारे अश्वों को बल दो । हवि उत्पन्न करने वाली हमारी गौएँ वृद्धिको प्राप्त हों । तुम दोनों हम धनवानों को शक्ति दो । हमारे यज्ञ को सुखकारी बनाओ ।१२।

(२९)

सूक्त ९४ [पन्द्रहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्न्यादयः । छन्द- जगती, त्रिष्टुप्,)

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।५।३०

हम धनोत्पादक पूज्य अग्निदेव के लिए रथ के समान बुद्धि से इस स्तोत्र को महत्व दें । हमारी सुमति कल्याणकारिणी हो । हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र होकर कभी सन्तापित न हों ।१। हे अग्ने ! जिसके लिए तुम देव-पूजन करते हो, उसके अभीष्ट पूर्ण होते हैं । वह किसी का आश्रय नहीं खोजता । उत्तम वीर्य युक्त हुआ वह बढ़ता है तथा दरिद्र नहीं रहता । हे अग्ने ! तुम्हारी मित्रता होने पर हम दुःखी न रहें ।२। हे अग्ने ! हम तुम्हें प्रदीप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त करें । तुम हमारे कार्य को सिद्ध करो । तुम में दी गयी हवियों को देवता प्राप्त करते हैं । हम आदित्यों की कामना करते हैं, उन्हें यहाँ लाओ । तुम्हारी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ।३। हे अग्ने ! तुम्हें चैतन्य करने के लिए हम ईंधन एकत्रित करें, हवि-सम्पादन करें, तुम हमको कर्मवान् बनाकर उच्च जीवन की ओर प्रेरित करो । तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके हम दुःखी न हों ।४। दुपाये और चौपाये रूप प्रजा के रक्षक इस अग्नि के दूत रात्रि में विचरण करते हैं । हे अग्ने ! तुम

उषा का आभास देने वाले महान् हो। हम तुम्हारे मित्र होने पर पीड़ित न हों।५। (३०)

त्वमध्वर्यु रुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पौता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥६
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तलिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥७
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो ऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥८
वधैर्दुःशंसां अप दूढ्यो जहि दूरेवा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥६
यदयुक्था अरषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुना ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव।१०।३१

हे दृढ़ विचार वाले अग्निदेव! तुम अध्वर्यु प्राचीन होता प्रशास्ता, पोता एवं जन्मजात पुरोहित हो। ऋत्विजों के हर कर्मोंके जानने वाले तुम कर्मों को पुष्ट करतेहो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके फिर हम पीड़ित न हों।६। हे सुन्दर मुख वाले अग्ने? तुम सब ओर से समान हो तुम दूर रहो तो भी पास ही दिखाई पड़ते हो। तुम रात्रि के अन्धकार को चीर कर देखने वाले हो। हम तुम्हारे मित्र होकर कभी दुःखी न हों।७। हे देवगण! सोम निष्पन्नकर्त्ता का रथअग्रणी हो। हमारे स्तोत्र से पाप-बुद्धि वाले हार जावें। तुम हमारे वचनों से बढ़ो। हे अग्ने! तुम्हारे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें।८। हे अग्ने! जो भक्षक दैत्य निकट या दूर हों उन्हें तथा अपशब्दवक्ता पापियों को शास्त्रों से मारो और स्तोता के यज्ञ में सुखमय मार्ग बनाओ। हम तुम्हारी मित्रता पाकर पीड़ित न हों।६। हे अग्ने तुम वायु वेग वाले रोहित नामक अश्वों को रथ में जोड़कर बैल के समान शब्द करते हो और धूमध्वज वाले रथ को वृक्षों की ओर उठाते हो। हम तुम्हारे मित्र होकर पीड़ित न हों।१०। (३१)

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्यो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेलो अद्भुतः ।
मृला सु नो भूत्वेषां मनःपुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३
तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृलयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो ऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देवः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।१६।३२

हे अग्ने ! जब तुम्हारी लपटें जङ्गल में फैलती हैं, तब पक्षी भी डरते हैं। उस समय तुम्हारा रथ निर्भय विचरता है। तुम्हारे मित्र होकर हम कभी पीड़ित न हों।११। वह अग्नि मित्र और वरुण को धारण करने में सशक्त हैं। नीचे उतरते हुए मरुतोंका क्रोध भयानक है। हे अग्ने ! कृपा करो इनके मन को हमारे लिए कल्याणकारी बनाओ। तुम्हारे मित्र हम दुःखी न रहें।१२। हे अग्ने ! तुम देवताओं के मित्र हो। धन वाले तुम यज्ञ में शोभा पाते हो। हम तुम्हारे आश्रय में रहे और कभी पीड़ित न हों।१३। हे अग्ने ! तुम अपनी कृपा द्वारा घर में प्रदीप्त होते और सोम द्वारा हवि-ग्रहण करते हुए सुखमय शब्द करते हो। तुम हविदाता को रत्न-धन देने वाले हो। हम तुम्हारी मित्रता से सुखी हों।१४। हे सुन्दर ऐश्वर्य रूप अनन्त बल युक्त अग्ने ! तुम जिसकी पाप कर्मों से रक्षा करते हो, जिसे प्रजा युक्त धन देकर कल्याण करते हो, वे हम हों।१५। हे अग्निदेव ! तुम सर्व सौभाग्यों के ज्ञाता हमारी आयु-वृद्धि करो। मित्र, वरुण, अदिति

समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को सम्मान दें ।१६। (३२)

। षठोऽध्याय: समाप्त: ।

सूक्त ९५

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरस: । देवता–अग्नि: : छन्द–त्रिष्टुप्)

द्वे विरूपे चरत: स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चा: ॥१
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२
त्रीणि जाना परिभूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद वि दधावनुष्ठु ॥३
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभि: ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥५
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्व: स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ।५।१

उत्तम उद्देश्य वाली दो भिन्न रूपिणी स्त्रियाँ गमन-शील हैं । दोनों एक दूसरे के बालकों का पोषण करती हैं । एक से सूर्य अन्न प्राप्त कराता और दूसरी से अग्नि सुन्दर दीप्ति से युक्त होती है ।१। त्वष्टा के इस खेंलने वाले शिशु को निरालस्य दशों युवतियाँ (दश उगलियाँ)प्रकट करती है । तीक्ष्ण मुख वाले, लोकों में यशवान् दीप्तिमान् इसे सब ओर ले जाया जाता है ।२। यह अग्नि तीन जन्म वाला है–एक समुद्र में एक आकाश में और एक अन्तरिक्ष में सूर्य रूप अग्नि ने ऋतुओं का विभाग कर पृथिवी के प्राणियों के निमित्त पूर्व दिशा के पश्चात् क्रमपूर्वक दिशाओं को बनाया ।३। छिपे हुए इस अग्नि का दाता कौन है ? जो पुत्र होकर भी हव्यान्न द्वारा अपनी माताओं को जन्म देता है तथा जो अनेक जलों का गर्भ रूप समुद्र से प्रकट होता है ।४। जलोत्पन्न अग्नि, यज्ञ, के साथ प्रकाशित हुए बढ़ते हैं । इनके उत्पन्न होने पर त्वष्टा की

दोनों पुत्रियाँ (अग्नि को उत्पन्न करने वाले दोनों काष्ठ या अरणियाँ) भयभीत
हुईं, इस सिंह की पीछे से सेवा करती हैं।५। (१)

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥६
उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन्।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१०
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि माहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥२

सुन्दर स्त्रियों के समान आकाश और पृथिवी, उस अग्नि की सेवा करते हैं। वह अग्नि अत्यन्त बल से युक्त हैं और ऋत्विज दक्षिण की ओर खड़े होकर हवियों से इनकी सेवा करते हैं।६। ये सूर्य की किरणों के समान अपनी भुजाओं को फैलाते हैं। वे विकराल रूप वाले दिन—रात्रि की सीमाओं को पहुँचते हुए सब वस्तुओं से गुण खींचते हैं और जल रूप माताओं के लिए रस (वर्षा) छोड़ते हैं।७। मेधावी अग्नि जलों से मिलकर उज्ज्वल रूप धारण करते हैं। वे अपने कर्म से अन्तरिक्ष को तेजस्वी बनाते हैं।८। हे अग्ने ! तुम्हारा अत्यन्त प्रकाश युक्त तेज अन्तरिक्ष में फैल रहा है, तुम अपने उस अक्षय तेज से हमारी रक्षा करो।९। अग्नि मरुभूमि में भी जल प्रवाह को प्रेरित करने में समर्थ हैं। वह पृथिवी की लहरों से युक्त करते हैं। सब अन्नों के धारक और मृत-भूत औषधियों में रमण करने वाले है।१०। हे पावक ! तुम ईंधन द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए

धन से पूर्ण यज्ञ द्वारा प्रदीप्त होओ। हमारी स्तुतियों को मित्र, वरुण, अदिति समुद्र, पृथिवी और आकाश ग्रहण करे।११। (२)

सूक्त ९६

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता–अग्निः। छन्द–त्रिष्टुप्)

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि वलधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयद् द्रविणोदाम्॥१
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥२
तमीलत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥३
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥४
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ।५।३

शक्ति (काष्ठों) के घर्षण से प्रकट अग्नि ने पुरातन के समान सब ज्ञानों को तुरन्त ग्रहण किया। धनदाता अग्नि को जलों और पृथिवी ने मित्र बनाया तथा देवगण ने दूत रूप से उनको नियुक्त किया।१। अग्नि ने प्राचीन स्तुति मन्त्रों से मनुओं की प्रजा को प्रकट किया और आकाश (अन्तरिक्ष) को तेज से व्याप्त किया। उस धनदाता अग्नि को देवगण ने दूत रूप से धारण किया।।२। हे मनुष्यो ! तुम यज्ञ को पूर्ण करने वाले, हवियों द्वारा पूज्य अभीष्ट वाले, बल के पुत्र, पालक, धनदाता अग्नि को प्रधान रूप से पूजो। उसीं धन-दाता अग्नि को देवगण ने दूत-रूप से धारण किया ।३। बहुतों द्वारा वरणीय, पोषक रक्षक, आकाश-पृथिवी के उत्पत्तिकर्त्ता मातरिश्वा अग्नि ने स्वर्ग पथको प्राप्त किया। उसी धनदाता अग्नि को देवताओंने धारण किया।४। एक दूसरे के वर्ण रूप अस्तित्व को नष्ट करती हुई उषा और रात्रि एक शिशु (अग्नि)को

पालती हैं। वह शिशु आकाश-पृथिवी के मध्य प्रदीप्त होता है। उसी को देवताओं ने धारण किया है।५। (३)

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥६
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥७
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥८
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥४

वह ऐश्वर्य के कारण रूप, धन-स्थान, यज्ञ के ध्वज रूप अग्नि मनुष्य का अभीष्ट पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। अमरत्व के रक्षक देवगणने इन्हीं को धारण किया है।६। अब और पहिलेसे ही अग्नि धनों के उत्पत्ति-स्थान हैं। जन्मे हुए और भविष्य में जन्म लेने वाले प्राणियों के रक्षक एवं धनदाता अग्नि को देवगणने धारण किया।७। धनदाता अग्नि हमारे लिए बढ़ने योग्य धन दें। वे हमें वीरतायुक्त धन, सन्तान, अन्न आदि से पूर्ण दीर्घायु प्रदान करें।८। हे पावक! हमारे ईंधन से वृद्धि को प्राप्त यशपूर्ण धन वाले प्रदीप्त होओ। हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश अनुमोदित करें।९। (४)

सूक्त ९७

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥१
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥२
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३
प्र यत् ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥४

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप: नः शोशुचदघम् ।८।५

हमारे पाप भस्म हों । हे अग्ने ! हमारे चारों ओर धनको प्रकाशित करो हमारे पाप नष्ट हों ।१। हम सुन्दर क्षेत्र सुन्दर मार्ग और श्रेष्ठ धन की इच्छा से यज्ञ करते हैं । हमारा पाप भस्म हो ।२। सबसे अधिक स्तुति करने वालों में अग्रणी हों हमारा पाप भस्म हो ।३। हे अग्ने ! हम तुम्हारी ज्योति के समान तेजस्वी बनें । हमारे पाप भस्म हो ।४। अग्नि की शत्रु-विजयी प्रबल ज्वालाएं सब ओर बढ़ती हैं । हमारा पाप भस्म हो ।५। हे सर्वतोमुख अग्ने ! तुम सर्वत्र फैलने वाले हो । हमारा पाप जलकर नष्ट हो ।६। हे अग्ने ! तुम हमको नौका के समान शत्रुओंसे पार लगाओ । हमारा पाप भस्म हो ।७। हे अग्ने ! समुद्रसे पार ले जाने के समान, हिंसकों से हमको पार ले जाओ । हमारा पाप जल जावें ।८। (५)

सूक्त ६८

(ऋषि— कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥१
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२
वैश्वानरः तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।३।६

हम वैश्वानर अग्नि की दया को प्राप्त करे। वे लोकों के पालक और संसार के देखने वाले हैं। वे सूर्य के समान हैं।१। वे अग्नि आकाश, पृथिवी में पूजनीय हैं। वे सब औषधियों में व्याप्त हैं। वह बली वैश्वानर अग्नि हिंसकों से हमारी दिन-रात्रिमें रक्षा करें।२। हे वैश्वानर अग्ने! तुम्हारा कर्म सत्यहो, हमको धन युक्त ऐश्वर्य प्राप्त हो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हम पर कृपा करें।३। (६)

सूक्त ९९

(ऋषि–कश्यपो मारीचः। देवता—अग्निर्जातवेदा। छन्द–त्रिष्टुप्)

जातवेदसे सुनवामसोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।१।७

हम धनोत्पादक अग्नि के लिए सोम निष्पन्न करें। शत्रुओं के धनों को भस्म करें। जैसे नाव नदी को पार करा देती है वैसे ही वह अग्नि हमको दुःखों से पार करें और हमारे रक्षक हों।१। (७)

सूक्त १००

(ऋषि—ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव भयमान सुराधा। देवता–इन्द्र
छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्।)

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।।१
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान् भवत्विन्द्र ऊती ।।२
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।।३
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।

ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४
सनीलेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।५।८

वे वीर, पुरुशार्थी, आकाश-पृथिवी के स्वामी एवं जलों को प्राप्त कराने वाले युद्धोंमें आह्वान कियेजाने वाले इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करें ।१। सूर्य के समान महान् गति वाले, शक्ति से वृत्र को मारने वाले अत्यन्त वीर्य-वान् इन्द्र मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ।२। जिसके मार्ग आकाश के जलों का दोहन करते (वर्षाके रूप में)चलते हैं वह विजयशील इन्द्र अपने धूलोंसे शत्रुओं का पतन करने हुए वीरोंमें श्रेष्ठ, मित्रों में मित्र, स्तोताओं में स्तोता, गायकों में गायक, इस प्रकार सभी में श्रेष्ठ है । मरुतों सहित वे हमारे रक्षक बनें ।३-४। उस दूरस्थ चमकते हुए ने पुत्रों के समान अपने साथी मरुतों सहित यश योग्य कर्मों को करते हुए शत्रुओं को परास्त किया । वह इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करें ।५। (८)

स मन्युमीः समदनस्य कर्ताऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वतः त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८
स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।१०।९

अभिमानियों के नाशक, युद्ध कर्म में प्रवृत्त रहने वाले, समस्त लोकों के अधिकारी इन्द्र सूर्य को प्राप्त करें । वे पालक और आह्वान किए हुए इन्द्र मरुतो सहित हमारे रक्षक हों ।६। सहायक मरुतों ने इन्द्र को युद्ध में

उत्तेजित किया । मनुष्योंने अपनी कुशलके लिए उन्हें रक्षक माना । वह अकेले ही सब कर्मों के स्वामी हैं । इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करें ।७। युद्धों में मनुष्य इन्द्र को धन और रक्षा के लिए बुलाते हैं । वे अन्धकार में भी प्रकाश करने वाले हैं । वह इन्द्र मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ।८। वे इन्द्र बाँए हाथ से हिंसकों को रोकते और दाहिने हाथ से यजमान की हवियाँ ग्रहण करते हैं । वे स्तोता को धन देते हैं । मरुतोंके साथ वे हमारे रक्षक हों ।९। वे अपने सहायकों सहित धन प्राप्त कराते हैं । वैरियों को शक्ति से वशीभूत करने वाले वे इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करें ।१०। (६)

स जामिभिर्यत् समजाति मीह्ळे ऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११
स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।१५।१०

बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र बन्धुओं अथवा अन्य व्यक्तियों के साथ युद्ध-यात्रा करते हैं, तब वे मरुतों सहित हमारी रक्षा में तत्पर रहें ।११। वे वज्रधारी इन्द्र, दैत्यों के हननकर्त्ता, विकराल, पराक्रमी, बहुतों पर कृपा करने वाले, मार्ग-दर्शक, प्रकाशवान, सोम के समान पूज्य हैं । वे मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ।१२। इन्द्र का चमकता हुआ वज्र घोर शब्द करता गर्जता है । उनकी स्तुतियाँ और ऐश्वर्य सेवा करते हैं। मरुतों सहित वही इन्द्र हमारी रक्षा करने वाले हों ।१३। जिसका बल-आकाश-पृथिवी का पालन

करता है वे हमारे यज्ञ-कर्म से सन्तुष्ट हों और मरुतों सहित रक्षा करें ।१४।
जिसके बल का पार देवता या मनुष्य कोई नहीं पाते, वे अपने बल से पृथिवी ओर आकाश से भी महान् हैं । मरुतों सहित वे हमारी रक्षा करें ।१५। (१०)

रोहिच्छयावा सुमदंशुर्ललामीद्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ।१८
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।१६।११

रोहित और श्यावा अत्यन्त सुन्दर रूप वाले घोड़े धनके निमित्त पुरुषार्थी इन्द्र के रथ को ले जाते हुए प्रसन्नता सूचक शब्द करते हैं। इन्द्र 'ऋज्राश्व' को धन दान करते हैं ।१६। हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त 'वृषागिर' के पुत्र 'ऋज्राश्व,' 'अम्बरीष' 'सहदेव' 'भयमान' और 'सुराध' इस प्रसिद्ध स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ।१७। अनेकों द्वारा आहूत इन्द्रने हिंसकोंको मारकर गिरा दिया । उस उत्तम वज्र वाले ने मनुष्यों के साथ भूमि को, सूर्य को और जलों को पाया ।१८। इन्द्र हमारे पक्ष को सबल करें । हम सीधे मार्ग से अन्न सेवन करें। हमारी इस प्रार्थनाको मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश सुनें ।१६। (११)

सूक्त १०१

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् जगती)

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।

इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीलोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि सन्दधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।६।१२

हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्रके निमित्त अन्न युक्त स्तुतियाँ अर्पण करो। जिसन राजा 'ऋजिश्वा' के साथ कृष्ण नामक दैत्यकी प्रजाओं का नाश किया, हम उस वज्रधारी, वीर्यवान् इन्द्रका मरुतों सहित रक्षाके लिए आह्वान करते हैं।१। जिसने अपने अत्यन्त क्रोधसे 'व्यंस' 'शम्बर,' 'पिप्रु' और 'शुष्ण' नामक दुष्टों का नाश किया हम उस इन्द्र कों मरुतों सहित बुलाते हैं।२। जिससे बलसे आकाश-पृथिवी प्रेरित हैं, जिसके नियम में वरुण, सूर्य और नदियाँ स्थित हैं, उस इन्द्र कों मरुद्गण सहित बुलाते हैं।३। अश्वों, गौओं के स्वामी, पूजनीय, कर्मों में स्थिर, सोम विरोधी दुष्टोंके शत्रु इन्द्रको मरुद्गण सहित बुलाते हैं।४। जो गतिमान् और श्वासधारी जीवोंके स्वामी हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों की भी अपहृत गौओं का उद्धार किया तथा दुष्टों का पतन किया, वे इन्द्र मरुद्गण सहित हमारे मित्र हों।५। जो वीरों द्वारा एवं कायरों द्वारा भी बुलाये जाते हैं, जो विजेताओं तथा पलायनकर्त्ताओं के द्वारा आहूत किये जाते हैं, उन इन्द्र की विद्वज्जन सम्पूर्ण लोकों का स्वामी मानते हैं। वे मरुतों सहित हमारे मित्र बनें।६। (१२)

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७

यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।११।१३

प्रकाशवान इन्द्र रुद्र पुत्र मरुतों की सहायता से प्रकट होकर अपना महत्व दिखाते हैं। उन प्रसिद्ध इन्द्र की स्तुतियाँ सेवा करती हैं। वे मरुतों सहित हमारे मित्र हों।७। हे मरुतोंयुक्त इन्द्र! तुम ऊपर नीचे कहीं भी रहो, वहीं से हमारे यज्ञ-स्थान को प्राप्त होओ। तुम सत्य धन से युक्त के लिए ही हम हवि देते हैं।८। हे शक्तिशालिन्! तुम्हारे लिए यह सोम निष्पन्न किया है। तुम स्तोत्र द्वारा प्राप्त होते हो। तुम्हारे निमित्त हवि प्रस्तुत है। मरुतों सहित इस कुशासनपर आनन्द करो।९।हे इन्द्र! अपने अश्वों सहित प्रसन्न होओ। अपने जबड़े और होठों को खोलो। तुम सुन्दर ठोड़ी वाले घोड़ोंको लाओ। हमपर प्रसन्न होते हुए हवियाँ स्वींकार करो।१०। इन्द्र का स्तोत्र मरुतों के साथ है। हम इन्द्रके द्वारा अन्न प्राप्त करें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी,आकाश हमारे प्रति उदारहों।११। (१३)

सूक्त १०२

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता–इन्द्रः। छन्द–जगती त्रिष्टुप्)

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥१
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२

तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा च इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ।५।१४

हे इन्द्र ! मैं इस अत्यन्त महान स्तोत्र को तुम्हारे प्रति निवेदन करता हूँ ! तुम्हारा मेरे ऊपर अनुग्रह इस स्तोत्र पर निर्भर है। इन्द्र के साथ देवगण इस विजयोत्सव में निष्पन्न सोम द्वारा पुष्ट हुए है।१। इस इन्द्र के यज्ञ को सप्त नदियाँ, इसके रूप को आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष धारण करते हैं। हे इन्द्र ! हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा विचरण करते हैं।२। हे इन्द्र ! तुम वैभवयुक्त विजेता हो, तुम्हारे रथ को रण-स्थल में देखकर हम आनन्द विभोर होते हैं, । उस रथ को धन प्राप्ति के लिए हमारी ओर प्रेरित करो। तुम हमारे द्वारा बहुत बार स्तुत किये गये हो। हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त हों।३। हे ऐश्वर्यशालिन् ! हम तुम्हारे सहायक रूप से लड़ते हुए सम्पत्ति को प्राप्त हों। तुम हमारे पक्षकी रक्षा करो। धन को सरलता से पावें और शत्रु की शक्ति को नष्ट करें।४। हे धनों के धारक इन्द्र ! ये रक्षा की याचना करने वाले मनुष्य तुम्हारा हार्दिक आह्वान करते हैं। तुम हमको सम्पत्ति प्राप्त कराने के लिए रथ पर चढ़ो। तुम्हारा स्थिर मन विजय प्राप्त करनेमें पूर्ण समर्थ है।५। (१४)

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६
उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत् सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११
१५

इन्द्र की भुजाओं में अत्यन्त बल हैं, वे गौओं के लिए लाभकारी हैं । इन्द्र रक्षा-साधनों से सम्पन्न, बाधा रहित, शत्रुमें क्षोभ उत्पन्न करने वाले एवं बल स्वरूप हैं । धन की कामना से याचकगण इनका आह्वान करते हैं ।६। हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र ! तुम्हारा यश हजारों गुना फैला हुआ है । तुम अभेद्य दुर्गों को तोड़ने वाले तथा असीम बल वाले हो । तुमको वेदवाणी प्रकाशित करती है । हे इन्द्र ! शत्रुओं का नाश करो ।७। हे मनुष्यों के स्वामिन् ! तुम तीन लोकोंमें तीन रूप (सूर्य, विद्युत्, अग्नि) से विद्यमान हो । तिलड़ी रस्सी के समान प्राणियों के बल रूप हो । तुम सम्पूर्ण जीवों से महान् और शत्रु रहित हो ।८। हे इन्द्र ! तुम देवों में प्रमुख हो । तुम्हारा हम आह्वान करते हैं । तुम सदा विजेता रहे हो । इस स्तोता को बुद्धि देकर कार्य कुशल बनाओ । रण क्षेत्र में अपने रथ को आगे रखो ।९। हे इन्द्र ! तुमने छोटे या बड़े कैसे भी युद्ध में पराजय नहीं पायी । तुमने जीते हुए धनको कभी नहीं रोका । हम स्तुति द्वारा तुमको युद्धार्थ आमन्त्रित करते हैं तुम हमको उचित प्रेरणा दो।१०। हे इन्द्र ! हमारे पक्ष में रहो, कुटिल मति से रहित हम अन्नों को उपभोग करें । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारे निवेदन पर ध्यान दें ।११।
(१५)

सूक्त १०३

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

तत् त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद् दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१

स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्यऽऽर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥३
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥४
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५॥१५

हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध सूर्य-रूप उत्तम बल आकाश में स्थित है। पृथिवी पर इस अग्नि रूप बल को ऋषियों ने यज्ञ-रूप से धारण किया। ये दोनों बल ध्वजाओं के समान हिलते हैं।१। उस इन्द्र ने पृथिवी को विस्तृत किया। वृत्र का नाश कर जलों की वर्षा की। 'अहि' ओर 'रोहिण' असुरों को विदीर्ण किया। 'व्यंस' को मार डाला ।२। वज्रधारी ये इन्द्र शत्रु-दुर्गों को नष्ट करने के लिए जाते हैं। हे इन्द्र ! दैत्यों पर वज्र डालो और आर्योंके बल और कीर्ति की वृद्धि करो।३। मनुष्यों में कीर्तन योग्य 'मघवा' नाम को धारण करते हुए इन्द्र ने साधक के शत्रुओं को मारने से प्राप्त हुए यश और बल को धारण किया।४। हे मनुष्यो ! इन्द्र के प्रसिद्ध पराक्रम को देखो, उसके बल का आदर करो। उसने गोओं और घोड़ों को प्राप्त किया। औषधियों, जलों और वनों को भी प्राप्त किया।५। (१६)

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥६
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥१७

हम बहुकर्मा श्रेष्ठ, पुरुषार्थी बल वाले इन्द्र के लिए सोम निष्पन्न करें। वे लालची, अकर्मी दुष्टोंके धन को छीनकर कर्मशील उपासकोंमें बाँटते हैं ।६। हे इन्द्र ! सोते हुए वृत्र को वज्र से जगाना वास्तव में तुम्हारा परम शौर्य है। उस समय तुमको पुष्ट देखकर देवताओं ने अपनी पत्नियों सहित अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया ।७। हे इन्द्र ! जब तुमने 'शुष्ण' पिप्रु' 'कुयव', 'वृत्र, को मारा और 'शम्बर' के गढ़ों को तोड़ा तब हमारी प्रार्थना सफल हुई। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थनाओं का अनुमोदन करें ।८।
(१७)

सूक्त १०४

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः देवता—इन्द्रः । छन्द त्रिष्टुप्)

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान् त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम ॥२
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४
प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ।५।१८

हे इन्द्र ! तुमने अपने लिए जो स्थान बनाया है, उस पर अपने घोड़ों को रथ से खोलकर बैठो। वे घोड़े यज्ञ का अवसर आनेपर दिन-रात तुम्हारे रथ को चलाते हैं ।१। मनुष्यो ! रक्षा के निमित्त इन्द्र के समीप जाओ। वे दुष्कर्म करने वालों के क्रोध को नष्ट करें। मनुष्य जाति की उत्तम प्रगति करें ।२। जैसे जल पर फेन स्वयं ही उठता है, वैसे ही अपने सहारे इन्द्र हैं। 'कुयव' नामक असुर की स्त्रियाँ दूध से स्नान करती हैं। वे नदीके गहरे जलमें जाकर

डूब मरें ।३। आर्यों का सम्बन्ध इन्द्रसे भङ्ग हो गया । वह शक्तिशाली 'कुयव' पूर्व की नदियों के पार राज्य करता था । उसकी अंजसी कुलिशी और वीर पत्नी नामक नदियाँ जल के साथ दूध को ले जाती हैं ।४। कोष्ठ को जानने वाली गौ के समान दैत्यों ने भी हमारे निवास स्थान का मार्ग देख लिया है । हे इन्द्र ! हमारी अब भी रक्षा करो । जैसे कामुक धन का त्याग करता है, वैसे हमको न त्यागो ।५। (१८)

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥६

अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि ॥८

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ।९॥१९

हे इन्द्र ! हमें सूर्य और जलों के प्रति स्तुति करने वाला पापों से रहित बनाओ । तुम हमारी गर्भस्थ सन्तान का नाश करो । हमको तुम्हारी शक्ति पर पूरा भरोसा है ।६। बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ! मैं आपके बलमें विश्वास करता हूँ । तुम हमको महान ऐश्वर्य की ओर प्रेरित करो । हमको अन्न विहीन घरमें भूखा नहीं रखना ।७। हे समर्थ इन्द्र ! तुम हमारी हिंसा न करो । हमारा त्याग न करो । हमारे उपभोग-पदार्थों को नष्ट न करो ।८। हे सोमाभिलाषी इन्द्र ! हमारे सामने आओ । यह निष्पन्न सोम रखा है । इसे आनन्दके निमित्त पान करो । बुलाये जाने पर पिता के समान हमारी स्तुतिको सुनो ।९। (१९)

सूक्त १०५

(ऋषि—आप्त्यस्त्रित आङ्गिरसः कुत्सो वा । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—पंक्तिः बृहती, त्रिष्टुप् ।)

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१
अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२
मो षु देवा अदः स्वरव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी॥४
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ।५।२०

चन्द्रमा अन्तरिक्ष में और सूर्य आकाशमें गति करते हैं । हे स्वर्णिम बिजलियो ! मनुष्य उन्हें ढूंढने में असमर्थ हैं । हे आकाश-पृथिवी ! हमारे निवेदन को सुनो ।१। धन की इच्छा वाले धन पाते हैं, स्त्री पति पाती है । वे दोनों मिलकर सन्तान प्राप्त करते हैं । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे कष्ट को समझो।२। हे देवगण ! आकाश के ऊपर की यह ज्योति न नष्ट हो । सोम निष्पंन करने योग्य सुखकारी पुत्र का अभाव हमको कभी न हो । हे आकाश और पृथिवी ! हमारे कष्ट को समझो ।३। मैं सबसे युवा अग्नि से पूछता हूँ । वे देवदूत उत्तर दें कि पुरातन नियम कहाँहै ? कौन नया पुरुष उसे धारण करताहै? हे आकाश पृथिवी ! मेरे दुःख को समझो ।४। हे देवगण ! तीनों में प्रकाशित आकाश में स्थान है । तुम्हारा नियम क्या है ? उन नियमों के विपरीत क्या है ? तुम्हारा प्राचीन आह्वान कहाँ गया ? हे आकाश-पृथिवी ! मेरे दुःख पर ध्यान दो ।५।

कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम ढचोद वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
नं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९
अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ।१०।२१

देवगण ! हमारे नियम का आधार क्या है ? वरुण की व्यवस्था कहाँ है? अर्यमा किस प्रकार हमको दुष्टों से पार लगा सकते हैं ? हे आकाश-पृथिवी ! हमारे दुःख को समझो ।६। मैंने पूर्वकाल में, सोम के निचोड़े जाने पर हुवत स्तोत्र कहे । प्यासे हिरण को भेड़िये द्वारा भक्षण कर लेने के समान मेरे मन की पीड़ा ही मुझे खाये जाती है । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे कष्ट पर ध्यान दो ।७। दो सौतिनों द्वारा पतिको सताये जानेके समान कुँए की दीवारें मुझे सता रही हैं । हे इन्द्र ! चुहिया द्वारा अपनी पूँछ को चबाने के समान मेरे मनकी पीड़ा मुझ चबा रही है । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे दुःख को समझो ।८। इन सूर्य की सात किरणोंसे मेरा पैतृक सम्बन्ध है-इस बात को जल का पुत्र 'त्रित' जानता है । इसलिए वह उन किरणों की स्तुति करता है । हे आकाश-पृथिवी! मेरे कष्ट को समझो ।९। आकाश में ये पाँच वीर (अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, विद्युत्) स्थित हैं । वे मिलकर मेरे द्वारा रचित इस स्तोत्र को देवताओं को सुनाकर लौट आवें । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे इस दुःख को जानो ।१०। (२१)

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४
ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ।१५।२२

ये सर्वव्यापी सूर्य आकाश में बैठ हैं। ये अन्तरिक्ष को लाँघकर चन्द्रमा को मार्ग से हटावें। हे आकाश-पृथिवी ! ये बात जान लो।११। हे देवगण ! यह नवीन स्तोत्र प्रशंसा-योग्य, हितकर और कल्याण का उद्घोश्य करता है। नदियाँ देवताजों के नियमों की प्रेरणा करती हैं और सूर्य सत्यका प्रचारक है। हे आकाश-पृथिवी ! यह बात जान लो ।१२। हे अग्ने ! देवताओं का यजन करो। हे आकाश-पृथिवी ! मेरी यह बात सुनलो ।१३। मनुष्यके समान हमारे यज्ञ में बैठे हुए होता रूप मेधावी अग्नि देवगण के निमित्त हवि-प्रेरणा करें। हे आकाश पृथिवी ! मेरी इस बात को जानो ।१४। मन्त्र रूप स्तुति को वरुण रचते हैं। हम उन स्तुतियों से अर्चन करते हैं। हृदय द्वारा स्तुतियों को कहते हैं। उससे सत्य प्रकाशित हो। हे आकाश-पृथिवी ! हमारे वचनों पर ध्यान दो ।१५।

(२२)

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६
त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७
अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।१६।२३

हे देवगण ! आकाश में पथ-रूप सूर्य स्तुतियों के योग्य हैं, उनका उल्लंघन न करो। हे मनुष्यो ! तुम उनकी शक्तिको नहीं जानते। हे आकाश पृथिवी ! हमारे कष्टों पर ध्यान दो ।१६। कुएँ में गिरे हुए 'त्रित' ने रक्षार्थ देवाह्वान किया। उसे बृहस्पति ने सुना और 'त्रित' को पाप-रूप कुएँ से निकाला। हे आकाश-पृथिवी ! मेरे दुःख को सुनो ।१७। पीठ पर रोग उठने पर पीड़ा से खड़े हो जाने वालेके समान खड़ा होकर प्रकाशयुक्त चन्द्रमा उस मार्ग से जाता हुआ मुझे नित्य देखता था। हे आकाश-पृथिवीं ! मेरी व्यथा को समझो। इन्द्र तथा सभी वीर पुरुषों से युक्त यह चन्द्रमा उस मार्ग से जाता हुआ, मुझे नित्य देखता था। हे आकाश पृथिवी ! मेरी व्यथा को समझो ।१८। इन्द्र तथा सभी वीर पुरुषों से युक्त हम इस स्तोत्र के द्वारा युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारे स्तोत्र का अनुमोदन करें ।१९। (२३)

सूक्त १०६ (सोलहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—विश्वेदेवा। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।१
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।२
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुर्हितं तदीमहे।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ।।५
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाह्ळ ऋषिरह्वदूतये।

रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।७।२४

इन्द्र, मित्र,वरुण अग्नि, मरुद्गण और अदिति का रक्षार्थ आह्वान करते हैं। हे कल्याणकारी वसुओ ! रथ को संकीर्ण मार्ग से निकालने के समान सब पापों से निकालकर हमारी रक्षा करो।१। हे आदित्यो ! तुम हमारी कामना-पूर्ति के लिए आओ। युद्धों में दुःख न दो। रथ को संकोर्ण मार्गों से निकालने के समान हमको पापों से निकालो।२। उत्तम यश वाले पितर और यज्ञ को बढ़ाने वाली देवमाताएँ हमारी रक्षक हों। हे वसुओ ! रथ को निकालने के समान पापों से निकालकर रक्षा करो।३। मनुष्यों द्वारा स्तुत्य बलवान् अग्नि को पूजते हुए हम वीरों के स्वामी पूषा की स्तुति करते हैं। हे कल्याणकारी वसुदेवो ! रथ को निकालनेके समान हमको पापोंसे निकालो।४। हे वृहस्पते ! हमको सुख दो। तुम मनुष्यों के रोग और भयों का निवारण करते हो। हम वही चाहते हैं। हे वसुदेवो ! रथ को संकीर्ण पथसे निकालने के समान पापोंसे हमको निकालो ।५। कुएँ में गिरे कुत्स ऋषि ने वृत्र-हन्ता को पुकारा। हे कल्याणकारी ४रुदेवो ! हमको पापों से उबारो।६। देवताओं सहित अदिति हमारी रक्षा करें। रक्षा-साधनोंसे युक्त देवगण आलस्य छोड़कर हमें बचावें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें।७। (२४)

सूक्त १०७

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता–विश्वेदेवा। छन्द–त्रिष्टुप्)

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृलयन्तः।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥२

तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत सविता चनो धान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।३।२५

हमारे यज्ञ को देवगण स्वीकार करें। हे आदित्यो ! हम पर अनुग्रह करो। तुम कल्याणकारी मन को हमारी ओर फेरो। हमारे दारिद्रय दूर हों और हम अत्यन्त धन प्राप्त करें।१। अंगिराओं द्वारा गायों गयी स्तुतियों से हमारी रक्षा के लिए देवगण आवें। बलों के साथ ईन्द्र, वायुओं के साथ मरुद्गण और आदित्यों के साथ अदिति हमको आश्रय प्रदान करें।२। इन्द्र,वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य हमारे लिए सुख धारण कराने वाले हों। मित्र वरुण, अदिति, समुद्र पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें।३। (२५)

सूक्त १०८

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता–इन्द्राग्नी। छन्द–त्रिष्टुप्)

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावां अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२
चक्राथे हि सध्यङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्रचञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥४
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ।५।२६

हे इन्द्र अग्ने। तुम दोनों का अद्भुत रथ सब संसार को देखता है। उस पर चढ़कर यहाँ आओ और निष्पन्न सोम का पान करो।१। हे इन्द्र-अग्ने ! जितना गम्भीर और विस्तृत, यह संसार है, उतना विशाल होता हुआ यह सोम तुम्हारे लिए पर्याप्त हो।२। हे वृत्रनाशक इन्द्र अग्ने ! तुम

दोनों साथ चलकर इकठ्ठे बैठकर सोमका पान करो ।३।हे इन्द्र-अग्ने ! अग्नि के प्रदीप्त होने पर हमने हवियों को घृतयुक्त किया तथा कुशको बिछाया है। हम स्रुव लिए खड़े हैं। तुम दोनों आकर सोम से तृप्त होओ ।४। हे इन्द्र-अग्ने ! तुमने विविध वीर कर्मों को किया तथा वीर वेशों को धारण किया। तुम्हारी मित्रताएँ कल्याण करने वाली हैं। तुम उन मित्र-भावों सहित आकर सोम पीओ ।५। (२६)

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥७
तदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥८
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥९
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१०
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।१।२७

हे इन्द्र-अग्नि ! मेरा संकल्प था कि मैं तुम दोनों को वरण कर सोम से तृप्त करूँगा। तुम मेरी हार्दिक श्रद्धा पर ध्यान देकर पधारो। इस निष्पंन सोम का पान करो ।६। हे पूज्य इन्द्र-अग्ने ! तुम जिस यजमान के घर में पुष्ट हो रहे हो, वहाँ से मेरे पास आकर सोम-पान करो ।७। हे पौरुष-

युक्त इन्द्र-अग्ने ! तुम 'यदुओं,' तुर्वशों,' 'द्रुह्यु ओं,' और 'पुरुषों' में रहते हो, वहाँ से आकर सोम पियो।८। हे वीर्यवान् इन्द्राग्ने ! तुम यदि निम्न पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में विद्यमान हो तो मेरे पास आकर सोम पियो।९। हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम उच्च पृथिव्यादि लोकों में हो तो भी यहाँ आकर सोमको पियो।१०। हे इन्द्राग्ने ! तुम यदि आकाश-पृथिवी, पर्वत, औषधि, जल आदि में जहाँ कहीं हो, वही से मेरे पास आकर सोम सेवन करो।११। हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम आकाश के मध्य में सूर्य के चढ़ने पर स्वेच्छा-पूर्वक विश्राम कर रहे हो, तो भी यहाँ आकर इस सोम का पान करो।१२। हे इन्द्राग्ने! इस निष्पंन सोम को पीकर सभी धनोंको जीतो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करें।१३। (२७)

सूक्त १०९

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—इन्द्राग्नी। छन्द—त्रिष्टुप्)

वि ह्यख्यं सनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२
मा च्छेद्म रश्मींरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥३
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या वर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ।५।२८

हे इन्द्राग्ने ! अपनी भलाई के निमित्त मैंने अपने बांधवों की ओर भी देख लिया परन्तु तुम्हारे समान कृपा करने वाला अन्य नहीं मिला, मैंने तुम्हारे चाहने वाले स्तोत्र की रचना की।१। हे इन्द्राग्ने ! तुम अयोग्य

जामाता तथा साले से भी अधिक धय दान करने वाले हो। मैं तुम्हें सोम भेंट करता हुआ स्तोत्र रचता हूँ।२। 'सन्तान की लड़ी न काटें' इस प्रार्थना के साथ पितरों के अनुकरण में वीर्यवान् इन्द्र और अग्नि के द्वारा प्रसन्नता पाने को यह सोम कूटनेके पाषाण-चर्म पर पड़े हैं।३। हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारी कामना के लिए ही यह सोम कूटा जा रहा है। हे सुन्दर कल्याण रूप हाथों वाले अश्विदेवो ! शीघ्र आओ। सोम को मीठे जलों से युक्त करो।४। हे इन्द्राग्ने ! तुम धन बाँटने और शत्रु का नाश करने में अत्यन्त बलवान् हो। इस यज्ञ में कुश पर बैठ कर निष्पन्न सोम से आनन्द प्राप्त करो।५। (२८)

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥७
पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।८।२९

हे इन्द्राग्ने ! तुम मनुष्यों से बढ़कर युद्ध में ताड़ना करते हो। तुम पृथिवी और आकाश से भी महान् हो। तुम पर्वतों, समुद्रों तथा अन्य सब लोकों से भी बढ़ कर हो।६। हे वज्रिन्, हे अग्ने ! तुम दोनों धनों को लाकर हमें दो। अपने बलों से हमारी रक्षा करो। ये वही सूर्य किरणें हैं जो हमारे पितरों को भी प्राप्य थीं।७। हे दुर्गभंजक इन्द्राग्ने ! हमें इच्छित फल दो। युद्धों में रक्षा करो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें।८। (२९)

सूक्त ११०

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता–ऋभुगण। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)
ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२
तत् सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥३
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥४
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ।५।३०

हे ऋभुओ ! जो पूजन कर्म मैंने पहले किया था, वह अब फिर करता हूँ । तुम्हारे निमित्त स्तोत्र उच्चारण करता हूँ । यह समुद्र-सा विशाल गुण वाला सोम सब देवताओंके लिए है । स्वाहायुक्त होम होनेपर तुम इससे अत्यन्त तृप्त होओ ।१। हे सुधन्वा-पुत्रो ! जब तुम सोम की इच्छा से विचरे तब तुम अपने महत्व से सूर्य के घर में जा पहुँचे ।२। हे ऋभुगण ! सूर्य ने तुमको अमरत्व प्रदान किया क्योंकि तुमने उम प्रकाशवान् पर अपनी इच्छा व्यक्त की और त्वष्टा के सोम भक्षण करने वाले चमस को चार भागों में बाँट दिया ।३। मरणधर्मा ऋभुओं ने अपने निरन्तर कर्मों द्वारा अमरत्व पाया । वे सूर्य के समान तेजस्वी हुए । वर्ष भर में ही यज्ञ-कर्म में संयुक्त हुए ।४। निकटस्थों से स्तुति किये गये ऋभुओं ने उत्तम पद माँगते हुए देवत्व की कामना की । बाँस से खेत को नापने के समान चौड़े मुख के पात्र को उन्होंने नापा ।५।   (३०)

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन् दिवो रजः ॥६
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।६।३१

स्रुच् द्वारा घृत डालने से ऋभुओं के प्रति ज्ञान द्वारा स्तुति अर्पण करें। उन ऋभुओं ने पिता के कर्मों का अनुसरण कर आकाश के अन्न को पाया ।६। ऋभु अपने बल से इन्द्र के समान हुए। वे बलों द्वारा धन देने वाले हैं। देव-गण ! हम तुम्हारी रक्षामें रहकर मन चाहे दिनोंमें ही सोम-द्रोहियोंकी सेनाओं को पराजित करें ।७। हे ऋभुओ ! तुमने चर्मसे गौएँ बनायीं। मातासे बछड़े का योग किया, उत्तम कर्मों की इच्छासे वृद्ध माता-पिताको युवावस्था दी ।८। हे इन्द्र ! ऋभुओं सहित तुम युद्धों में अपनी शक्तियों से हमारी रक्षा करना और अद्भुत धनों को प्रकट करना। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ।६। (३१)

सूक्त १११

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः। देवता ऋभवः। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयस्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ।।१
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ।।२
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ।।३
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ।।४
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।५।३२

ज्ञान द्वारा कर्मों में नियुक्त ऋभुओं ने उत्तम रथ की रचना की। इन्द्र के इस घूमने वाले रथके लिए घोड़े बनाये। माता-पिता के लिए युवावस्था को प्रेरित किया और बछड़े के साथ रहने वाली माता को रचा ।१। हे ऋभुओ !

यज्ञ-कर्मों के निमित्त हमको स्वास्थ्य प्रदान करो। कर्म करने के लिए शक्ति चाहिए अतः श्रेष्ठ प्रजायुक्त अन्न की रचना करो। हे उत्तम बल धारण करने वाली ! हम वीर सन्तति के लिए विद्यमान हों।२। हे ऋभुओ ! हमारे लिए, हमारे रथ के लिए और हमारे घोड़े के लिए अन्न, धन आदि प्राप्त कराओ। हमको विजय दिलाने वाले और शत्रुओं को दबाने वाले रक्षा-साधनों की वृद्धि करो।३। अपनी रक्षा तथा सोम-पान के निमित्त इन्द्र, ऋभुगण, वाज मरुद्गण, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमारों का मैं आह्वान करता हूँ। वे धन प्राप्ति, उत्तम बुद्धि और जय-लाभ के लिए हमें प्रेरित करें।४। युद्ध के लिए ऋभुगण हमको धन दें। युद्धों को जीतने वाले वाज हमारे रक्षक हों। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें।५।   (३२)

(ऋभुगण पहले मनुष्य थे। अंगिरा-वंश में सुधन्वा के ऋभु, विभु और वाज नामक तीन पुत्र थे, वे अपने महान् कर्मों द्वारा देवता हो गये।)

सूक्त ११२

(ऋषि-कुत्स आङ्गिरसः। देवता—आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्य अग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं धर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति।

याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् । ४
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।
।५।३३

मैं चैतन्य के निमित्त आकाश-पृथिवी की स्तुति करता हूँ । फिर अश्विनीकुमारों के शीघ्र आगमन क लिए श्रेष्ठ कान्तियुक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ । हे अश्विओ ! जिन सुन्दर रक्षा साधनों से स'ग्राम में धन जीतकर देते हो, उनके साथ यहाँ आओ ।१। हे अश्विनीकुमारो ! जैसे कर्मों में सम्पत्ति के लिये विद्वानोंके चारों ओर खड़े रहते हैं वैसे ही तुम्हारे रथ के चारों ओर खड़े रहकर स्तोतागण गान योग्य स्तोत्रों सहित स्थिर होते हैं । जिन रक्षा-साधनोंको अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रेरित करते हो, उनके सहित यहाँ आओ ।२। हे अश्विनीकुमारो ! तुम आकाशस्थ अमृत के बलसे प्रजाओं पर शासन करने में समर्थ हो । जिस उपाय से तुमने वन्ध्या गौओं को दूध से परिपूर्ण किया, उसके साथ आओ ।३। हे अश्वियो ! जिन उपायों से द्विमातृक अग्नि पुत्र रूप यजमान के बलसे उत्पन्न होकर तेजसे सुशोभित होते हैं तथा जिन उपायों से "कक्षीवान्" तीन यज्ञों के ज्ञाता विद्वान् हुए उन उपायों सहित आओ ।४। हे अश्विदेवो ! जिन उपायों से कुएँ में पड़े हुए बन्धनयुक्त 'रेभ' ऋषि को जल से बाहर प्रकाश में निकाला और इसी प्रकार "वन्दन" ऋषि को बचाया तथा जिन उपायों से 'कण्व' ऋषि की रक्षा की उनके साथ यहाँ पधारो ।५। (३३)

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊयितिरश्विना गतम् ।।६
याभिः शुचन्ति धनसां सुषंसदं तप्तं धममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।७
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।८
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।

याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।९
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीह्ल आजवजिन्वतम् ।१०।३४

हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से कूप में डालकर हिंसा किये जाते 'अंतक' ऋषि को बचाया, समुद्र में पड़े 'भुज्यु'' की रक्षा की, 'कर्कन्धु' और 'वय्य'की रक्षा की, उन साधनों सहित आओ।६। हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से 'शुचिन्ति' को उत्तम धन और निवास दिया, 'अत्रि' को दग्ध करने वाली अग्नि के ताप से बचाया, 'पृश्निगु' और पुरुकुत्स' की रक्षा की, उनके सहित आओ।७। हे अश्विदेवो ! जिन बलों से अन्धे, लूले 'परावृज' को नेत्र और पाँव दिये, जिन साधनों से भेड़िया द्वारा ग्रसित 'बटेरी' की रक्षा की उनके सहित यहाँ आओ।८। हे अजर अश्विदेवों ! जिन साधनों से आपने मधुमयी नदी को प्रवाहित किया, जिन साधनों से 'वसिष्ठ' 'कुत्स' और 'श्रुतर्य' को रक्षा की, उनके साथ आओ।९। हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से धन की इच्छुक और पंगु 'विश्पला' को असंख्य धन वाले युद्ध में जाने की शक्ति दी। जिन साधनों से स्तुति करते हुए 'अश्वराज' के पुत्र 'वश' ऋषि की रक्षा की, उनके साथ आओ।१०। (३४)

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।११
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।१२
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षेत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।१३
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।।१४
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।

याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।१५।३५

हे कल्याणकारी अश्विवय ! जिन साधनों से वणिक् (वैश्य) 'उशिज' के पुत्र 'दीर्घश्रवा' के लिए वर्षा की तथा जिनसे स्तोता 'कक्षीवान्' की रक्षा की, उनके साथ आओ ।११। हे अश्विद्वय ! जिन साधनोंसे नदी तटों को तुमने जलपूर्ण किया, जिन साधनों से बिना अश्व के रथ को विजय के लिए चलाया तथा जिन साधनों से 'त्रिशोक'ने गौओं को हाँकने की प्रेरणा पायी उनके साथ आओ ।१२। हे अश्वियो ! जिन साधनों से दूरवर्ती सूर्य को प्राप्त होते हो। जिन उपायो से 'मान्धाता' की क्षेत्रपतिके कार्य में रक्षा की और 'भरद्वाज'ऋषि को जिन उपायों से बचाया उनके साथ आओ ।१३। जिन साधनों से तुमने अतिथि-प्रेमी 'दिवोदास' की 'शम्बर' के साथ युद्ध करते हुये रक्षा को तथा 'त्रसदस्यु' को संग्राम में बचाया, उन साधनों सहित आओ।१४। हे अश्विदेवो! जिन साधनों से 'वम्र' ऋषि की, 'उपस्तुत' की स्त्री पाने पर 'कलि' ऋषि की रक्षा की तथा जिन साधनों से 'व्यश्व' और 'पृथि' को बचाया, उनके साथ आओ ।१५।

(३५)

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।१६
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादादेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१७
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथो ऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१८
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा यभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।।१९
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।२०।३६

हे अश्विनीकुमारो ! 'शयु' 'अत्रि' और मनु' के लिए जिन साधनों ने मार्ग दिखाया तथा 'स्यूमरश्मि' की रक्षाके लिए उनके शत्रु पर बाण चलाया, उन साधनों सहित आओ ।१६। हे अश्विद्वय ! जिस शक्ति-साधनसे तेज समूह युक्त अग्नि के समान 'पठर्वा' को युद्ध में प्रकाशित किया तथा 'शर्यात' की युद्ध में रक्षा की, उसके सहित आओ ।१७। हे अङ्गिराओ ! हे अश्विद्वय ! जिन रक्षा साधनोंसे तुम हर्षित रहते हो, जिनसे 'पणि' द्वारा अपहृत गौओंके स्थान में सब देवों से आगे गये, जिनसे 'मनु' को अग्नि से पूर्ण किया, उनके साथ यहाँ आओ ।१८। हे अश्विनी कुमारो ! जिन साधनों से तुमने 'विमद' को पत्नी युक्त किया, मनुष्यों के लिए अरुण उषाएँ प्रेरित की, 'सुदास' को दिव्य धन दिया, उनके साथ आओ ।१६। हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से तुम हवि-दाता को सुख प्रदान करते हो, यज्ञ की रक्षा करते हो जिनसे 'अध्रिगु,' देव-वाणी और ऋतु के पूजन की रक्षा करते हो उनके साथ वहाँ आओ ।२०।
(३६)

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२२
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतु प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टोभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।२५।३७

हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से युद्ध में 'कृशानु' को बचाया, जिनसे युवा 'पुरुकुत्स' के अश्व को वेग से चलाया, जिन साधनो से मधुमक्खियों को

मधु दिया, उनके साथ आओ ।२१। हे अश्विद्वय! जिन साधनों से गवादि धन के लिए युद्ध में मनुष्यों का रक्षा करते हो, जिनसे रथ और घोड़ों की रक्षा करते हो उनके साथ आओ ।२२। हे महाबली अश्विद्वय! जिन रक्षा साधनोंसे अर्जुनि पुत्र 'कुत्स,' तुर्वीति,' दर्भीति,' ध्वसन्ति' और 'पुरुषन्ति' की तुमने रक्षाकी, उन साधनों सहित आओ ।२३।हे अश्विदेवो ! हमारे वचन और बुद्धि को कर्म से युक्त करो । मैं, निष्कंपट कर्मोंमें रक्षाके निमित्त तुम्हारा आह्वान करता हूँ । युद्ध में तुम हमारी वृद्धि करो ।२४। हे अश्विदेवो ! दिन और रात में भी विनाश रहित सौभाग्यों द्वारा हमारी सब ओर से रक्षा करो । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारो इस प्रार्थनाको अनुमोदित करें । (त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने अश्व का रूप धारण कर अश्विद्वय को जन्म दिया । यह आधि-व्याधि के देवता माने गये हैं) ।२५। (३७)

॥ सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त ११३

(ऋषि—कुत्स, आङ्गिरसः । देवता—उषा द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम् ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ।५। १

यह ज्योतियोंमें श्रेष्ठ ज्योति प्रकट हुई । अद्भुत प्रकाश सर्वत्र फैलगया । रात्रि ने जैसे सूर्य से जन्म लिया था, वैसेही उषा के लिए अपना स्थान देदिया ।१। श्वेतवर्ण के बछड़े के समान चमकती हुई उषा आ गई । रात्रि ने इसके लिए स्थान छोड़ दिया । ये दोनों परस्पर बँधी हुई अमर आकाशमें क्रम-पूर्वक गति करती हुई, एक दूसरे के वर्ण को मिटा देती हैं ।२। इन दोनों बहनों का मार्ग एक ही है, उनपर देवताओं की प्रेरणासे यह बारम्बार यात्रा करती हैं । एक मन वाली यह उषा और रात्रि विभिन्न वर्ण की हैं और परस्पर टकराती नहीं हैं ।३। स्तुतियों से प्राप्त कांतिमति उषा आयी । उसने हमारे लिए कर्म क्षेत्र का द्वार खोल दिया । संसार को कार्यों में प्रेरित कर धनों को प्रकट किया । उसने सब भुवनों को प्रकाश से पूर्ण कर दिया ।४। सिकुड़ कर सोते हुए को यह धनेश्वरी उषा चैतन्य करती करती है । वह भोग,पूजा, धन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब भुवनों को प्रकाश से भर देती है ।५। (१)

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥८
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥९
कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ।१०।२

राज्य, यश, यज्ञ, अपेक्षित कार्य और आजीविका की ओर मनुष्यों को प्रेरित करने वाली उषा ने सब भुवनों पर अधिकार कर लिया ।६। यह उज्ज्वलवसना युवती सभी पार्थिव धनोंकी स्वामिनी है । वह आकाश की पुत्री

सौभाग्य से खिल उठती है । वह आज यहाँ खिले ।७। नित्य आने वाली उषाओं में यह उषा विगत उषाओं के मार्ग पर चलती है यह जीवित को प्रेरणा देने वाली उषा मृतवत् को भी चैतन्य प्रदान करती है ।८। हे उषे ! तुमने हवि-दान के लिए अग्नि प्रदीप्त की ओर सूर्य के प्रकाश से अंधकार को मिटाया । यज्ञ में लगे मनुष्यों के लिए प्रकाश दिया । तुम्हारा यह कार्य देव-गण के लिए भी हितकर है ।९। जो उषाएँ खिलीं और जो अब खिलेंगी, यह निकटस्थ उषा कितनी देर ठहरेगी, जो बीती हुई उषाओंका इतना सोच करती तथा आगे आने वालियों का हर्ष करती है ।१०। (२)

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ।१५।३

जिन्होंने पुरानी उषाओं को खिलते हुए, देखा, वे मरकर चले गये । इसे हम देखते हैं और आगे आने वाली उषाओंको वे देखेंगे जो आगे आवेंगे ।११। हे उषे ! सत्य को पराजित करने वाली, नियमों में अटल स्तुतियों की प्रेरक, देवताओं के लिए हवि धारक सर्वश्रेष्ठ तू आज यहाँ प्रकट हो ।१२। प्राचीन काल में धन युक्त उषा प्रकट होती थी । आज उषा से संसार को प्रकाशित किया है । भविष्य में भी तू खिलेगी । अजर, अमर यह उषा अपनी इच्छा से गतिमान् है ।१३। उषा अपने तेज से आकाश में चमक उठी । उसने काले अन्धकार को दूर कर दिया । जीवों को चैतन्य करती हुई वह अरुण अश्वों

वाले रथ में वैठ कर जाती है ।१४। पालक तथा वरणीय धनोंको दिलाने वाली यह उषा ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश को भरती हुई विगत उषाओं से भी अत्यन्त महत्व वाली है ।१५।

(३)

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६
स्यूमना वाच उदिर्यति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥१८
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाया शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।२०।४

मनुष्यो ! उठो. हम सबके प्राण रूप सूर्य आ गये । अन्धकार दूर हो गया । उषा ने सूर्यके लिए मार्ग बताया । हम आयु को बढ़ाने वाले स्थान में पहुँच गये ।१६। कांतिमती उषाओं की स्तुति करने वाला चुने हुए शब्दों को निकालता है । हे उषे ! आज उस स्तोताके लिए प्राप्त होकर संततियुक्त आयु को दो ।१७। गो-धन और वीर संतान वाली उषाएं हविदाता के लिए प्रकट होती हैं । उन अश्व देने वालियों को स्तुतिपूर्ण होने पर सोम निष्पन्नकर्त्ता वायु वेग से प्राप्त करें ।१८। हे वरणीय उषे ! तुम देव-माता अदिति के मुख रूप और यज्ञ की ध्वजारूप होकर महत्तापूर्वक चमको । तुम हमारी मंत्र रूप स्तुतियों की प्रशंसा करती हुई प्रकट होओ और हमें यशस्वी बनाओ ।१९। उषाएँ जिन दिव्य गुणों को लाती हैं, वे यज्ञकर्ता और स्तोता को मङ्गलमय हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ।२०।

(४)

(उषा को सब पार्थिव धनों की स्वामिनी इसी दृष्टि से कहा गया है कि उनके प्रकट होने पर मनुष्य उद्योग-धन्धों में लग जाता है ।)

सूक्त ११४

(ऋषि-कुत्स आङ्गिरसः देवता-रुद्रः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामह मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं गामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१
मृला नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वराव नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेलो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥४
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद भेषजा वार्याणि शर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ।५।५

महान्, वीरों के स्वामी, जटिल रुद्र के निमित्त स्तुतियाँ करते हैं । दुपाये, चौपाये सुखी हों । इस ग्राम के वासी सभी प्राणी नीरोग रहते हुए पुष्ट हों।१। हे रुद्र ! दया करो, सुख दो । तुम वीरों के स्वामी को हम नमस्कार करें । जिस शांति को यज्ञ द्वारा मनु ने पाया था उसे हम तुमसे प्राप्त करें ।२। हे रुद्र ! हम तुम्हारे उपासक देवार्चन द्वारा तुम वीरों के स्वामी की दया दृष्टि पावें । तुम हमारी सन्तति को सुख दो । हर्षित वीरों से युक्त हम तुमको हवि भेंट करें ।३। दीप्त, यज्ञ सिद्ध करने वाले, तिरछी गति वाले मेधावी रुद्र का रक्षा के निमित्त हम आह्वान करते हैं । वे देवताओं के क्रोध का निवारण करें । हम उनका अनुग्रह चाहते हैं ।४। हम आकाश के घोर रूप वाले, लाल वर्ण वाले जटाधारी तथा महान् तेजस्वी रुद्रका नमस्कार पूर्वक आह्वान करते हैं । वे वरणीय औषधियों को हाथ में धारण कर हमको सुखी करें तथा अपने रक्षा-साधनों द्वारा निर्भय बनावें ।५।   (५)

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाव मृल ॥६

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।।७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ।।८
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृलयत्तमाथा वयमव इत् ते वृणीमहे ।।९
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृला च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ।।१०
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।११।६

मरुद्गणों के जनक रुद्र के निमित्त यह मधुर स्तोत्र हम उच्चारण करते हैं। हे अविनाशी रुद्र! हमको सेवनीय पदार्थ प्रदान करो। हमपर और हमारी संततिपर दया करो।६। हे रुद्र ! हमारे वृद्ध, बालक, वृद्धि को प्राप्त हों, पुत्र युवावस्था वालों को न मारो। हमारे शरीरों को संताप न दो।७। हे इन्द्र ! हमारे पुत्र आदि सन्तान, भृत्यादि,गौओं और अश्वोंको मत मारो। तुम हमारे वीरों के नाश के लिए क्रोध न करो। हम सदैव हवि देतेहुए तुम्हारा आह्वान करते हैं।८। हे मरुतों के पिता रुद्र ! पशु रक्षक अपने पशुओं को स्वामी की भेंट करता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे लिए स्तोत्र भेंट किये हैं। तुम हमको सुख दो। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। हम तुमसे रक्षा की याचना करते हैं।९। हे वीरों के स्वामी रुद्र ! तुम्हारा पशुओं और मनुष्यों को मारने वाला अस्त्र दूर पहुँचे ' हम पर तुम्हारी कृपा रहे। तुम हम पर दया करो ओर हमारा पक्ष लेते हुए आश्रय प्रदान करो। १०। रक्षा की कामना में 'रुद्र को नमस्कार हो' ऐसा वचन हमने उच्चारण किया है। वे रुद्र मरुद्गण सहित हमारे आह्वान को सुनें। मित्र, वरुण अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमो-

दित करें ।११। (इस स्तोत्र में भगवान् के विकराल रूप को रुद्र माना गया है। पुराणों में रुद्र को ही शङ्कर कहा है।) (६)

सूक्त ११५

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः देवता–सूर्य । छन्द–त्रिष्टुप्)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।।१
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ।।२
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ।।३
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ।।४
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ।।५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।६।७

देवगण का विचित्र सुख रूप तथा मित्र, वरुण, अग्नि का नेत्र रूप सूर्य उदय हो गया । जंगम-स्थावर को प्राण रूप सूर्य ने आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष को सब ओर से प्रकाशित कर दिया ।१। मनुष्य के स्त्री के पीछे जाने के समान, सूर्य कांतिमती उषाके पीछे जाता है। उस समय उपासकगण युगों तक कल्याणकारी प्रभाव डालने के लिए कल्याणदाता यज्ञ को बढ़ाते हैं ।२। कल्याण स्वरूप, स्वर्णिम वर्ण वाले प्रकाश युक्त मार्ग से गमन करने वाले, निरन्तर स्तुति किये जाते सूर्य के अश्व आकाश की पीठ पर पैर रखते हैं और उसी दिन आकाश और पृथिवी का चक्कर काट लेते हैं ।३। अन्धकार को दूर करना सूर्य का दिव्य कर्म है। जब वह अपने सुनहरी घोड़ों

को हटाते हैं तब रात्रि अपना काला वस्त्र फैलाती है। मित्र और वरुण के देखने को सूर्य आकाश की गोद में उस प्रसिद्ध रूप को प्रकट करते हैं। उनके सुनहरी अश्व अपने प्रकाशयुक्त बल को प्रत्यक्ष कर दूसरी ओर अन्धकार कर देते हैं ।५। हे देवगण ! आज सूर्योदय होने पर हमको पाप कर्मों तथा निन्दासे बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ।६। (सूर्य अग्नि-पुत्र होनेसे आदित्य कहे गयेहैं। कर्म, काल और परिस्थिति के अनुसार सूर्य के अनेक नाम रखे गये हैं।) (७)

सूक्त ११६ (सत्रहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१
वीलुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥३
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षलश्वैः ॥४
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ।५।८

सत्य रूप अश्विद्वय के लिए स्तोत्र तैयार करता हूँ ऐसी प्रेरणा करता हूँ जैसे वायु जलों को प्रेरित करता है। अश्विनीकुमारों ने 'विमद' की स्त्री को, सैन्य प्रेरणा द्वारा 'विमद' के यहाँ पहुँचा दिया ।१। हे असत्य रहित अश्विद्वय ! तुम बलपूर्वक उड़ने वाले, द्रुतगामी घोड़ों से उत्साहित हुए थे। यम के प्रिय उस युद्ध प्रतियोगिता में तुम्हारे वाहन ने सहस्रों पर विजय प्राप्त की ।२। हे अश्विदेवो ! 'तुग्र' ने 'भुज्यु' को समुद्र में उसी प्रकार

छोड़ दिया जैसे मृतक धनको छोड़ देताहै। तुम उसे अपनी अन्तरिक्ष गामिनी नावों (वायुयानों) द्वारा ले जाओ ।३। हे असत्य रहित अश्विद्वय ! तुम तीन रात और तीन दिन तक द्रुतगति से चलते हुए रथ द्वारा 'भुज्यु' को समुद्र के पार शुष्क स्थान पर ले आये ।४। हे अश्विद्वय ! निराधार समुद्रमें पड़े 'भुज्यु' को सौ चापे वाली नाव सहित घर पहुँचाया। यह तुम्हारा अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य है ।५।

(८)

यमश्विना ददथु: श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्य: ॥६
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्ण: शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुराया: ॥७
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीवमुन्निन्यथु: सर्वगणं स्वस्ति ॥८
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ।१०।९

हे अश्विद्वय ! दुष्ट घोड़े वाले राजा 'पैदु' को तुमने कल्याणकारी श्वेत रङ्गका अश्व प्रदान किया। तुम्हारा यह महादान प्रशंसा योग्य हैं। वह घोड़ा सदा ही युद्धों में विजेता रहा ।६। हे वीरो ! तुमने स्तुति करते हुए 'कक्षीवान्' की बुद्धि को प्रशस्त किया और वीर्यवान् अश्व के खुर रूप गढ़े से जल की वर्षा की ।७। हे अश्विद्वय ! तुमने प्रज्वलित अग्नि को शीतल जल से शान्त किया। इसे अन्न युक्त बल दिया। तुमने असुरो द्वारा अन्धकार पूर्ण वारिधि में गिराये हुए अत्रि को प्रकाश में निकाला ।८। हे सत्य रूप अश्विद्वय ! तुमने मरुभूमि में गौतम ऋषि के पास कुँए की ओर भेजा। उसे औंधा कर सहस्र पिपासुओं के लिए जल की वर्षा की ।९। हे सत्य रूप, विकराल अश्विद्वय ! तुमने वृद्ध 'च्यवन' का बुढ़ापा कवच के समान हटा दिया और

बन्धुओं द्वारा परित्यक्त ऋषि की आयु को बढ़ाकर कन्याओंका पति बना दिया ।१०। (९)

तद् वा नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूह्लमुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११
तद् वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२
अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरन्धिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।१५।१०

हे मिथ्यात्वहीन अश्विदेव ! कामनाके योग्य तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य पूजनीय तथा प्रशंसनीय है। तुमने छिपे हुए कोश के समान 'वन्दन' को कुएँ से निकाला।११। हे वीरो ! मेघ का गर्जन वर्षा को प्रकट करता है, वैसे ही मैं तुम्हारे उग्र कर्म को प्रकट करता हूँ। तुम्हारे लिए 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ्' ने अश्व के सिर से मधु-विद्या सिखायी।१२। बहुतों के पालनकर्त्ता असत्य रहित अश्विद्वय ! तुम्हें वध्रिमती ने आहूत किया। तुमने प्रसन्न होकर हिरण्यहस्त नामक पुत्र उसे दिया।१३। हे मिथ्यात्व रहित अश्विदेवो ! तुमने 'बटेरी' को भेड़िये के मुख से निकाला और रोते हुए 'कण्व' को देखने की शक्ति दी।१४। राजा 'खेल' की पत्नी का पैर युद्ध में कट गया। तुमने उसके चलने के लिए लोहे की जाँघ बना दी।१५। (१०)

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ।२०।११

हे मिथ्यात्व रहित विकराल रूप वाले भिषको ! वृकी को सौ मेष काट कर देने के दण्ड स्वरूप 'ऋजाश्व' को उसके पिता ने अन्धा कर दिया था। उसके लिए तुमने उत्तम ज्योति वाले नेत्र दिये ।१६। हे अश्विद्वय ! सूर्य पुत्री तुम्हारे द्वारा विजित हुई, तुम्हारे रथ पर चढ़ गई । उस समय तुम्हारे अश्व तेजी से दौड़कर सबसे पहले काष्ठ खण्ड (घुड़दौड़ में विजयके लिए चिह्न स्वरूप) के समीप पहुँचे । तब देवगण ने तुम्हारे कार्यका हार्दिक अनुमोदन किया ।१७। हे अश्विद्वय ! जब तुम 'दिवोदास और 'भरद्वाज' के लिए चले तब तुम्हारा रथ ऐश्वर्थ से पूर्ण था । उस रथ में बैल और ग्राह जुते थे ।१८। हे असत्य रहित अश्विनीकुमारो ! हवि रूप अन्नके तीर भाग देने वाले 'जह्नु'की सन्तान को तुमने सुन्दर राजयुक्त ऐश्वर्य और पुरुषार्थयुक्त आयु को प्रदान किया ।१९। मिथ्यात्व रहित अजर अश्विदेवो ! तुम शत्रु से घिरे जाहुष को रातोंरात सुगम्य मार्ग से ले चले और अपने रथ से पर्वतों को चीरकर निकल गये ।२०। (११)

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।

विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथु: सोममिव स्रुवेण ।।२४
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ।२५।१२

हे अश्विदेवो ! इन्द्र सहित तुमने एक दिनमें हजारों सुन्दर धनों को पाने के लिए 'वश' ऋषि को सहायता दी और 'पृथुश्रवा' के शत्रुओं को नष्ट किया ।२१। हे अश्विद्वय ! तुमने 'ऋचत्क' के पुत्र 'शिर' की प्यास मिटाने को गहरे कुँए के जल को ऊँचा किया और परिश्रान्त 'शयु' के निमित्त वन्ध्या गायको दूध से पूर्ण कर दिया ।२२। हे अश्विदेवो ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले कृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने शत्रु के समान खोये हुए पुत्र विष्णायु से मिला दिया ।२३। हे अश्विदेवो ! स्रुव से सोम निकालने के समान दश रात और नौ दिन तक जल में पाशों से बँधे हुए आहूत 'रेभ' ऋषि को तुमने बाहर निकाला ।२४। हे अश्विदेवो ! मैंने तुम्हारा यश गान किया है,मैं सुन्दर गौओं और वीरों से युक्त होकर राष्ट्र का स्वामी बनूँ । नेत्रों से स्पष्ट देखता हुआ, दीर्घायु प्राप्त कर वृद्धावस्था में प्रवेश करूँ ।२५। (१२)

सूक्त ११७

(ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ।।१
यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ।।२
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ।।३
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ।।४

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ।५।१३

हे असत्य रहित अश्विदेवो । प्राचीन आह्वाता तुम्हें मधुर सोमसे सींचता है । देने योग्य हवि कुशा पर प्रस्तुत हैं । स्तुति उच्चारण की जा रही है । तुम दोनों अन्न बल सहित यहाँ आओ ।१। हे अश्विदेवो ! मनसे अधिक वेग वाला सुन्दर अश्वोंसे युक्त तुम्हारा रथ उपासकों की ओर चलता है उससे तुम यजमान के घर को प्राप्त करते हो । उसी से हमारे घर आओ ।२। हे पुरुषार्थी अश्विद्वय ! दैत्यों की दुःख रूप माया को दूर करते हुए तुमने समस्त वर्षों से पूजित 'अत्रि' को अन्धकार वाले पाप स्थान (पीड़ादायक यन्त्र गृह)से परिवार सहित मुक्त किया ।३। हे अश्विद्वय ! अश्वोंके समान, दुष्टों द्वारा जलमें छिपाये छिन्न-भिन्न शरीर वाले 'रेभ' ऋषि के अङ्गों को तुमने जोड़ दिया । तुम्हारे पुरातन कर्मों में कभी न्यूतना नहीं आती ।४। हे अश्विद्वय ! मृत्यु के अङ्क में सोते हुए के समान, अँधेरे में छिपे सूर्य के समान, गड़े हुए स्वर्ण के समान 'वन्दन' ऋषि को निकाल कर तुमने सुशोभित किया ।५। (१३)

तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ।।६
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ।।७
युवं श्यावाय रुषतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तत् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ।।८
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ।।९
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ।
।१०।१४

हे अश्विद्वय ! तुम्हारा सर्वत्र फैलाहुआ कर्म 'कक्षीवान्'द्वारा प्रशंसा किया गया है। तुमने वेगवान् अश्व के खुर से मनुष्यों के लिए भरपूर जल की वर्षा की।६। हे अश्विद्वय ! तुमने स्तोता 'विश्वक' को उसका पुत्र 'बिष्णापु' दिया और पिताके घरपर बूढ़ी होती हुई 'घोषा' को पति प्रदान किया।७। हे अश्विद्वय ! तुमने काले वर्ण वाले कण्व को उज्ज्वल वर्ण वाली बड़े घर की पुत्री पत्नी रूप में प्राप्त करायी। तुमने नृषद के पुत्र को यश दिया। तुम्हारा यह कर्म वर्णन करनेके योग्य है। हे अश्विद्वय ! तुम अनेक रूप धारण करने वाले हो।८। 'पेदु' के निमित्त तुम वेगवान अश्व को लाए जो कभी पीछे न हटने वाला बहुत धन ढोने वाला शत्रुओं के निर्भय जाकर उन्हें मारने में सहायक तथा विजय दिलाने में समर्थ था।९। हे कल्याणकारी अश्विदेवो ! तुम्हारे कर्म श्रवण-योग्य हैं। वेदमन्त्र तुम्हारा स्तोत्र और आकाश-पृथिवी वासस्थान हैं। जब तुम्हें अङ्गिराओं ने बुलाया तब तुम अन्न, बल के साथ आये।१०। (१४)

सू नोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥१४
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोह्लः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१५

हे पालनकर्त्ता ! अश्विदेवो ! पुत्र के समान भक्ति से अगस्त्य ने स्तुति की। स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए तुमने उस मेधावी 'भरद्वाज' को अन्न दिया और 'विश्पला' को स्वस्थ किया।११। हे अश्विद्वय ! 'शयु' के रक्षक

काव्यमय स्तुति से आने वाले तुमने सोने के कलशे के समान गड़े हुए 'रेभ' को दसवें दिन उभारा ।१२। हे अश्विद्वय ! तुमने वृद्ध 'च्यवन' को युवा बनाया। सूर्य की पुत्री ने शोभा से युक्त हो तुम्हारा वरण किया ।१३। हे अश्विद्वय ! तुमको पुरातन स्तोत्र से 'तुग्र' ने स्मरण किया । तुम पक्षी की गति से उड़ने वाले अश्वों द्वारा 'भुज्यु' को समुद्र से निकाल लाये ।१४। हे अश्विदेवो ! 'तुग्र-पुत्र' ने बारम्बार तुम्हारा आह्वान किया । वह समुद्र में बहता हुआ भी पीड़ा में रहता था । उसे अत्यन्त वेगवान् रथ से तुम निकाल लाये ।१५। (१५)

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यद् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६
शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ।२०।१६

हे अश्विद्वय ! 'वर्तिका' ने तुम्हारा आह्वान किया । तुमने उसे भेड़िया के मुख से निकाला । जीतने वाले रथसे पर्वत पर गये । तुमने 'विष्वा' के पुत्र को विषयुक्त अस्त्र से मार डाला ।१६। हे अश्विद्वय ! वृकी को सौ भेड़ें देने वाले ऋज्राश्व को उसके पिता ने अन्धा बना दिया । तुमने उसे नेत्रदेकर उनमें प्रकाश भर दिया ।१७। वृकीने अन्धे ऋज्राश्व के लिए प्रार्थना की । ऋजाश्व ने अल्हड़पन से अमितव्ययी होकर तरुण जारके समान एक सौ एक भेड़ें काट डाली थीं ।१८। हे अश्विद्वय ! तुम सुख देने में समर्थ हो । अङ्गहीन को अङ्ग देते हो । इसलिए विश्मला ने तुम्हे बुलाया था तब तुमने उसकी रक्षा की थी

।१९। हे अश्विद्वय ! तुमने 'शयु' के लिए बाँझ गाय को दूध से पूर्ण किया। तुमने 'पुरुमित्र' की पुत्री को 'विमद' की स्त्री बनाया ।२०। (१६)

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२१
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२
सदा कवी सुमतिमा चके वांविश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस एरयतं सुदानू ॥२४
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वतो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ।२५।१७

हे अश्विद्वय ! तुमने खेत जुतवा कर अन्न उपजा कर, वज्र से दैत्यों को मारते हुए मनुष्यों का परम उपकार किया ।२१। हे अश्विद्वय ! तुमने 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्य' के घोड़े का सिर जोड़ा तब उसने इन्द्र से प्राप्त मधु विद्या तुम्हें सिखायी। वह विद्या तुमको अधिक बल देने वाली हुई ।२२। हे अश्विद्वय मैं तुम्हारी दया-बुद्धि की याचना करता हूँ। तुम मेरे कार्यों के रक्षक हो। हमको सन्तान युक्त अनिन्द्य धन प्रदान करो ।२३। हे अश्विद्वय ! तुमने वध्रिमतीको हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया। तुमने तीन टुकड़े हुए 'श्याव' ऋषिको जोड़कर जीवित कर दिया ।२४। हे अश्विदेवो ! तुम्हारे प्राचीन वीर कर्म को पूर्वजों ने कहा। तुम्हारी स्तुति करते हुए सुन्दर और वीर पुत्रादि से युक्त होकर यज्ञ-कर्म में लगाते हैं ।२५। (१७)

सूक्त ११८

(ऋषि–कक्षीवान् देवता–अश्विनौ। छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ वां रथो अश्विना स्येनपत्वा सुमृलीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥१

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥२
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥४
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ।५।१८

हे अश्विद्वय ! वज्र के समान उड़ने वाला परम ऐश्वर्यवान् तुम्हारा रथ यहाँ आये । वह रथ वायु के समान गति वाला और अत्यन्त वेगवान् है ।१। हे अश्विद्वय ! तुम तीन काष्ठ वाले रथ से यहाँ आओ । हमारी गौओं को दूध वाली करो, घोड़ों को वेगवान् बनाओ और वीरों की उन्नति करो ।२। हे अश्विद्वय ! उतरते हुए रथ से सोम कूटने का शब्द सुनो, तुम्हें पूर्वज दारिद्रय नाश करने वाला कहते हैं ।३। हे अश्विदेवो ! द्रुत वेग वाले घोड़ों युक्त रथ में यहाँ आओ । वे आकाश में उड़ते हुए पक्षी के समान आपको यहाँ लाते हैं ।४। हे अश्विदेवो ! प्रसन्नदाता सूर्य-पुत्री हमारे रथ पर चढ़ी थी । उस रथ को आपके सहित पक्षी रूप अरुण वर्ण के अश्व यहाँ लावें ।५। (१८)

उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥६
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम् ॥८
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥९

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ।११।१६

हे उग्रकर्मा अश्विदेवो ! तुमने 'वन्दनाका उद्धार किया, 'रेभ' को बचाया, 'तुग्र पुत्र' को समुद्र से निकाला और 'च्यवन' को युवावस्था दी ।६। हे अश्विद्वय ! तुमने जलाते जाते अत्रिको सुख करने वाला अन्न दिया । कण्वकी स्तुति ग्रहणकर उनको नेत्र दिए ।७। हे अश्विदेवो ! प्रार्थी 'शयु की गौको दूध वाली बनाया, 'वर्तिका' का दुःख दूर किया, और 'विश्पला' की जाँघ ठीक की ।८।हे अश्विद्वय ! तुमने 'पेदु'को इन्द्र द्वारा प्रेरित, शत्रु-नाशक विकराल ऐश्वर्यशाली श्वेत अश्व प्रदान किया ।९। हे अश्विद्वय ! हम अपनी रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम हमारी-स्तुतियोंको स्वीकार कर धनयुक्त रथसे हमारे पास आओ ।१०। हे अश्विद्वय ! तुम बाज की चाल से हमारे पास आओ । मैं इस उषाकाल में हवि हाथ में लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ।११। (१६)

सूक्त ११९

(ऋषि कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥१
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि धर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ।५।२०

हे अश्विद्वय! मैं जीवन धारणके निमित्त तुम्हारे बुद्धिमान्, वेगवान्,उत्तम अश्व वाले, युज्य, ध्वज। युक्त, सम्पत्ति से युक्त रथ को हवियों की ओर आकर्षित करता हूँ ।१। इस रथ के चलनेपर हम ऊपर देखते हैं । सब ओर से स्तुतियाँ एकत्रित होती हैं । मैं यज्ञ हवि को सुस्वादु बनाता हूँ । ऋत्विज उसकी ओर जाते हैं । हे अश्विद्वय ! तुम्हारे रथ पर सूर्य-पुत्री चढ़ी है ।२। हे अश्विदेवो ! परस्पर ईर्ष्यालु परन्तु प्रसन्न चित्त वाले वीर युद्ध द्वारा यश प्राप्ति के लिए एकत्रित होते हैं । तब तुम्हारा रथ नीचे उतरता जाना जाता है । उसीसे तुम स्तोता वीर के लिए वरणीय धनों को लाते हो ।३। हे अश्विदेवो ! समुद्र की लहरों में समा कर नष्ट-प्राय हुए 'भुज्यु' को तुमने स्वयं जुड़ने वाले अश्वों द्वारा ले जाकर उसके घर पहुँचाया । 'दिवोदास' की जो आपने रक्षा की वह प्रसिद्ध ही है ।४। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे सुन्दर अश्वों ने स्वयं जुतकर शोभित रथ को उचित स्थान पर पहुँचाया । सूर्या ने मैत्री भाव के निमित्त आकर तुम मेरे पति हो कहकर तुम्हें वरण किया ।५। (२०)

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन धर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुगवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अमीके अभवन्नभिष्टयः ॥८
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ।१०।२१

हे अश्विद्वय ! तुमने 'रेभ' की रक्षा की । 'अत्रि' के लिए अग्निको शीतल जल से शान्त किया । 'शयु' की गौ को पयस्विनी बनाया और 'वन्दन' को दीर्घायु प्रदान की ।६। हे अश्विद्वय ! तुमने अपनी कुशलतासे 'वन्दन' के जीर्ण

हुए शरीर को रथ के समान ठीक किया। स्तुतियों से प्रसन्न हुए तुम गर्भस्थ शिशु को भी मेधावी बनाते हो। तुम्हारा कर्म यजमान की रक्षा करे।७। हे अश्विदेवो ! दूर देशमें रुदन करते हुए 'भुज्यु'के पास तुम गये। तुम्हारी दिव्य रक्षाओंने वहाँ आश्चर्यजनक कार्य किया।८।उस मधुर-मक्षिकाने मधुर आलाप से तुम्हारी स्तुति की। 'कक्षीवान्' ने सोम के आनन्द में तुम्हे पुकारा। तुमने 'दध्य' के मनको आकर्षित कर उस पर रखे घोड़े के सिर से मधु विद्या की शिक्षा ली।९। हे अश्विदेवो ! तुमने 'पेदु'के लिए संग्राम विजेता, कुशल,बहुतों द्वारा कामना योग्य शत्रुओं को वशीभूत करने में इन्द्र के तुल्य- श्वेत रङ्ग का अश्व का प्रदान किया।१०। (२१)

सूक्त १२०

(ऋषि–उशिक् पुत्रः कक्षीवान्। देवता–अश्विनौ। छन्द–गायत्री; उष्णिक्, अनुष्टुप्।)

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥१
विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वीचेतमद्य।
प्रार्चद् दयामानो युवाकुः ॥३
वि पृच्छामि पाक्या न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥४
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५।२२

हे अश्विदेवो ! तुम किस स्तुति को चाहते हो ? तुम्हें कौन प्रसन्न कर सकता है ? एक अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारी साधना किस प्रकार करे? ।१। अज्ञानी मनुष्य इन विद्वानों से ही स्तुति और पूजा के ढङ्गों का ज्ञान प्राप्त करे। इन अश्विनोकुमारों के सामने सभी अज्ञानी है। मनुष्यों पर ये शीघ्र कृपा करते

हैं ।२। हे अश्विद्वय ! हम विद्वानों का ही आह्वान करते हैं । हमको स्तुति योग्य मन्त्र बताओ । तुमको हवि देने वाला अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार करता है ।३। हे अश्विद्वय ! मैं बालक के समान देवगण से यज्ञके सम्बन्ध में जिज्ञासा करता हूँ । अधिक बलवान और भयङ्कर व्यक्ति से तुम हमारी रक्षा करो ।४। तुम्हारी स्तुति रूप वाणी 'भृगु'के समान आचरण वाले 'घोषा'के पुत्र में सुशोभित हुई, जिसके द्वारा पज्रवंशी तुम्हारा स्तवन करता है । यह वाणी अत्यन्त ज्ञान से भरी हुई हो ।५। (२२)

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ।।६
युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ।।७
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ।।८
दहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ।।९
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः तेनाहं भूरि चाकन ।।१०
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ।।११
अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जयतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ।१२।२३

हे अश्विदेवो ! तुम एक मेरी स्तुति श्रवण करो । मैंने तुम्हारी ही स्तुति की है । तुम अन्धों को नेत्रदान करते हो, मेरा भी मनोरथ पूर्ण करो ।६। हे अश्विद्वय ! तुम विस्तृत धन देते हो । हमारी रक्षा करो और पाप कर्म वाले चोरों से बचाओ ।७। हे अश्विदेवो ! तुम हमको शत्रु से पराजित न कराओ । हमारी दूध वाली गौएँ बछड़े से न बिछड़ें और अन्य स्थान को प्राप्त न हों ।८। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे उपासक मित्रोंके लाभार्थ तुमसे याचना करें । तुम हमें बल और धन से युक्त करो । गौओ और अन्नों की प्राप्ति की सामर्थ्य दो ।९। मैंने अश्विनीकुमारों से बिना घोड़ों के चलने वाले रथ को अन्न सहित

प्राप्त किया है मैं उसके द्वारा महान् ऐश्वर्य प्राप्ति की आशा करता हूँ ।१०। हे धनयुक्त रथ ! मुझे बढ़ा । यह सुखकारी रथ सोम पीने योग्य स्थानों में पहुँच कर मनुष्योंको प्राप्त होता है ।११। प्रातः कालीन स्वप्न और सम्पदाका उपभोग न करने वाले धनिक दोनों ही प्रकार से उपेक्षा के पात्र हैं। ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ।१२। (२३)

सूक्त १२१ [अठारहवाँ अनुवाक]

(ऋषि–औशिजः कक्षीवान् । देवता–विश्वेदेवा इन्द्रश्च । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

कदित्था नॄँ: पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥१
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥२
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद् वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥३
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥४
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ।५।२४

मनुष्यों के रक्षक इन्द्रदेव भक्त अङ्गिराओं की प्रार्थना कब सुनेंगे ? ये जब गृहस्थ यजमान के समस्त यज्ञकर्त्ताओं को अपने सब ओर देखेंगे तब अत्यन्त उत्साह पूर्वक शीघ्रता से प्रकट होंगें ।१। मेधावी वीर पुरुष ने आकाश को धारण किया, अन्न के निमित्त गौओं को पुष्ट किया और धन के लिए पृथिवी को खींचा । उसने अपनी महानता से उत्पन्न प्रजाओं पर कृपा की । अश्व (सूर्य) की स्त्री को पृथिवी माता बनाया ।२। उषाओं के स्वामी इन्द्र अंगिराओं के आह्वान पर-नित्य जाते थे । उन्होंने हननशील वज्र बनाया और दुपाये, चौपायों के लिए आकाश को धारण किया ।३। हे इन्द्र !

तुमने इस सोमसे पुष्ट होकर गौओंका समूह सचमुच दान किया। जब तुम्हारा त्रिकोण वज्र शत्रुओं का हनन करता हैं, तब मनुष्यों को दुःख देने वाले पाणि के द्वारों को गौओं के निकलने लिए खोल देता है।४। शीघ्र कार्य करने वाले इन्द्र के लिए माता-पिता आकाश और पृथिवी उत्पादन शक्ति युक्त बलप्रद दुग्ध लाये थे। उस समय अमृत रूप दुग्ध वाली गौ का दूध रूप धन तुमको भेंट किया था।५। (२४)

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥६
स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूनर्नविशे पश्विषे तुराय ॥७
अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत् ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥८
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥९
पुरा यत् सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित् परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ।१०।२५

तब द्रुतगामी सूर्य रूप इन्द्र उषा के समीप प्रकाशित हुए। यह शत्रु-विजयी हमको प्रसन्न करें। जैसे चमकती हुई हवियोंसे स्रुवा के द्वारा सिंचन करता हुआ सोम साधकों के हृदयों को प्राप्त होता है।६। हे इन्द्र ! विद्वानों के यज्ञ में इन्द्रियों को निग्रह करने वाला तेज चमकता है। गाड़ीवान्, पशु-रक्षक और शीघ्रता से कार्य कर वाले सभी प्राणी अपने कर्मों को करते हैं, वह तुम्हारे किरण-दान का ही प्रतिफल हैं।७। हे इन्द्र ! प्रकाश को छिपाने व?ले कूप का खण्डन करने के लिए तुम विशाल आकाशसे आठ घोड़ों को लाये। उस समय साधकों ने तुम्हारे निमित्त दूध में भीगे हुए हुए सोमका रस पाषाणों से कूटा।८। बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ने त्वष्टा द्वारा प्रयुक्त लौह-वज्र कों चर्म द्वारा आकाश से फेंका। उस समय शुष्ण को अस्त्रों से घेर कर कुत्स की रक्षा की (वज्र को फेंकते समय चमड़े के दस्ताने पहन लिये जाते

हैं।) ।६। हे वज्रिन ! सूर्य के अन्धकार में विलीन होने से पूर्व ही वृत्र की ओर वज्र छोड़ों । आकाश के ऊपर "शुष्ण" (अनावृष्टि रूपी दैत्य) का जो अभेद्य बल है, उसे भेद डालो ।१०। (२५)

अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२
त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान् रथ्यो अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सुनृतायै ॥१४
मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसद् वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन् गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ।१५।२६

हे इन्द्र ! महान् आकाश और पृथिवी तुम्हारे वृत्र-वध के कार्य से अत्यन्त पुष्ट हुए हैं । तुमने उस वाराह के समान वृत्र को अपने घोर वज्र से मारकर जल-शायी कर दिया ।११। हे इन्द्र ! तुम जिन मनुष्यों का हित करने वाले घोड़ों का पालन करते हो, उस पर चढ़ो । कवि के पुत्र 'उशन्ध' ने वृत्रनाशक वज्र तुम्हें दिया था, उसे तीक्ष्ण करो ।१२। हे इन्द्र ! तुमने सूर्यके स्वर्णिम अश्व को रोक दिया । वह रथ के पहिए को न चला सका । तुमने अताज्ञिको और राक्षसों को नब्बे नदियोंके पार फेंक दिया ।१३। हे वज्रिन ! तुम इस निकट-वर्ती दारिद्र्य रूप पापसे हमारी रक्षा करो । अन्न, यश, प्रिय एवं सत्यवाणी, रथ, अश्व आदि हमको प्रदान करो ।१४। हे बलों के कारण भूत प्रतापी, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम्हारी जो दया-बुद्धि हमारी और है वह न्यून न हो हमारे पास खूब अन्न रहे । हमारी गौएँ प्रदान करो हम तुम्हारी स्तुति करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता और तुष्टि प्राप्त करें ।१५। (२६)

अष्टमोऽध्यायः समाप्तः

प्रथमोऽष्टकः समाप्तः

द्वितीय अष्टक

(प्रथम अध्याय)

सूक्त १२२ [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि–कक्षीवान । देवता–विश्वेदेवा । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

प्र वः यान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीह्लुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरै रिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरि स्यन्तु देवाः ॥३
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दानव आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५॥१

हे द्रुतगामी मरुद्गण हम रुद्र के निमित्त अन्नरूप हविदान करते हैं । मैं उन आकाशके वीरोंके सहित उनकी स्तुति करता हूँ । वे आकाश और पृथिवी के वीरों के समान अस्त्र धारण कर शत्रुओं को निरस्त करते हैं ।१। पति के बुलाने पर पत्नी शीघ्र उपस्थित होती है वैसे ही अहोरात्र देवता हमारे प्रथम आह्वान पर पधारें । रात्रि धूम्र वर्ण के वस्त्र वाली है और उषा सूर्य की

किरणों से युक्त अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ती है ।२। दिन वाला गतिमान सूर्य हमको प्रसन्नता देने वाला हो । जल वर्षक वायु हमको आनन्द प्रद हो । इन्द्र और पर्वत हमको उत्साहित करें । विश्वेदेवा हमको धन दान करें ।३। हे ऋत्विजो ! मुझ उशिज पुत्रके लिए हवि भक्षक और स्तुत्य अश्वनीकुमारों का आह्वान करो । हे मनुष्यो ! तुम जलोंके पुत्र की पूजा करो और स्तौताओंकी मातृ भूमि पृथिवी और आकाशका भी स्तवन करो ।४। हे मनुष्यो ! मैं उशिज पुत्र कक्षीवान गर्जनशील इन्द्रका तुम्हारे लिए आह्वान करताहूँ । घोषा नामक नारी ने रोग निवृत्ति के लिए अश्विद्वय का आह्वान किया, वैसे मैं भी करता हूँ । मैं दानशील पूषा की स्तुति करता हुआ अग्नि सम्बन्धी धनों की याचना करता हूँ ।५। (१)

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाह्लसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ।१०।२

हे मित्र और वरुण ! मेरी पुकार सुनो । यज्ञ-गृह तथा चारों ओर से मेरे आह्वान पर ध्यान दो। हमारे खेतों में जल-वर्षक देव वर्षा करें ।६। हे मित्र-वरुण ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम मुझ पज्रवंशी को सौ गायें दो। सुन्दर रथ में बैठकर शीघ्र यहाँ आओ और मुझे पुष्ट करो ।७। मैं इन महान् वैभवशाली देवों की स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य इस सुन्दर धन का उपभोग करें । वे देवता अङ्गिराओं को वहुत अन्न प्रदान करते और मुझे

अश्व-रथादि युक्त धन देते हैं ।८। हे मित्र वरुण ! जो द्रोही कुटिलता पूर्वक तुम्हारे लिए सोम निष्पन्न नहीं करता, वह अपने हृदय में यक्ष्मा रोग धारण करता है। जो नियम पूर्वक रहता हुआ तुम्हारी स्तुतियाँ करता हुआ सोम तैयार करता हैं वह तुम्हारा कृपा पात्र होता है ।९। वह व्यक्ति दानवान्, बलवान्, उत्तम यश वाला, त्यागी होता हुआ शत्रुओं को परास्त करता है और विकराल मनुष्यों से भी नहीं डरता ।१०।   (२)

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरी नाद्यौत् ।१५।३

हे हर्षदाता,अविनाशी देवताओ ! स्तोमाको आह्वान सुनो । तुम आकाश में वेग से चलते हुए आकर पुकारने वाले को महत्वपूर्ण धनों को देते हो ।११। "जिस स्तोताने दस चमसोंमें रखे हुए सोम के निमित्त हमारा आह्वान किया है, उसके लिए बल धारण करेंगे" देवताओंने ऐसा कहा। इन देवताओं में यश और धन शोभा पाते हैं । ये देव हमारे यज्ञों में अन्न सेवन करें ।१२। ऋत्विज दश चमसों से रखे सोम-रूप अन्न से पुष्ट करते चलते हैं । अभीष्ट अश्व और अभीष्ट रासों वाले मनुष्य क्या स्वयं सामर्थ्य वाले हैं ? वे देव ही इन मनुष्यों को और इनके विजयशील घोड़ों को प्रेरित करते हैं ।१३। विश्वेदेवा हमको कानों में स्वर्ण ग्रीवा में मणि पहनने वाले सुशोभित पुत्र को देने की इच्छा करें । उषा काल में स्तुति और हव्य को ग्रहण करें ।१४। हे मित्र वरुण !

'मशर्शार' राजा के चार और 'आयवस' राजा के तीन बालक घोड़े मिले हैं। तुम्हारा अति सुन्दर सुशोभित रथ सूर्य के समान चमकता है।१५। (३)

सूक्त १२३

(ऋषि–दीर्घतमसः कक्षीवान्। देवता–उषा। छन्द–त्रिष्टुप्)

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१
पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भू रोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम् ॥४
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व।
पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ।५।४

दक्षिणा की ओर उषा का रथ जुड़ गया। अमर देवता इसपर चढ़ गये। रोगोंका नाश करने वाली उषा आकाश से उठ पड़ी।१। धन को जीतने वाली उषा सबसे पहिले जागी। वह युवती है, बार-बार प्रकट होती है। हमारे आह्वान पर यह सबसे पहले आती है।२। हे उत्तम प्रकार से उत्पन्न उषे! तुम मनुष्यों को प्रकाश या अन्न का भाग देती हो। दान के प्रेरक देव, सूर्योदय होने पर हमको पाप-रहित मान कर स्वीकार करें।३। नित्य प्रति उषा अपने महान रूप से प्रत्येक घर में जाती है। वह कांतिमती सदा धन देने की इच्छा करती हुई श्रेष्ठ धनों को बाँटती है।४। हे दयामयि उषे! तुम भग (सूर्य) की बहन और वरुण की पुत्री हो। तुम स्तुति की ध्वनि सुनो। पापियों को पीछे धकेल दो, उन्हें हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित रथ से पराजित करें।५। (४)

उदीरतां सूनृता उ पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः।

स्पार्हा वसूनि तमसापगूह्लाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६
अप॑न्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ।
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिशतं योजनान्यकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरर्हनिष्कृतमाचरन्ती ॥९
कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ।१०।५

हमारे मुख स्तुति गावें, बुद्धियाँ उन्मुख हों, प्रदीप्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त हों । अत्यन्त कान्ति वाली उषा अन्धकार में छिपे हुए धन को प्रकट करें ।६। एक के हटने पर दूसरा आता है । भिन्न-भिन्न रूप वाले रात और दिन गतिशील हैं । एक सब पदार्थों को छिपाता और दूसरा प्रकाशवान रथ द्वारा प्रकट करता है ।७। उषा जैसी आज हैं, कल भी वैसी ही थी । यह वरुण के स्थान में बहुत दूर तक वास करती है । यह तीसों दिन आकाश की परिक्रमा करती रहती है तथा प्रतिदिन अपने नियत स्थान को प्राप्त होती है ।८। दिन के आरम्भिक काल को जानती हुई अन्धकारसे चमकती हुई उषा उत्पन्न हुई है । यह युवती प्रतिदिन नियत स्थान पर पहुँच जाती है तथा नियम का उल्लंघन कभी नहीं करती ।९। हे देवी ! तुम कन्याके समान अपने शरीर को विकसित कर प्रकाशवान सूर्य को प्राप्त होती हो । फिर युवती की तरह कांतिमती तुम मुस्कराती हुई हृदय-देश को खोल देती हो ।१०। (५)

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत् ते अन्या उषसो नशन्त ॥११
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्चास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ।१३।६

हे उषे ! माता द्वारा उबटन कर स्वच्छ की हुई कन्या के समान रूपवती तुम अपने शरीर को दिखाती हो । हे कल्याणकारिणी ! दूर तक प्रकाशित होओ । विगत उषाएँ अब तुम्हारी कांतिको प्राप्त नहीं करेंगी ।११। अश्व,गौ से युक्त वरणीय सूर्य की किरणों से स्पर्द्धा वाली उषाएँ कल्याणकरी रूपों को धारण करती हुई चली आतीं और लौट लौटकर आती हैं।१२। हे उषा ! ऋतु की डोरीके अनुकूल चलती हुई हमें सुमति प्रदान करो । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम आकाश से भू:लोक को भर दो और हमको धन प्रदान करो ।१३। (६)

सूक्त १२४

(ऋषि—कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥१
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायातीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥४
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ।५।७

अग्नि के प्रदीप्त होने, उषा के आविर्भूत होने और सूर्य के उदय होने पर विस्तृत आकाश फैल गया । फिर सविता देव ने दुपायों और चौपायों को कर्मों में प्रेरित किया ।१। देव नियमों में अदय मनुष्यों को क्षीण करने वाली

निरन्तर विमल होती हुई उषा साकार हुई । भविष्य में आने वाली उषाओं में वह प्रथम उषा मुस्कारा रही है ।१। ज्योतिर्मय वसन धारण किये यह आकाश की पुत्री अकस्मात् सामने आगयी । यह नियमों में दृढ़ रहती हुई सब दिशाओं को जानती है और उन्हें विनष्ट नहीं होने देती ।३। जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल दिखाते हैं, नोधा अपनी प्रिय वस्तुओं को बताते हैं, वैसे ही उषा ने अपने को प्रकट किया है । गृहस्थ पत्नी सर्व प्रथम जागती और फिर सबको जगाती है, उषा भी उसी के समान बर्तती है ।४। गवादि को उत्पन्न करने वाली उषा ने अन्तरिक्ष के मध्य में ध्वजा रूप तेजको प्रकट किया । वह आकाश पृथिवी रूप माता-पिता की गोद को भरती हुई सर्वत्र फैलती है ।५। (७)

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥८
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ।१०।८

प्रत्यक्षमें महान यह उषा अपने पराये का ध्यान रखे बिना सभी को प्राप्त होती है । वह पाप रहित शरीर से बढ़ती हुई छोटे या बड़े किसी से भी नहीं हटती ।६। बिना भाई की बहिन के समान उषा पश्चिम की ओर मुख करके चलती है । धन प्राप्तिके लिए रथारूढ़ होने वालेके समान विजयिनो बनी हुई सुन्दर वस्त्र पहिन कर शोभायुक्त नारीके समान अपना स्वरूप दिखाती है ।७। रात्रि रूप बहन अपनी बड़ी बहन उषा के लिए स्थान छोड़ती हुई हटती है ।

उत्सव में जाने वाली नारियों के समान उषा सूर्य रश्मियों से अपनेको सजाती है ।८। इन सब बहन रूपिणी उषाओं में पहली दूसरेके पीछे पीछे नित्य चलती है । उन प्राचीन उषाओंके समान नवीन उषा प्रकट होकर हमकोधनों से युक्त करें ।९। हे धनवती उषे ! दानशीलों को चैतन्य करो, लोभीजन सोते रहें । तुम मनुष्यों की आयु क्षय करने वाली मनुष्योंको धनसे युक्त करो और स्तोता के लिए धन वाली होकर फैलो ।१०। (८)

अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद् युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ।।११
उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ।।१२
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे ऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्त्रिणं च शतिनं च वाजम् ।१३।९

यह युवती पूर्व दिशा से उतर रही है । इसके रथ में अरुण बैल जुते हैं । जब यह मुसकरायेगी तब इसका प्रकाश फैलेगा औप घर-घर में अग्नि प्रदीप्त होगी ।११। हे उषे ! तुम्हारे खिलते ही पक्षी भी घोंसला छोड़ देते हैं । मनुष्य भी अन्न के लिए कर्म करने लगते हैं । तुम हविदाताको अत्यन्त धन देने वाली हो ।१२। हे स्तुति-पात्र उषाओ ! मेरे स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करें । तुम वृद्धिको प्राप्त होओ और तुम्हारे रक्षा साधनों पर निर्भर रहते हुए हम असंख्य धन प्राप्त करें ।१३। (९)

सूक्त १२५

(ऋषि–कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता-स्वनयस्य दानस्तुतिः । छन्द–त्रिष्टुप् जगती)

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ।।१

सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वा मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥२
आयमद्य सुकृत प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥३
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥४
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६
मा तृणन्तो दुरितमेन आरन् मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ।७।१०

दान शील व्यक्ति प्रातःकाल होते ही धन दान करता है, विद्वान् उसे ग्रहण करते हैं। वह उस धनसे सन्तान, आयु और बल युक्त हुआ रक्षित होता है ।१। वह असंख्य गौ, घोड़े, स्वर्णसे युक्त होता है। इन्द्र उस दानीको महान सातर्थ्य देते हैं। वे प्रातः काल ही आकर धनों से उसे समृद्ध कर देते हैं ।२। मैं आज शोभन कर्म वाले यज्ञ को देखने के लिए रथ पर चढ़कर आ गया। हे यजमान तू बालकों के स्वामी इन्द्र को हर्षदायक सोम निचोड़कर पिला और स्तुतिगान से उन्हें प्रसन्न कर ।३। कल्याण-कारिणी गौ-रूप नदियाँ यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के निकट प्रवाहित होती है। यज्ञ की इच्छा करने वाले दानी को घृत की धारायें सब ओर से प्राप्त होती हैं ।४। दानी का स्वर्ग मे भी सत्कार होता है। वह देवताओं में पहुँचता है। नदियां उसके लिए जल रूप घृत प्रवाहित करती हैं। उसकी दी हुई दक्षिणा सदा बढ़ती रहती है ।५। दानियों के पास विभिन्न ऐश्वर्य हैं। दानी के लिये ही आकाश में सूय स्थित है। दानी अपने दान-रूप अमृत से ही दीर्घायु प्राप्त करता है ।६। दानी दुःख नहीं पाता। उसे पाप नहीं घेरता। नियमों में दृढ़ रतोता क्षीण नहीं होता।

उनसे भिन्न व्यक्ति ही पाप के शिकार होते हैं। सब शोक दान-हीन को ही प्राप्त होते हैं ।७। (१०)

सूक्त १२६

(ऋषि—कक्षीवान् । देवता—विद्वांसः । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

अमन्दान् त्स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ।।१
शतं राज्ञो नाघमानस्य निष्कान्छतमश्वान् प्रयतान् त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ।।२
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ।।३
चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ।।४
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः । ५
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ।।६
उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ।७।११

मैं सिन्धु नदीके तट पर वास करने वाले राजा भाव्य के लिए बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेंट करता हूँ। उस राजा ने यश की इच्छा से मेरे निमित्त सहस्र यज्ञानुष्ठान किए हैं ।१। मुझ कक्षीवान् से भेंट करते हुए राजा ने सौ स्वर्ण हार सौ सुन्दर अश्व और सौ गायें ग्रहण की। उस राजा का यश आकाश तक फैल रहा है ।२। स्वनय के दिये हुए विभिन्न वर्णों के अश्व और दशरथ मुझे प्राप्त हुए। साठ हजार गोयें भी मिली, जिन्हें मुझ कक्षीवान् ने ग्रहण कर अपने पिता को भेंट कर दिया ।३। हजार गौओं की कतार के

आगे दश रथ चले आए। स्वर्णभूषणों से युक्त अश्वों को कक्षीवान् के पुत्र मिलने लगे ।४। हे पज्रवंशियो ! मैं प्रथम दान के अनुसार तुम्हारे लिये तीन जुते हुये रथ और साठ उत्तम गायें लाया हूँ। कुटुम्ब वाले पज्रवंशी लोग शकट से युक्त होकर यश के इच्छुक हों ।५। मेरी पत्नी सहस्वामिनी के रूपसे मुझ (स्यनज राजा) को सैकड़ों प्रकार के भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करती है। वह मेरी अत्यन्त प्रेम रखने वाली सहधर्मिणी है ।६। (पत्नी कहती है) मुझे पास आकर स्पर्श करो। मुझेअल्प रोम वाली न समझो। मैं गाँधारी के समान रोम वाली अवयवों से पूर्ण हूं। (पत्नी कहती है) हे प्रियतम ! तू मेरे समस्त अङ्गों का निरीक्षण कर, मेरे गुण अवगुण पर पूर्ण रूप से विचार कर। तुम मेरे अङ्गों, गुणों और गृह कार्यों को तनिक भी हानि कारक न पावोगे ।७। (११)

सूक्त १२७

(ऋषि—परुच्छेप:। देवता—अग्नि:। छन्द—अत्यष्टि:, अतिधृति:।)

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसु सूनुं
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥१
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः।
वीलु चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम्।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३

दृह्ला चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे
तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद् वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः
सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीलु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ।५।१२

मैं सर्व उत्पन्न प्राणियोंके ज्ञाता, बलके पुत्र अग्निको देवताओंका आह्वान करने वाला मानता हूँ। वे यज्ञ प्रवर्तक घृत को अपनी ज्वालाओं से अनुसरण कर देवगण की कृपाओं को प्राप्त कराते है ।१। हे मेधावी प्रदोप्तिमान् अग्ने ! अङ्गिराओं में तुम सर्व श्रेष्ठ को स्तोत्रों से आहूत करते हैं। वे तुम्हारे ज्वाला रूप बाल हैं। तुम अभीष्टों की वर्षा करते हो और प्रदीप्त हुए आकाशकी ओर जाते हो। तुमको ये मनुष्य अपनी रक्षा के लिए धारण करते हैं ।२। वे प्रचण्ड रूपसे दहकते हुए अग्नि शत्रुओं का हनन करते हैं। अत्यन्त दृढ़भी उन के स्पर्श से छिन्न-भिन्न हो जाता है। वे तेजस्वी धनुर्धारी के समान डटे रहते हैं, कभी पीठ नहीं दिखाते ।३। अत्यन्त दृढ़भी इनके वशमें रहते हैं। हविदाता अपनी रक्षा के लिए हवि देते हैं। ये उस हव्य को वृक्ष की तरह खा जाते हैं। ये अन्नों को अपने बल से पकाते और दृढ़ द्रव्यों को नष्ट करने में समर्थ हैं ।४। हम इस अग्नि के लिए अन्न धारण करते हैं। ये अग्नि रात्रि में अधिक दर्शनीय होते हैं, ये दिनमें पूर्ण तेजस्विता प्राप्त नहीं करते। पुत्र के लिए पिता की शरण के समान आश्रय देते हैं। भक्त या अभक्त सभी का अन्न खाते हैं। हवि भक्षण करने वाले ये कभी वृद्ध नहीं होते ।५। (१२)

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणि-
रप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।

आदद्धव्यान्यादर्दिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां
नरः शुभे न पन्थाम् ॥६
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त
भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७
विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं
दंपतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे
देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥९
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये
स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१०
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः
सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११॥१३

मरुतों के समान यह अग्नि उर्वरा और मरुभूमि में यज्ञ योग्य है। वह यज्ञोंमें ध्वज रूप हुए हव्य भक्षण करते हैं। अग्नि के उत्तम मार्गका अनुसरण

करते हुए सब इनकी पूजा करें ।६। भृगुओं ने मुख ऊँचा कर जब इनका यश गान किया और अग्नि के समीप जाकर हवियाँ दी, तब धनों के स्वामी अग्नि ने तृप्त होने पर प्रसन्नता प्रकट की ।७। हे प्रजाओं के स्वामी, पालक अग्ने ! तुम्हें धारण करनेके लिए आहूत करते हैं । तुम मनुष्यों के अतिथि हो । पिता के समान तुमसे ये मरणधर्मा मनुष्य अमरत्व प्राप्त करते हैं । तुम देवताओं को हवि रूप बल पहुँचाते हो ।८। हे अग्ने ! तुम देवार्चन के निमित्त प्रकट होते हो । तुम्हारा हर्ष ही बल है । ज्ञान से ही यशस्वी हो । हे जरारहित ! मनुष्य इसलिए तुम्हारी सेवा करते हैं ।९। उपासको ! बल से विजेता, प्रातःकाल में जागने वाले उपकारी अग्नि के लिए तुम्हारी वाणी स्तोत्र पाठ करे । बंदीजन जैसे स्तुति करते हैं वैसे ही यजमान हवियों से युक्त हुआ अग्नि का स्तवन करता है ।१०। हे अग्ने ! देवताओं के साथी, तुम हमारे पास रहते हुए हित-कारी धनों को लाओ । इस पृथिवीमें भोगों का नपभोग करने की हमें सामर्थ्य दो अपने स्तोताओं को बल से युक्त करो ।११। (१३)

सूक्त १२८

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—अग्निः । छन्द—अत्यष्टिः)

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ
उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिलस्पदे परिवीत इलस्पदे ॥१
तं यज्ञसाधमपि वातायामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता
देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥२
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्
दधद् रेतः कनिक्रदत् ।

शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥३
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति
क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥४
क्रत्वा यदस्य तविषीपु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां
न भोज्येषिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ।५।१४

ये पूजनीय होता अग्नि मनुष्यों द्वारा अरणियों से उत्पन्न हुए साधकों की सब बात सुनते हैं । वे यशस्वी को धनके समान हैं कभी पीड़ितन होने वाले होता रूप से पूजा स्थान में विराजते हैं ।१। हम अत्यन्त विनम्र हुए यज्ञानुष्ठान में घृतादि युक्त हवि भेंट करते हुए अग्निका स्तवन करते हैं । वे हमारी हवियों को ग्रहण कर बढेंगे । जैसे मातरिश्वा ने अग्नि को दूर से लाकर वनके लिये प्रदीप्त किया, वैसे हमारे यज्ञ स्नान में अग्नि दूर से आकर प्रदीप्त हों ।२। सदा स्तुत्य हवियुक्त अभीष्टदाता, समर्थ अग्नि वेदीके चारों ओर शब्द करते हुए प्राप्त होते हैं । वे स्तोत्र ग्रहण करते हुए उत्तम यज्ञं में तुरन्त प्रदीप्त होते हैं । पुरोहित रूप अग्नि यजमान के घर में अविनाशी यज्ञ के ज्ञाता है वे कर्मों को बल देने की इच्छा से हवि ग्रहण करते हैं । वे अतिथि रूप से घृत भक्षण करने वाले हविदाता को अभीष्ट देते हैं ।४। जैसे मरुद्गण भक्ष्य द्रव्यको एकत्र करते हैं, वैसे हीं मनुष्य भक्ष्य पदार्थ को एकत्र कर अग्नि को हवि देते हैं,तब वह दान की प्रेरणा करते हुए हविदाताकी पाप कर्म से वचाते हैं ।५। (१४)

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न
शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।

विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६
स मानुषे वृजने शंतमो हितो ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः
प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिला कृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥७
अग्निं होतारमीलते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे
हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः।८।१५

अग्नि रूप वे सब स्वामी दाँए हाथ में धन लेकर परोपकारार्थ छोड़ते हैं। वे स्तोताकी हवियाँ देवताओं को पहुँचाते है। सुकर्म वालों को उत्तम धन भण्डारों के द्वार खोल देते हैं।६। वे अग्नि वेदी में राजा के समान स्थापित किये गये हैं। वे मनुष्योंकी स्तुतियों के साथ दी गई हवियो के स्वामी हैं। वह हमें वरुणादि देवगण के कोप से बचाते हैं।७। धन-धारक, अत्यन्त चैतन्य, प्रिय होता अग्नि की यजमान पूजा करते हैं। सबके प्राण रूप धनेश यजन योग्य मेधावी अग्नि के समीप सब देवगण धन की कामना वाले की रक्षा के लिए पहुँचते हैं।८। (१५)

सूक्त १२९

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—इन्द्रः। छन्द—अष्टिः, शक्वरी।)

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये ऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि
प्रानवद्य नयसि।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्
दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः।

य: शूरै: स्व: सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद् यावीररुं शूर मर्त्यं
परिवृणक्षि मर्त्यम्।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथ: सुमृलीकाय सप्रथ: ॥३

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं
वाजेषु प्रासहं युजम्।
अस्माकं ब्रह्मोतये ऽवा पृत्सुषु कासु चित्।
नहि त्वा शत्रु: स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४

नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्
तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभि:।
नेषि णो यथा पुराऽनेना: शूर मन्यसे।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ।५।१६

हे बली इन्द्र! तुम अपने रुके हुए रथको यज्ञमें पहुँचानेके लिए बढ़ाते हो। तुम हमारी रक्षा करो, बलदो और हमारी वाणीको ज्ञानियोंकी वाणीके समान सुनो ।१।हे इन्द्र! तुम संग्राममें आहूत होनेपर बल देनेमें समर्थ हो । बुद्धिमानी के साथ यज्ञकी प्रेरणा करते हो । युद्धके लिए बेगवान् घोड़ोको बुलानेके समान ऐश्वर्यवान् साधक तुम्हारी साधना करते हैं ।२। हे वीर ! तुम त्वचा रूप मेघ को तोड़ते हो । विरोधियों के पास नहीं जाते । मैं तुम्हारे लिए आकाश, रुद्र और वरुण के लिए उस प्रसिद्ध स्तोत्र को कहता हूँ ।३। मनुष्यो ! तुम्हारी रक्षा के लिए सब के प्राण इन्द्र से याचना करते हैं। इन्द्र ! सव युद्धों में हमारी रक्षा करो। तुम्हारा बल उल्लङ्घन योग्य नहीं है। तुम सब शत्रु-समूह पर छा जाते हो ।४। हे उग्र कर्म वाले इन्द्र ! शत्रु के मिथ्याभिमान को

भङ्ग करो। अपने रक्षा-साधनों से उचित मार्ग पर से चलो। तुम पाप-रहित हो, अग्रणी होकर मनुष्यों के पाप दूर करते हो। तुम हमारे समीप ठहरो।५।

(१६)

प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति
रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवार्य
रण्वं सन्तं सुवीर्यम्।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥७
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां
दरीमन् दुर्मतीनाम्।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा
पुरो याह्यरक्षसा।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥९
त्वं न इन्द्र रायां तरूषसोग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे
महे मित्रं नावसे।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१०
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधो ऽवयाता सदमिद् दुर्मतीनां
देवः सन् दुर्मतीनाम्।

हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद् वसो
रक्षोहणं त्वा जीजनद् वसो ।११।१७

मैं सोम से प्रार्थना करूँ, जो इन्द्र को बुलाने योग्य स्तोत्र की प्रेरणा देते हैं । वह निदंक की कुमति को हमसे दूर करें । पापका साधक नष्ट होकर गिरे ।६। हे इन्द्र ! हम ध्यानपूर्वक वीरतायुक्त, रमणीय, रक्षा वाले धन को माँगते हैं । सुन्दर स्तोत्रों और हवियोंसे प्रसन्न करतेहैं । सत्य हार्दिक आह्वान करते हुए तुम्हें पूजते हैं।७। मनुष्यो ! तुम्हारे और हमारे रक्षक इन्द्र बुरी-बुद्धि वालों को दूर करें । उन्हें चीर डालें । जो वर्छी हमारे लिए दैत्यों ने चलाई है, वह लौटकर उन्हीं को मारे ।८। हे इन्द्र ! तुम धन के लिए हमको प्राप्त होओ । तुम दूरहो तो भी हमारे साथ रहो । दूर या पास जहाँ कहीं हो, हमारी रक्षा करो ।६। हे अत्यन्त बली, पालकं, अमर, इन्द्र ! तुम हमको धन सहित प्राप्त होओ । यश के लिए बल दो । हमारे द्रोहियों को पीड़ित करो ।१०। हे स्तुत्य इन्द्र ! पापियों का पतन करने वाले, दैत्यों के नाशक, स्तोताओं के रक्षक, पीड़ाओं से हमारी रक्षा करो । हे धनेश, हे वज्रिन् ! इसीलिए तुम प्रकट हुए हो ।११। (१७)

सूक्त १३०

(परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अष्टिः, त्रिष्टुप् ।)

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ।।१
पिवा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं
न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ।।२

आविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधि
वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मिनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ।३।
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव
तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवेभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ।४।
त्वं वृथा नद्य सर्तवे ऽच्छा समुद्रसृजो
रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ।५।१८

जैसे अग्नि यज्ञ को प्राप्त होते हैं, वैसे ही हे इन्द्र ! तुम दूर हो तो भी हमको प्राप्त होओ । हम सोम निचोड़कर बलके लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं। पुत्र द्वारा पिता को बुलाने के समान हम तुम्हें बुलाते हैं ।१। हे इन्द्र ! पत्थर से निचोड़े गए इस सोम का पान करो । यह तुम्हारे बल कीर्ति और पुष्टि का वर्द्धक हो । तुम्हारे अश्व सूर्य के अश्वों के समान यहाँ आवें ।२। अङ्गिराओं में प्रधान इन्द्र ने पवन की गुफा में छिपे हुए खजाने को ढूँढकर पाया । उन्होंने गौओं के गोष्ठ के समान उसे खोल दिया ।३। इन्द्र ने वज्र को खूब पैनाया । हे इन्द्र ! तुम बल से युक्त होकर उस वृत्र को बढ़ई के समान काटते हो ।४। हे इन्द्र ! तुमने नदियों को समुद्र की ओर जाने के लिए रथोंके समान छोड़ा है । इन नदियों के नाश न होने वाले धनका सम्पादन किया है, जैसे गौएँ मनुष्यो को पुष्टि प्रद धन देती हैं ।५। (१८)

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः
स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।

अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ।६।
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि
दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ।७।
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु ।
शतमूतिराराजिषु स्वर्मीह्लेष्वाजिषु ।
मनवे प्रासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ।८।
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो
मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत् परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ।९।
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्त्तः पातुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ।१०।१९

हे इन्द्र ! धनेच्छुक मनुष्यों ने तुम्हारे लिए स्तोत्र रचे हैं । उसी प्रकार जैसे चतुर कारीगर रथ बनाता है, वे तुम्हारा श्रृंङ्गार करते है, तुम्हारे अश्व को सजाते हैं । धन की प्राप्ति के लिए वह सब करते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुमने "पुरु" और "दिवोदास' के लिए शत्रु के दुर्गों को तोड़ा । अपने तेजसे "अतिथिग्व" को महान् धन दिया और "शम्बर" को पर्वत से गिरा दिया दिया ।७। इन्द्र ने अपने साधक की अत्यन्त रक्षा की, व्रतहीनों को दण्ड दिया वे दस्युओं और लालचियों को नष्ट करने वाले हैं।८। सूर्य के उदय होते ही प्रकाश पुञ्ज बढ़ा । उसकी लाली ने पापियों की वाणी छीन ली । हे इन्द्र! तुम स्नेहवश दूर से रक्षा के लिए यहाँ आये । तुम शीघ्रता से सब धनों को देते हो ।९। शत्रु-दुर्ग-भंजक इन्द्र ! तुम नये स्तोत्रों अनुष्ठानों और सहायताओं से हमारी रक्षा

करो । दिवोदास के वंशजों की स्तुति से दिनसे आकाशके बढ़ने के समान वृद्धि को प्राप्त होओ ।१०। (१९)

सूक्त १३१

(ऋषि-परुच्छेप: । देवता-इन्द्रः । छन्द-अष्टिः)

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही
पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि भानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्
स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य
निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् । ३
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ
सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः ।

यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयस ॥६
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं
वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ।७।२०

इन्द्र के लिए आकाश नत हुआ, पृथिवी भुक गई, यजमान बहुत अन्न के लिए झुका है । सभी देवताओं ने एक मत होकर इन्द्र को अग्रगण्य बनाया ! मनुष्यों द्वारा दी गई गोमयुक्त आहुतियाँ इन्द्रको प्राप्त हों ।१। हे इन्द्र ! सभी सोमयागों में यजमान सभीके प्रतिविधि रूप तुम्हें हव्य देते हैं । नाव के समान पार लगाने वाले इन्द्र को यज्ञ द्वारा चैतन्य करते हुए सेना के आगे स्थापित करते हैं । मनुष्य स्तोत्रोंद्वारा उसका चिन्तन करते हैं ।२।हे इन्द्र ! रक्षा चाहने वाले गृहस्थ अपनी पत्नी सहित गौओं की प्राप्ति के लिए तुम्हारे चारों ओर इकट्ठे होते हैं । उनके यज्ञादि कर्मोंसे अभीष्ट फतु प्राप्य होता है । तुमने अपने साथ रहने वाले वज्रको प्रकट किया है ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम को मनुष्य जानते हैं । तुमने अयाज्ञिकों के गढ़ों को नष्ट किया है । तुमने उन शत्रुओं को दण्डित किया है । तुमने विशाल पृथिवी और जलोंको जीता है । । हे इन्द्र! सोमसे आनन्द प्राप्तकर अभीष्ट देने वाले होओ । अपने साधकोंके रक्षक बनो । यजमान के लिए तुम युद्धों में प्रवृत्त होते हो । सभी तुमसे अन्न प्राप्ति की इच्छा करते हैं ।५। हे इन्द्र ! हमारे प्रातःकालीन यज्ञ में हमारी हवियाँ ग्रहण करो और हमारी स्तुतियों पर ध्यान ध्यान दो । हे वज्रिन् ! तुम शत्रुओं के हननकर्त्ता हो । मुझ असाधारण बुद्धि वाले के सुन्दर स्तोत्र को सुनो ।६। हे इन्द्र ! तुम हमारी रक्षा के लिए बढ़ते हुए उस शत्रु का हनन करो जो हमको पीड़ित करता है । हे वीर ! तुम्हारे वज्र की मार से वे दुष्ट बुद्धि वाले पीड़क दूर भाग जावें ।७।

सूक्त १३२

(ऋषि- परुच्छेप: । देवता–इन्द्रापर्वतौ । छन्द अष्टि:,)

त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोता:
सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यत: ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुध: स्वस्मिन्नञ्जसि
क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्य: ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातय: ॥२
तत् तु प्रय: प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे
वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद् वोचेरध द्वितान्त: पश्यन्ति रश्मिभि: ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषण: ॥
नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप
व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्य: समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥४
सं यज्जनान् क्रतुभि: शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त
श्रवस्यव: प्र यक्षन्त श्रवस्यव: ।
तस्मा आयु: प्रजावदिद् बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतय: ॥५
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो न: पृतन्यादप
तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वत: ।६।२१

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से सम्पन्न होकर शत्रुओं को पराजित करें, उनको अधिक पीड़ा दें। सोम-निष्पन्नकर्त्ता को उत्साहित करो जिससे हम युद्ध में खूब धनोंको जीतें ।१। इन्द्र ने प्रातःकाल जागकर आह्वान करने वाले यजमान के लिए प्रकट होकर शत्रुओं का हनन किया है। उस इन्द्र को सर्वज्ञ मानकर स्तुति करो। हे इन्द्र ! तुम्हारा दिया ऐश्वर्य हमारा कल्याण करे।२। ये पुष्टिकारक हवियाँ तुम्हारे लिए हैं। तुम्हारे पूर्वजों ने यज्ञ द्वारा शरीर क्षय को बल से रोक दिया। वे इन्द्र यजमानों के लिए गौओं के देनेकी इच्छा वाले माने गये हैं।३। हे इन्द्र ! पूर्व के समान तुम्हारे वर्तमान पराक्रम का भी यश गान करना चाहिए। तुमने अङ्गिराओं को गौएँ जीत कर दीं। तुम युद्ध में विजय प्राप्त कराने वाले होओ। यज्ञ विरोधियों को सोम निष्पन्नकर्त्ताके वश में करो।४। इन्द्र मनुष्यों को विवेक बुद्धि देते हैं। यज्ञ की इच्छा से शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं। यजमान यज्ञ करते हुए तुमसे धन मागते हैं। उनके स्तोत्र सब देवताओं को लक्ष्य करते हुए इन्द्र में ही व्याप्त होते हैं।५। हे इन्द्र ! हमसे लड़नेकी इच्छा करने वालेको तुम आगे बढ़कर हटाओ। तुम्हारा वज्र दूर से भी शत्रु को नष्ट करने में समर्थ है। इन्द्र ! शत्रुओं को सब ओर से चीर डालो।६।

(२१)

सूक्त १३३

(ऋषि–परुच्छेपः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् गायत्री, धृतिः, अष्टिः)

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृह्ला अशेरन् ॥१
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥३

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ।।४
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ।।५
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ
अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ।।६
वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ।७।२२

मैं आकाश और पृथिवी को यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ। इन्द्र के द्रोहियों और उनकी भूमि को जलाता हूँ। उस स्थान पर शत्रु मारे गये और खड्डोंमें में डाल दिए ।१। हे वज्रिन्! शत्रु-सेनाओं को अपने हाथी के पाँव से कुचल डालो ।२। हे इन्द्र! उनकी शक्ति का नाश करो और कुचल कर गहरे खड्डों में डाल दो ।३। हे इन्द्र! तुमने जिनकी त्रिगुणित पचास (डेढ़ सौ) सेनाओं को नष्टकर डाला, तुम्हारा यह कर्म महान् हैं। तुम्हारे लिए यह कार्य बहुत छोटा है ।४। हे इन्द्र! क्रोध से लाल हुए उन दुष्ट पिशाचों का नाश करो। सब राक्षसों को समाप्त कर दो ।५। हे वज्रिन्! तुम उन विकराल दैत्यों को विदीर्ण करो। हमारी प्रार्थना सुनो! प्रदीप्त अग्नि से डर कर जैसे कोई शोक करे वैसे तुम्हारे डर से शत्रु शोक करें। तुम शत्रुओं से युद्ध करने को जाते हो। तुम वीर किसीसे न होने वाले तथा यजमानों को पीड़ित नहीं होने देते हो ।६। सोम निष्पन्नकर्त्ता यजमान, गृह स्वामी देवताओं के शत्रुओं को भगाता है और अजेय होकर सहस्रों धनोंकी इच्छा करताहै। इन्द्र उसे पर्याप्त धन देते हैं ।७।

सूक्त १३४ (बीसवाँ अनुवाक)

(ऋषि–परुच्छेपः । देवता–वायुः । छन्द–अष्टिः, अत्यष्टिः ।)

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह
पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो ऽस्मत् क्राणासः सुकृता
अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि
वोह्लवे वहिष्ठा धुरि वोह्लवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु
रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त
भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद् भुवनात् पासि धर्मणाऽसुर्यात्
पासि धर्मणा ॥५
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि
सुतानां पीतिमर्हसि ।

उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत् ते घेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ६।२३

हे वायो ! सोम-पानके लिए वेगवान् अश्व तुम्हें प्रथम यहाँ लावें । हमारी स्तुति रूपवाणी उन्नत हुई तुम्हारे गुणोंको जानती है,वह तुम्हारे अनुकूल हो । तुम जुते हुए रथ से युक्त हुए हविदाता को प्राप्त होओ ।१। हे वायो ! हमारे प्रभावशाली, सुपुष्ट सोम, तुम्हें पुष्ट करें । दूध के प्रभाव से युक्त हुए इन सोमों के प्रति चलने के लिए तुम्हारे अश्व बल प्राप्त करें । स्तोताओं की स्तुतियोंके प्रति बल से आवें ।२। चलने के लिए लाल रङ्गके घोड़ों को वायु अपने रथ में जोड़ते हैं । वे रथ की धुरी में सुनहरे द्रुतगामी अश्वों को जोड़कर प्रेमी द्वारा सोती हुई स्त्री को जगाने के समान पृथिवी को जगाते हैं । वे यश के निमित्त उषा को स्थित करते हैं ।३। हे वायो चमकती हुई उषाएँ दूर देशस्थ घरों में तुम्हारे लिए किरण रूप वस्त्रो की फैलाती हैं । विविध रङ्ग वाली किरणोंको वढ़ाती हैं । अमृतरूप दूध वाली गोंएँ तुम्हारे लिए सब धनों का दोहन करती हैं । तुमने वर्षा के लिए मरुतों को प्रकट किया है ।४। हे वायो ! ये चमकते हुए पुष्टिकर सोंम तुम्हारे लिए प्राप्त होते हैं । शत्रु के भयसे क्षीण होता हुआ यजमान तुम्हारा शीघ्रतासे आह्वान करता है । तुम धर्म द्वारा लोकोंके रक्षक हो ओर राक्षसों से उपासको को बचाते हों ।५। हे वायो! हमारे द्वारा निचोड़े इन सोमों को पीने में तुम समर्थ हो । तुम्हारे लिए ये अत्यन्त दूध देने वाली गौएँ सोम में मिलाने के लिए दूध और घृत को दोहन करती हैं ।६।   (२३)

सूक्त १३५

(ऋषि–परुच्छेपः । देवता–वायुः । छन्द–अष्टिः, अत्यष्टिः ।)

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते
शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥१

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि
कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥२
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि
वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥३
आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि
वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥४
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त
वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ।५।२४

हे वायो ! हवि सेवन के लिए बिछी हुई कुशाको प्राप्त होओ । ऋत्विजों ने तुम्हारे सेवनके लिए पहले से ही सोम तैयार रखा है । निष्पन्न सोम तुमको बल देगा और पुष्ट करेगा।१। हेवायो ! यह सिद्धक्रिया सोम बल धारण करता हुआ कलशकी ओर जाता है । यह सोम हवियुक्त किया जाताहै । हम कामना करने वालों की ओर तुम अपने घोड़ों को प्रेरित करो ।२। वायो ! सैकड़ों-हजारों के द्वारा हमारे यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करो यह तुम्हारा भाग सूर्य के समान तेज वाला है । अध्वर्युओं ने तुम्हारे लिये यह सोम अर्पण किए हैं ।३। हे वायो ! सुन्दर हवि रूप अन्नों की ओर तुम्हारा रथ रक्षार्थ चले । तुत मधुर सोम का पान करो तुम उज्ज्वल धनों से युक्त हो ! इन्द्र के साथ यहाँ

आओ ।४। हे इन्द्र और वायु ! हमारी स्तुतियाँ तुम्हें यज्ञ की ओर आकर्षित करें। ऋत्विजों ने सोम छानकर रखा है, उसे यहाँ आकर पीओ और हमारी रक्षा करो ।५। (२४)

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत
वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥६
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं
गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुया याथो
अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥७
अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवो
ऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो
नाप दस्यन्ति धेनवः ॥८
इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसो ऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो
महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ।९।२५

हे वायो ! अध्वर्युओं द्वारा प्राप्त हुए निष्पन्न सोम प्रस्तुत हैं । ये तुम दोनों के लिए ऊनी वस्त्र में छाने गये हैं ।६। हे वायो ! सब सोते हुओं को जगाते हुए आओ । सोम कूटने के पाषाण के शब्द से आकर्षित होओ ।७। हे इन्द्र और वायो ! तुम इस मधुर सोम की आहुति ग्रहण करो । इस पीपल रूप सोम को अजेय व्यक्ति पीते हैं । हमारी गौएँ क्षीण

न हो हमारा अन्न परिपक्व हो जाय ।८। ये तुम्हारे पराक्रमी बैल नदी के प्रवाह में दौड़ते हैं। ये मरुस्थल में भी नष्ट नहीं होते। ये सूर्य रश्मियों के समान अबाध गति वाले हैं ।९। (२५)

सूक्त १३६

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—अत्यष्टिः, त्रिष्टुप् ।)

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृलद्भ्यां
स्वादिष्ठं मृलयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥१
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त
रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः ॥२
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे
जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ॥३
अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो
देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत् विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥४
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो
दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।

उक्थैर्य एनो: परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥५
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीह्लुषे
सुमृलीकाय मीह्लुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्त: प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भि: ।
अग्निर्मित्रो वरुण: शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ।७।२६

मनुष्यो ! नमस्कार पूर्वक मित्र और वरुण के लिये सोम सम्पादन करो। वे घृतयुक्त हवि योग्य यज्ञों में स्तुति किये जाते है और उनका देवत्व कभी नहीं घटता ।१। सूर्य का विस्तृत मार्ग नियम रूप डोरीपर थमा हुआ है। मित्र अर्यमा और वरुण का स्थान अत्यन्त उज्ज्वल है । वे यहाँ से महान बल प्रदान करते हैं ।२। पृथिवी की धारक और आकाश से युक्त अदिति की, मित्र-वरुण नित्य सेवा करते हैं। ये दान के स्वामी आदित्य तेजस्वी हैं। मित्र, वरुण और अर्यमा तीनों ही मनुष्यों को प्रेरणा देते हैं ।३। यह सोम मित्र और वरुण को सुख दे । देवता उससे आनन्दित हों, सभी देवता समान इच्छा से इसका सेवन करें । वह हमारी इच्छानुसार ही कार्य करें ।४। मित्र वरुण की सेवा करने वाले को वे शत्रु और पापोंसे बचाते हैं। हविदाता की रक्षा करते है। जो इनके नियमोंको मानता हुआ स्तुति करताहै उसकी अर्यमा रक्षा करते हैं ।५। महान आकाश, भूमि, मित्र और वरुण को नमस्कार करता हूँ। हम इन्द्र, अग्नि, अर्यमा भग की निकट से स्तुति करें और पुत्र आदि से युक्त हुए रक्षाओं को प्राप्त करें ।६। देवताओं की रक्षा से हमारी ओर आकर्षित हुए और उनके साक्षी मरुतों की प्रशंसा करें । अग्नि, मित्र, वरुण हमारे शरण दाता हैं । उनसे हम अभीष्ट धन प्राप्त करें ।७। (२६)

॥ प्रथमो अध्याय: समाप्त: ॥

सूक्त १३७

(ऋषि-परुच्छेपः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-शक्वरी)

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥२
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ।३।१

हे मित्रावरुण ! हमने सोम निष्पन्न कर लिया है। तुम दोनों यहाँ आकर इस दूध मिले हुए पुष्टिकारक सोम का पान करो और हमारे रक्षक, होओ।१। हे मित्र वरुण ! यह सोम दधियुक्त है। तुम दोनों उषा काल होतेही आओ। तुम दोनों के लिए इस यज्ञ-कर्म में सोम निष्पन्न किया गया है।२। हे मित्र वरुण ! तुम दोनों के लिए मनुष्यों ने सोमका गौं दुग्ध के समान दोहन किया है। तुम हमारे रक्षक सोम पीने के लिए हमारी ओर आओ। हमने तुम्हारे पीने के लिए यह सोम निष्पन्न किया है।३। (१)

सूक्त १३८

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—पूषा । छन्द—अत्यष्टिः)

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते
स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।

विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥१
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध
उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२
यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर
इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेलमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥३
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो ऽहेलमानो ररिवाँ अजाश्व
श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ।४।२

पूषा (सूर्य) का अत्यन्त महत्व है । उसका बल कम नहीं होता । उस का स्तोत्र सदा बढ़ाने वाला है । मैं कल्याणकी इच्छासे उसे नमस्कार करता हूँ उसने सब के मनों को आकर्षित कर लिया है ।१ हे पूषा ! शीघ्रगामी मनुष्य को मार्ग में उचित दिशा बतानेके समान तुम्हें स्तोत्र प्रेरणा करता हूँ । जिससे तुम हमारे शत्रुओंको दूर करो । मैं तुम्हारा आह्वान करता हूं । मुझे युद्धोंमें बलवान बनाओ ।२। हे पूषन् ! तुम्हारी स्तुति में लगे हुए व्यक्ति ही तुम्हारी रक्षाओं को प्राप्त कर सकें । हम ज्ञान से सम्पन्न हुए नये स्तोत्र द्वारा तुमसे असंख्य धन की याचना करते हैं । तुम हम पर क्रोध न करो । प्रत्येक युद्ध में हमारे सहायक बनो ।३। हे अजाश्व पूषन् ! तुम दान के लिए क्रोध रहित हुए यहाँ आओ । हम यशकी कामना करते हैं । हम तुम्हारा अनादर नहीं करते । आपके मित्र-भाव की उपेक्षा नहीं करते । तुम अद्भुत कर्म वाले हमारे स्तोत्रों पर ध्यान दो ।४। (२)

सूक्त १३९

(ऋषि-परुच्छेप: । देवता-विश्वेदेवा आदि । छन्द-अष्टि बृहती, त्रिष्टुप्)

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह
इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धातय: ॥१
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना
दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभि: सोमस्य स्वेभिरक्षभि: ॥२
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो
युवां हव्याभ्यायव: ।
युवोर्विश्वा अधि श्रिय: पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥३
अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो
दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजो ऽञ्जसा शासता रज: ॥४
शचीभिर्न: शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चनास्मद् राति: कदा चन ।५।३

मैंने पहले अग्नि को धारण किया । अब दिव्य मरुद्गण को वरण करता हूं । इन्द्र और वायु का वरण करता हूं मेरी स्तुति सूर्य रूप को प्राप्त हो ।१। हे मित्र वरुण ! तुम अपने तेजसे असत्य का निवारण करने वाले हो । हमने तुम्हारे स्थानमें स्वर्णिम तेजके दर्शन किये हैं ।२। हे अश्वि देवो ! साधक तुम्हारी स्तुति करते हैं,हवियाँ देते हैं। सबोधन और अन्न तुम्हारे आश्रितहै ।

तुम्हारे रथ के पहिये की धारा घृत की वर्षा करती है।३। तेजस्वी अश्विनी कुमारो ! तुम ही आकाश मार्गों को प्रशस्त करते और यज्ञों के लिये अश्व जोतते हो। तुम विकराल कर्म वाले हो। तुम सुनहरी रथ की पीठ पर बैठे हुए सीधे मार्ग से चलते हो। तुम अन्तरिक्ष के स्वामी हो।४। हे बलैश्वर्य शाली अश्विद्वय ! दिन में और रात में भी धन दो। तुम्हारा दिया हुआ धन कभी कम न हो और हमारा दान भी बढ़े।५। (३)

वृषन्निन्द्र पृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास
उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृलीको न आ गहि ॥६
ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीलितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यः
राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥७
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत
जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषुः।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो
अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥९
होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः
पुरुवारेभिरुक्षभिः।

जगृम्भा दूरआदिशं श्लोकमद्रे रध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१०
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ।११।४

हे इन्द्र ! वीरों के लिए पेय पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम की बूंदे यहाँ उपस्थित हैं । ये तुम्हें विभिन्न धनों के लिये तृप्त करें । हे स्तुतियों को प्राप्त करने वाले, तुम हमारी ओर आकर हम पर कृपा करो।६। हे अग्नि ! हमारी स्तुतियोंपर ध्यान दो देवगणके सामने निवेदन करो । हे देवगण ! जब तुमने गौएं जीतकर अङ्गिराओं को दीं तब अर्यमा ने उसका कूप में दोहन किया।७। हे मरुद्गण ! तुम्हारे वीर कर्मों को हम न भूलें । तुम्हारा यश अक्षुण्ण रहे । तुम्हारा अद्भुत कर्म युग-युग में गूंजता है । वह दुःख से तारने वाला कर्म हमको धारण कराओ ।८। प्राचीन ऋषि "दध्य", 'अङ्गिरा", "प्रियमेध" "कण्व", "अत्रि" और "मनु' मेरे जन्म के ज्ञाता हैं वे दिव्य गुणों से युक्त है । उन अत्यन्त गौरवशाली इन्द्र और अग्निकी नमस्कार पूर्वक स्तुतियाँ करता हूँ ।९। होता अग्नि याज्मा पढ़ते और हवि के देवता हवि डालते हैं । बृहस्पति निष्पन्न सोमों द्वारा यज्ञ करते हैं । उत्तमकर्मा बृहस्पति ने प्रभूत जलों को धारण किया है ।१०। हे देवगण ! तुम आकाश में ग्यारह हो, पृथिवी पर भी ग्यारह हों, अपने महत्वसे अन्तरिक्ष में भी ग्यारह हो । इस प्रकार तुम तैंतीसों देवता मेरे यज्ञ को स्वीकार करो ।११। (४)

सूक्त १४० [इक्कीसवाँ अनुवाक]

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४
आदस्य ते ध्वसन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन् त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥५॥

हे मनुष्यो ! वेदी में प्रतिष्ठित, प्रकाशवान अग्नि के लिए हवियाँ सम्पादन करो। उस पवित्र ज्योति रूप रथ वाले, अन्धकारके नाशक अग्निको अपने स्तोत्रोंसे वज्र के समान ढको ।१। दो बार प्रकट होने वाले अग्नि तीन प्रकार से अन्नों को प्राप्त करते और भक्षण किये अन्नको वर्ष भर में ही बढ़ा देते हैं। वह एक मुख से हवि भक्षण करते और दूसरे से वन-वृक्षों को निःशेष करते हैं ।२। इसके प्रज्वलन से काली हुई इसकी दोनों माताए कम्पित होती हैं। यह आगे वाले, वेगवान्, भिन्न वर्ण वाले, द्रुतगामी हैं। इनके घोड़े वायुकी प्रेरणा से जुड़ते हैं ।३-४। यह अग्नि पृथिवीको सब ओरसे स्पर्श करते हैं। यह शब्दवान् जब श्वास लेतेहैं इनकी चिनगारियां फैलती हुई अन्धकारका नाश करती बढ़ती हैं ।५। (५)

भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥७
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८
अधीवासं परि मात्रू रिहन्नह तुविग्रेभिर्याति वि ज्रयः ।

वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदाऽनु श्येनि सचते वर्तनीरह ॥९
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ।१०।६
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत् ते शुक्रं तन्वो रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ।१३।७

जो अग्नि पीछे वर्ण वाली बूटियों को आच्छादित करने के समान प्रेरते हैं, बैल के समान गरजते और बल द्वारा शरीर को चमकाते हैं, वह वश में न आने वाले बैल के समान ज्वाला रूप सींगोंको हिलाते हैं ।६। वह अग्नि प्रकट होकर औषधियों को प्राप्त करते हैं । वे उनके प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त होती हैं । उनमे दिव्य गुण भर जाते हैं । फिर ये अग्नि औषधियाँ मिलकर पृथिवी और आकाशको दिव्य गुण बनाते हैं ।७। लम्बी शिलायें अग्निका स्पर्श करती हैं । वे मृत-प्राय होते हुए भी अग्नि से मिलने के लिए प्राणवान हो उठती हैं । अग्नि उसका वृद्धपन मिटाते हुए गर्जन करते चलते हैं ।८। पृथिवी रूप माता के परिधान रूप तृण, औषधि आदिको चाटते हुए अग्नि विजयशील के समान चले जाते हैं । फिर दुपाये और चौपाये को बल देते हैं । वे जिधर से निकलते हैं उधर ही उनके पीछेका मार्ग काला होता जाता है ।९। हे अग्ने ! तुम दानशील के घर में प्रदीप्त होते हुए बैलके समान श्वास लेते हो । फिर ऐसे लगते हो जैसे कोई किशोरावस्था-प्राप्त वीर कवच धारण कर युद्ध की ओर जाता हुआ चमकता है ।१०।

(६)

हे अग्ने ! यह उत्तम प्रकार निवेदन किया गया स्तोत्र तुम्हें अधिक प्रिय हो । तुम्हारा निर्मल और प्रकाशयुक्त शरीर चमकता है । हमारे निमित्त रमणीय धनों के देने वाले होओ ।११। हे अग्ने ! तुम हमारे घर के मनुष्यों

को अथवा योद्धा के लिए ऐसी यज्ञ रूप नाव प्रदान करो जो हम सब को पार लगाती हुई आश्रय रूपबनें ।१२। हे अग्ने ! स्तोत्रको बढ़ाओ । आकाश पृथिवी और स्वर्गको गमनशील नदियाँ हमको गवादि पशु, अन्न और दीर्घायु प्रदान करें तथा उषाएँ हमको वरणीय अन्न, बल प्राप्त कराने वालीहों ।१३। (७)

सूक्त १४१

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

वलित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥१
पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥२
निर्यदी बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३
प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥४
आदिन्मातृराविशद् यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ।५।८

अग्नि जिस बल से उत्पन्न हुए हैं, उसी बल-रूप दर्शनीय तेज को धारण करते हैं। उनकी कृपा से ही अभीष्ट सिद्धि होती है। सत्य वाणियाँ प्रवाहित होती हैं ।१। अन्न-साधक अग्नि अन्नों में व्याप्त रहते हैं। दूसरे सात कल्याण कारिणी मातृ रूपी धातुओं में व्याप्त होते हैं तीसरे अग्नि को दश उँगलियाँ घर्षण द्वारा प्रकट करती हैं ।२। ऋत्विजों ने बड़े यज्ञ को सिद्ध करने वाले मूल से अग्नि को उत्पन्न किया। मातरिश्वा प्राचीन कालमें अग्नि को जल से क्रम पूर्वक मन्थन करते थे ।३। जब अग्नि को उत्कृष्टता के लिए चारों ओर ले जाते हैं, तब वे औषधियों पर चढ़ते हैं। जब वे अरणि मन्थन द्वारा प्रकट होते हैं, तब वे पवित्र हुए युवा रूप हो जाते हैं ।४।

अग्नि मातृ-रूपिणी दिशाओं मे बड़े तथा उन्ही में व्याप्त हुए । वे सतत वेगवान् बढ़ी हुई तथा नयी, सब प्रकार की औषधियों की ओर गति करते हैं ।५। (८)

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे॥६
वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन् दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥७
रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥८
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत् सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुरराम्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः । ११
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२
अस्ताऽव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ।१३।९

विश्व-धारक अग्नि बुद्धि बल द्वारा पोषण के लिए मनुष्यों के स्तोत्रों को प्राप्त होते हैं । इसीलिए उन्हें होता रूप में वरण किया जाता है । वे देवता और यजमान दोनों के लिए अन्न की कामना करते हैं ।६। जब पूज्य अग्नि वायु की प्रेरणा से बाधा रहित गति करते हैं तब उनकी यात्रा समाप्त होने पर काला मार्ग तथा उसमें धूल ही अवशिष्ट रहती है ।७। रथ से यात्रा

करने वाले तेजस्वी के समान, वे आकाश की यात्रा करते हैं । हे अग्ने ! उन वाले दस्युओं को तुम भस्म करते हो । तुम्हारे उपासक वीरों के समान बल प्राप्त करते हैं ।८। हे अग्ने ! धृतनियमा वरुण, दानशील अर्यमा और मित्र तुम्हारे द्वारा प्रेरणा पाते हैं । जैसे रथ का पहिया अरों (डण्डों) को व्याप्त करके रहता है, वैसे यज्ञ कर्मों द्वारा अग्नि प्रकट होते हैं ।९। हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम सोम निष्पन्न करने वाले स्तोता को वैभव योग्य धन प्रेरित करते हो । हम अपने कार्य के लिए भग के समान तुम्हारी पूजा करते हैं ।१०। हे अग्ने ! हमारे कार्य के लिए धन और घर के लिये सौभाग्य प्रदान करो । तुम दोनों लोकों को रासों के समान वश में रखते तथा यज्ञ में हमारी स्तुति को देवगणके पास पहुँचाते हो ।११। अत्यन्त तेजस्वी घोड़ोंके युक्त दमकते हुए रथ वाले अग्ने ! हमारे आह्वान को सुनो । तुम हमको काम्य सुखको प्रेरित करते हुए हमारा कल्याण करो ।१२। हमने महान् ऐश्वर्यके लिए अत्यन्त बली अग्नि देव का स्तवन किया है । वे अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हों और हम भी उसी प्रकार बढ़े जैसे सूर्य मेघ के ऊपर चढ़ता है ।१३। (९)

सूक्त १४२

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि आदि । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

समिद्धो ऽग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१
घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२
शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३
ईलितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४

स्तृणानासो यतस्रु चो वर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ।६।१०

हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त होकर बढ़े हुए आज इस यजमान के लिए देव-गण को लाओ। इस सोम अभिषवकर्ता के लिए प्राचीन यज्ञ को बढ़ाओ।१। हे अग्ने ! तुम मुझ स्तोता हविदाता के घृत-मधु से युक्त यज्ञ में यज्ञ की समाप्ति तक निवास करो । २ । पवित्र-कर्त्ता, प्रकाशवान देवगण में देव, मनुष्यों द्वारा स्तुत्य ये अग्नि हमारे यश को तीन बार मधुर रस से सीचें ।३। हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम इन्द्र को यहाँ लाओ, मेरा यह स्तोत्र तुम्हारे लिए ही कहा गया है ।४। स्रुक् धारण करने वाले ऋत्विज यज्ञ स्थान में कुशाओं को बिछाते तथा देवताओं को आह्वान करने वाले विशाल यज्ञ मण्डल को इन्द्र के लिए सजाते हैं ।५। यज्ञ को बढ़ाने वाले, पवित्र,कामना के योग्य, विस्तृत यज्ञ द्वार को खोल दो ।६। (१०)

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां वर्हिरा सुमत् ॥७
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥८
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इला सरस्वती मही वर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥९
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥१०
अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥११
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥१२
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा महि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ।१३।११

सबके स्तुति पात्र, सुन्दर काँति वाले, श्रेष्ठ-अग्नि रूप रात्रि दिवस हमारी कुशाओं पर आकर विराजमान हों ।७। सुन्दर जिह्वा वाले, स्तोताओं की कामना वाले, मेधावी अग्नि-रूप दोनों होता इस सिद्धि दायक यज्ञ को बढ़ावें । ८ । देवों द्वारा स्थापित, यज्ञों को सिद्ध करने वाली पवित्र वाणी रूप भारती, सरस्वती और इला ये तीनों हमारी कुशाओं पर विराजें । ९ । हमारे मित्र स्वामी त्वष्टा स्वयं ही हमको पुष्ट करने वाले अन्न के लिए जल-वर्षा करें ।१०। हे वनस्पते ! तुम स्वयं देवताओं के समीप जाकर यज्ञ करो । मेधावी अग्नि देवताओं के लिए प्रेरणा करते हैं ।११। पूषा और मरुतों से युक्त विश्वदेव रूप वायु के लिये यज्ञ करो । इन्द्र को लक्ष्य कर हवियों को दो।१२। हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों की ओर आकर हवि सेवन करो । हमारा आह्वान सुनो । हम तुम्हें यज्ञ में बुलाते हैं ।१३। (११)

सूक्त १४३

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥१
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत्॥२
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥३
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति॥४
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।

अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून् त्स वना न्यृञ्जते ॥५
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद् वसुभिः कामामावरत् ।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः । ८।१२

अग्नि बल के पुत्र हैं । उनके लिए नवीन स्तोत्र भेंट करता हूँ । वे जलों से उत्पन्न हैं और होता रूप से धनों के साथ यज्ञ स्थान में विराजमान हैं ।१। वह अग्नि मातरिश्वा के लिए उच्च आकाशमें प्रकट बुए । उनके उज्ज्वल कर्म से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित हुए ।२। उनके अजर प्रकाश और चमकती हुई चिंगारी रूप किरणें बलशाली हैं । वे समुद्र के समान रात्रि को पार करते हुए भी कभी काँपते नहीं ।३। लोकों के स्वामी जिस अग्नि को भृगुओं ने अपने बल से प्रेरित किया, उनकी स्तुति करें । वे वरुणके समान सब धनों के एकमात्र स्वामी हैं ।४। जो अग्नि मरुतों के शब्द, आक्रामक सेना और आकाश के वज्रके समान बाधा रहित हैं, वे वनों को भस्म करते हैं और वनों को योंधाओं द्वारा शत्रुओं को भून डालने के समान ही जला देते हैं ।५। अग्नि हमारे स्तोत्र की कामना करते हुए हमारी धन की इच्छा को पूर्ण करें । हमारे लाभ के लिए कर्मों को प्रेरित करें । मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ ।६। अग्नि को प्रदीप्त करने वाले यजमान घृत-चिन्ह को मित्र बनाने के इच्छुक हैं । वे प्रकाश के दुर्ग के समान यज्ञ में प्रज्वलित होकर हमारे मन को श्रेष्ठ स्तुति की ओर प्रेरित करते हैं ।७। हे अग्ने ! निरन्तर विश्राम-रहित कल्याण रूप तुम हमारी रक्षा करो, तुम क्लेश-रहित और निद्रा-रहित सामर्थ्योंसे युक्त हो । हमारी सन्तान की सब ओर से रक्षा करो ।८।　　　　(१२)

सूक्त १४४

(ऋषि—दीर्घतमः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती)

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसद्ध स्वधा अधयद् याभिरीयते ॥२
युयूषतः सवयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोह्लुर्न रश्मीन् त्समयन्स्त सारथिः॥३
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥५
त्वं ह्यग्ने दिवस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षया ।७।१३

देवाह्वाता अग्नि यज्ञ की ओर स्तोत्रों को बल देते हुए जाते हैं। वे स्रुचों से आहुति प्राप्त करते हुए उठते हैं।१। अग्नि की ज्वालाएं देवस्थान में, वेदों से घिरे हुए यज्ञ में निकलती हैं। जलों की गोद में अन्तर्हित रहे अग्नि ने प्रकट होकर अपना गुण ग्रहण किया। २। एक रूप वाली दोनों अरणियां परस्पर मिलकर उज्ज्वल रूप वाले की कामना करती हैं। वे अग्नि आह्वान के योग्य हैं। सारथी द्वारा रास पकड़नके समान, अग्नि हमारी घृत धारा को ग्रहण करतें हैं।३। समान अवस्था वाले दो मनुष्य, अग्नि की दिन-रात पूजा करते हैं। वे अग्नि कभी वृद्ध नहीं होते। युवा रहते हुये ही हवि भक्षण करते हैं।४। दश उङ्गलियाँ उस अग्नि की सेवा करती हैं। हम

उन्हें रक्षा के लिए करते हैं । वे बाण की गति के समान चलते हुए नई स्तुतियों को धारण करते हैं ।५। हे अग्ने! तुम आकाश और पृथिवीके प्राणियों के स्वामी हो । वह ऐश्वर्य युक्त दोनों ही तुम्हारे यज्ञ को प्राप्त होते हैं ।६। हे प्रसन्न मन वाले, स्यच्छांवान् बली यज्ञोत्पन्न अग्ने ! प्रसन्न होकर इस स्तोत्र को स्वीकार करो । तुम अत्यन्त रमणीक और ऐश्वर्यों से पूर्ण हो ।७। (१३)

सूक्त १४५

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन् त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः।१
तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचो ऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥२
तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः मृणवद् वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनो ऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३
उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभि- ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ।५।१४

वे अग्नि सर्वज्ञाता, सर्वत्र गमनशील, सबके स्तुति-पात्र अभीष्ट युक्त एवं महाबली हैं ।१। उन अग्नि को सब जानते हैं । उनके सम्बन्ध में पूछना अनुचित है । स्थिर मन वाला किसी की प्रथम और बाद की बातें नहीं भूलता । इसलिये अहङ्कार से शून्य मनुष्य अग्नि का आश्रय लेता है ।२। उसी अग्नि को आहुतियाँ और स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं । वह आह्वानों को सुनने वाला है, यज्ञ को सिद्ध करने वाला तथा बालक के समान बल वृद्धि को प्राप्त होता है । ३ । अग्नि प्रकट होते ही विचारणशील है । वह

तुरन्त ही हवियां ग्रहण करते हैं और थके मनुष्यों की थकानको मिटाकर प्रसन्नता प्रदान करते हैं ।४। वन में फिरने वाला अग्नि ईंधन से प्राप्त होता है। मेधावी यज्ञ ज्ञाता अग्नि मनुष्यों में रहकर यज्ञ कर्म में प्रेरित करता हुआ ज्ञान देता है ।५। (१४)

सूक्त १४६

(ऋषि—दीर्घतमा: । देवता अग्नि: । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१
उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥२
समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्यां अध्वनो मिमाने विश्वान् केताँ अधि महो दधाने ॥३
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत् सूर्यो नॄन् ॥४
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईलेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ।५।१५

हे मनुष्य ! तीन मस्तक वाले सात किरणों वाले, पूर्ण रूप वाले आकाश और पृथिवी के मध्य विराजमान और प्रकाशित नक्षत्रों में तेज रूप से व्याप्त इस अग्नि का स्तवन कर ।१। इस वीर अग्नि ने आकाश और पृथिवी को सब ओर से व्याप्त किया है। वह जरा रहित और साधनों से युक्त है। पृथिवी के सिर पर अपने पैरों को रखकर खड़े हुए इसकी ज्वालाएँ मेघ रूप स्तन को चाटती हैं ।२। ये आकाश-पृथिवी रूप गौएँ साझे के बछड़े रूप अग्नि को प्राप्तकर सभी कामनाओं को धारण करती हुई विचरती हैं ।३। बुद्धिमान ऋषिगण मनुष्यों की रक्षा करते हुए उनको मार्ग सिखाते हैं। उन्होंने अग्नि की चाहना से समुद्र को सब ओर से देखा, तब मनुष्यों का

कल्याण करने वाला सूर्य उत्पन्न हुआ ।४। दिशाओं के विजेता अग्नि बड़े-छोटे शरीर धारियों के लिये जीवनदाता हुए । वे धन और प्रजाओं को प्रकट करने में समर्थ है ।५।
(१५)

सूक्त १४७

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत् तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन् रणयन्त देवाः ।।१
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ।।२
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देमुः ।।३
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयाति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ।।४
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ।५।१६

हे अग्ने ! तुम्हारी प्रकाशित किरणें बल युक्त जीवन देती हैं । वे पुत्र पौत्रादिको बढ़ाती हुई पुष्ट करती हैं ।१। हे अत्यन्त युवा अग्ने ! मेरे इस आदर योग्य स्तोत्रको सुनो । एक मनुष्य आपको पीड़ा पहुँचाता है एक स्तुति करता है । मैं तो आपकी स्तुति करने वाला हूँ ।२, हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा से युक्त भक्तों ने ममताके अन्धे पुत्र को बचाया । उन उत्तम कर्म वालों की तुमने रक्षा की । तुम्हें शत्रु किसी प्रकार छल नहीं सकते ।३।हे अग्ने ! ईर्ष्या युक्त अदान-शील पापी हमको छल से दुःख देता है । उसका वह कुविचार उसी को भार-स्वरूप हो और वह उसी को नष्ट करे ।४। हे बलवान् ! जो मनुष्य छल से किसी को पीड़ित करना चाहता है, उससे स्तोता की रक्षा करो । हम दुःखी न हों ।५।
(१६)

सूक्त १४८

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥१
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥२
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥३
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद् रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ।५।१७

उन सर्व रूप वाले देव स्वरूप होता का मातरिश्वा ने मन्थन किया और उस सूर्य के समान देदीप्यमान अग्नि को देवगण ने मनुष्यों में स्थापित किया ।१। स्तोत्र उच्चारण करते हुए मुझे शत्रु पीड़ित न कर पाये, मेरी स्तुति सुन अग्नि ने शरण दी और मेरे स्तोत्र को सब देवताओं ने स्वीकार किया ।२। यजमानों ने जिसे ग्रहणकर स्तुतियों से स्थापित किया और रथमें घोड़े जोड़ने के समान आगे बढ़ाया ।३। अद्भुत अग्नि वृक्षोंका वर्णण करता है और प्रकाश से वन में चमकता है। इसकी दमकती हुई ज्वाला को वायु तीक्ष्ण रूप में बढ़ाता है ।४। जिसे अप्रकट रहने पर हिंसक पीड़ित न कर सके और अन्धे इसके माहात्म्य को न मिटा सके। इसके प्रीति करने और नित्य धारण करने वाले ही इस अग्नि की रक्षा करते रहे हैं ।५। (१७)

सूक्त १४९

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—विराट् ।)

महः य राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।

उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥१
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥२
आ यः पुरं नार्मिणीतदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥३
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥४
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ।५।१८

वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान् धन-स्वामी देने के लिये यज्ञ में आते हैं । सोम कूटने के पाषाण उनके लिए रस तैयार करते हैं ।१। जो आकाश और पृथिवीमें यशस्वी रहते हैं उन्हें त्यागकर जीव दुःख भोगते हैं । वह अग्नि वेदीमें वास करते हैं ।२। जिसने मनुष्य शरीरमें दोहन किया,वह अग्नि शीघ्रगामी अश्वके समान प्रशंसनीय हैं ।३। दो जन्म वाले अग्नि तीनों ज्योतियों और सब लोकों को प्रकाशित करते हैं । यह अत्यन्त पूज्य होता के रूप में नियुक्त हुए हैं ।४। वह दो जन्म वाले देवताओंके बुलाने वाले हैं । जो मनुष्य इनको हवि देता है, उसे वह वरणीय धन और यश का देने वाला है ।५। (१८)

सूक्त १५०

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–अग्निः । छन्द–उष्णिक्)

पुरु त्वा दाश्वान् वोचे ऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन् प्रजिगतो अदेवयोः ॥२

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम ।३।१९

हे अग्ने ! आपके आश्रय का इच्छुक स्तोता हवि देता हुआ बार-बार आह्वान करता है ।१। वे अग्नि देवताओं से द्वेष करने वालों के आग्रह पूर्ण आह्वान पर भी नहीं जाते ।२। हे मेधावी अग्ने ! वह मनुष्य अत्यन्त यशस्वी होता है, वह सबको प्रसन्न करता है । तुम्हारे साधक हम सदा वृद्धिको प्राप्त हों ।३। (१९)

सूक्त १५१

(ऋषि—दीर्घतमः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—जगती)

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१
यद्ध त्यद् वां पुरुमीलहस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः । २
आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥३
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४
मही अत्र महिना वारमृण्वथो ऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुचं उषसस्तक्वीरिव ।५।२०

प्रकाश की इच्छा से ध्यानरत देवगण ने जीव मात्र की रक्षा के लिये मन्त्र के समान जिस पूजनीय अग्नि को जलों से उत्पन्न किया, प्रकट होने पर उसके बल और वाणी के प्रभाव से आकाश और पृथिवी काँप गये ।१। हे मित्रावरुण ! ऋत्विजों ने तुम्हारे अभीष्टदायी सोमरस को अर्पण किया । इसलिये साधक के घर आकर उसका आह्वान सुनो ।२। हे मित्रावरुण ! तुम्हारी वर्णन योग्य उत्पत्ति आकाश, पृथिवी से बतायी गयी । तुम देवी नियमों का पालन करते और अपने उपासकों के निमित्त प्रकट होते हो । तुम

उत्तम यज्ञों में स्तुतियों द्वारा प्राप्त होते हो ।३। हे मित्र, वरुण ! तुमको यह मनुष्य अत्यन्त प्रिय है । तुम नियमोंकी उच्च स्वर से घोषणा करने वाले हो। तुम बैल को धुरेमें जोतने के समान विशाल आकाश में सामर्थ्य को जोड़ते हो ।४। हे मित्र और वरुण ! तुम वरणीय धनों को प्राप्त कराने वाले हो । गोष्ठ में रहने वाली गौएँ प्रातःकाल और सायंकाल आकाश में उड़ते हुए पक्षियोंके समान सूर्य को देखती हुई रँभाती है ।५। (२०)

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मनो सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ।।६
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ।।७
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ।।८
रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ।९।२१

हे मित्र और वरुण ! जब तुम धर्म मार्ग की उन्नति करते हो तब यज्ञस्थ ज्वालाएँ तुम्हारा स्तवन करती हैं । तुम ऋषियों के स्तोत्र के स्वामी हो । हमारी स्तुतियों की वृद्धि करो ।६। हे मित्रावरुण ! जो स्तोता यज्ञ में तुम्हारे लिए हवि देता है और जो स्तोत्र रचयिता कवि तुम्हारा स्तवन करता है, तुम दोनों उसे प्राप्त होते हुए उसके यज्ञ को काम्य बनाते हो । अतः हमारी स्तुतियों को सुनकर यहाँ आओ ।७। हे धृत नियमा मित्रावरुण ! जों मनुष्य यज्ञों में हार्दिक भावना से तुम्हारा पूजन करते हैं वे स्थिर ध्यान से तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम उन्हें प्राप्त होओ ।८। हे मित्रावरुण ! तुम धनयुक्त बलके धारक हो, मानसिक बलसे रक्षा साधन युक्त हुए महान् बनते हो । दिन, रात्रि नदियाँ और पणि तुमसे देवत्व नहीं पा सके, प्राणियों को तुम्हारा हाल भी नहीं मिला ।९। (२१)

सूक्त १५२

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्त वो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥३
प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन् त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ।७।२२

हे मित्र वरुण ! तुम दोनों तेज रूप वस्त्रों को धारण करते हो, तुम्हारी सृष्टियाँ सुन्दर और छिद्र रहित हैं। तुम हर प्रकार से असत्य से दूर रहते हुए सत्य के साथी हो ।१। ऋषियों के वाक्य सत्य हैं कि मित्र वरुण चतुर्गुण अस्त्रों से सुजज्जित हैं और वे त्रिगुणात्मक अस्त्र वालों को नष्ट करते हैं। इनके महत्व को कोई नहीं जानता । देव निंदकों को ये सबसे पहले मारते हैं ।२। पद-रहित उषा पद युक्त मनुष्यों के आगे जाती हैं, इससे कर्म को कौन जानता है ? रात्रिका गर्भस्थ पुत्र सूर्य इस संसार का भार वहन करता हुआ सत्य को ग्रहण करता और असत्य को मिटाता है ।३। हम प्रशस्त तेज रूप वस्त्रधारी मित्रावरुण के स्थान की ओर उषाओं की कांति

क्षीण करने वाले सूर्य को आगे बढ़ता देखते हैं। मित्रावरुण का स्थान पीछे कभी नहीं रहता।४। बिना घोड़े और बिना रास वाला आदित्य प्रकट होते ही ऊँचा चढ़ता और शब्द करता है। मित्रावरुणके स्थान रूप सूर्य की मनुष्य गण स्तुति करते हैं।५। हे मित्र वरुण! स्नेह दायिनी गौएँ मुझ ममताके पुत्र को अपने थन से उत्पन्न दूध पिलावें। धर्म मार्ग वाले अन्न माँगें और तुम्हारी सेवा करते हुए यज्ञको बढ़ावें।६। हे मित्रवरुण! मैं अपनी रक्षा के लिये नमस्कार पूर्वक हविदान करूँ। हमारी स्तुतियों के प्रभाव से युद्ध में हमारे शत्रु वशीभूत हों तथा दिव्य वर्षा कर हमको दुःखों से पार लगावें।७। (२२)

सूक्त १५३

(ऋषि–दीर्घतमाः। देवता–मित्रावरुणौ। छन्द–त्रिष्टुप्)

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
घृतैर्घृतस्नू अध यद् वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥१
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन् त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३
नत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः।४।२३

हे जल रूप घृत-वर्षक मित्रावरुण! हम घृत युक्त हवियों से नमस्कार पूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे अध्वर्यु तुमको हवि भेंट करते हैं।१। हे मित्रावरुण! तुम्हारी स्तुति तेज की प्रेरक है। इसलिये मैं सुन्दर स्तुतियों से तेज प्राप्त करता हूँ। जो होता तुम्हें पूजने की इच्छा करता और तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है, वह यज्ञमें तुमको घृत युक्त हवि देता है।२। हे मित्रावरुण! "रातहव्य" के यज्ञ कर्म से प्रसन्न हुए तुमने उसकी गाय को दूध वाली किया था। वैसे ही यजमान तुम्हें हवि देता हुआ अपनी गायोंको अत्यन्त दूध वाली होने की याचना करता है।३। हे स्त्री पुरुषो! आपके गज आदि साधनों की

वृद्धि हो । आपको पर्याप्त गो दुग्ध उपलब्ध हो ताकि शरीर हर प्रकारसे पुष्ट रहे ।४। (२३)

सूक्त १५४

(ऋषि—दीर्घतमा: । देवता—विष्णु: । छन्द—त्रिष्टुप)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं य: पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय: ॥१
प्र तद् विष्णु: स्तवते वीर्येण मृगो न भीम: कुचरो गिरिष्ठा: ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभि: ॥३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ।४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णो: पदे परमे मध्व उत्स: ॥५
ता वां वास्तून्युश्मसि घमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास: ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण: परमं पदमव भाति भूरि ।६।२४

मैं वरुण के पराकम का वर्णन करता हूँ । उन्होंने तीन पैरों में लोकों को नाप लिया और आकाश को स्थिर किया । १ । विष्णु के तीन पदों में सम्पूर्ण जगत निवास करता है । अत: पर्वत पर रहने वाले भयङ्कर पशुओं के समान यह संसार विष्णु के पराक्रम की प्रशंसा करता है ।२। जिन विष्णु ने अकेले हो अपने तीन पैरों में तीनों लोकों नाप लिया, उन महाबली विष्णु की बहुत से जीव स्तुति करते हैं ।३। जिन अकेले ने त्रिगुणात्मक पृथिवी आकाश और सब लोकोंको धारण किया है, वे विष्णु अक्षय स्वतन्त्रता में प्रसन्न रहते हैं और मनुष्यों को मधुर अन्नादि से युक्त करते हैं ।४। मैं विष्णु के उस विस्तृत पद का आश्रय चाहता हूँ जहाँ देवताओं के स्वामित्व को मानने वाले मनुष्य आश्वासन प्राप्त करते हैं । विष्णु ही बन्धु हैं । उनका परमपद ही मधुरता (अमृतादि) का केन्द्र हैं ।५। हे इन्द्र और विष्णो !

हम तुम दोनों के उस स्थान की कामना करते हैं जहाँ अत्यन्त शक्ति वाली सिद्ध रूप गौएँ है। स्तुति के योग्य विष्णु का उच्चपद तेज से परिपूर्ण है।६। (२४)

सूक्त १५५

(ऋषि—दीर्घतमाः। देवता—विष्णूः इन्द्राविष्णु। छन्द—जगती)

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः।३
तत्तदितदिदस्य पौंस्य गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीलहुषः।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्।६।२५

मनुष्यो ! अपने रक्षक सोम रूप अन्न को इन्द्र और विष्णु के लिए सिद्ध करो। वे दोनो उन्नत कर्म वाले किसी के बहकावे में नहीं आते।१। हे इन्द्र और विष्णु ! तुम कर्मोंके फल देने वाले स्वामीहो। तुम्हारे लिए साधक सोम निचोड़ कर तैयार करता है। तुम शत्रु द्वारा लक्ष्य कर फेंके गये बाणों से उसकी रक्षा करने में समर्थ हो।२। सभी आहुँतियाँ इन्द्र के बल वीर्य को पुष्ट करती हैं। इन्द्र वृष्टि से अन्न देते हैं। अन्न रूप वीर्य रजसे पुत्र प्राप्ति होती है। उसी से तृतीय नाम पुत्र हुआ। प्राणियों की उत्पत्ति इन्द्र और विष्णु के

अधीन हैं।३। सब के स्वामी, रक्षक शत्रु-रहित युवा विष्णु के बल वीर्य की हम स्तुति करते हैं, जिन्होंने लोक रक्षा के लिये तीन पाँव रखकर ही सब लोकोंको लाँघ डाला।४। सभी प्राणी इन विष्णु के दो पदों को ही देख सकते हैं। तीसरे पद को पहुँचने का कोई भी साहस नहीं करता। आकाश में गमन करने वाले मरुद्गण भी नहीं प्राप्त कर सकते।५। विशाल स्तुतियों से युक्त बिष्णु ने काल के चौरानवे (अंशों) को चक्र की तरह घुमाया। स्तुति करने वाले उन्हें ध्यान से खोजते और आह्वान करते हैं।६। (२५)

सूक्त १५६

(ऋषि—दीर्घतमाः। देवता—विष्णुः। छन्द जगती)

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥३
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।
वेधा अजिन्वत् त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५॥२६

हे विष्णो! जनोत्पादक, अत्यन्त यशस्वी रक्षक, विस्तृत तुम मित्र के समान सुख देने वाले हो। तुम्हारे स्तोत्र को मेधावी जन पुष्ट करते हैं। तुम्हारा यज्ञ हविदाता यजमान सम्पन्न करते हैं।१। जो मेधावी स्तुति पात्र स्वयंभू विष्णु के लिए हवि देता और इनके यज्ञों का वर्णन करता है वह सभी को जीत लेता है।२। स्तोताओ! प्रकृति के गर्भ-रूप विष्णु को तुम जानते हो। इनके गुणगान कर इन्हें प्रसन्न करो। हे विष्णो! हम तुम्हारी

दया प्राप्त करें ।३। मरुतों को प्रेरणा देने वाले इन विष्णु की इच्छा में वरुण और अश्विनीकुमार सदा तत्पर रहते हैं । विष्णु ही मित्र युक्त दिन को प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ बलको धारण करते हुए अन्धकार को मिटाकर प्रकाश करते हैं ।४। जो उत्तम कर्म वाले विष्णु और इन्द्र की सेवा में तत्पर रहते है, वे त्रैलोक्य स्वामी परमात्मा से यजमान को यज्ञ फल का भागी बनाते हैं ।५। (२६)

सूक्त १५७ [बाईसवाँ अनुवाक]

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥१
यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीरश्विनावैरयेथाम् ॥५
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ।६।२७

अग्निदेव चैतन्य हुए,सूर्य उदित हुए, आनन्द दायिनी उषा प्रकाश के साथ आयी । अश्विदेवों ने रथ को जोड़ा और सवितादेव ने संसारको उत्तम प्रेरणा दी ।१। हे रथ जोतने वाले अश्विदेवो ! हमारी मातृभूमि को मधु और घृत से सिंचित करो । हमारी स्तुतियों को युद्ध में बलिष्ठ करो । हम युद्ध में विशाल धन को जीतें ।२। तुम्हारा तीन पहिये वाला धनोंसे युक्त द्रुतगामी रथ हमारी

स्तुतियों द्वारा प्रत्यक्ष हों और हमारे दुपाये और चौपायों को सुखी बनावे।३। हे अश्विद्वय ! तुम हमको बली बनाओ। मधुर रससे हमें सींचो। हमारी यायु की वृद्धि करो। पाप को दूर करो, वैरियों को हटाओ और हर प्रकार हमारा सहायता करो।४। हे अश्विद्वय ! तुम गौओं में गर्भ धारण करते हो। तुम अग्नि, जल और वनस्पतियों को प्रेरित करते हो।५। हे उग्र अश्विद्वय ! तुम औषधि वाले वैद्य हो, रथ वाले रथी हो। तुम्हारे निमित्त जो चित्त से हवि देता है, उसे तुम ऐश्वर्यवान् बनाते हो।६। (२७)

। द्वितीयोऽध्याय: समाप्त:।

सूक्त १५८

(ऋषि—दीर्घतमा:। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्।)

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद् रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत् सस्राथे अकवाभिरूती ॥१
को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै वसू यद् धेथे नमसा पदे गो:।
जिगृतमस्मे रेवती: पुरन्धी: कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२
युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्र:।
उप वामव: शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवै: ॥३
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४
न मा मरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधु:।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथि: ।६।१

हे अश्विदेवो ! उचथ्य पुत्र दीर्घतमा द्वारा मांगे गये रक्षा साधन युक्त धनों को हमें प्रदान करो।१। हे अश्वियो ! तुम वेदिस्थान में हमारे लिए

नमस्कारों से जिस दया बुद्धि को धारण करतें हो, उस धन युक्त बुद्धि को हमारे अभीष्ट पूर्ण होनेमें लगाओ।२। हे अश्विद्वय ! "तुग्र" का जो पुत्र समुद्र में डाला गया था उसे पार लगाने को तुम्हारा रथ जोड़ा गया था। जैसे तुम द्रुतगामी घोड़ोंसे युद्ध में पहुँचते हो, वैसे ही मैं तुम्हारी शरण प्राप्त करूँ।३। हे अश्विद्वय ! ये स्तुतियाँ उचय पुत्र की रक्षा करें। ये गतिमान दिन रात मुझे क्षीण न करें। दसगुने ढेर वाला ईंधन मुझे न जला पावे। तुम्हारीशरण को प्राप्त मैं पृथिवी पर झुका हुआ हूँ।४। हे अश्विद्वय ! मातृ रूप नदी का जल भी मुझे न डुबो सका। दस्युओं ने इस वृद्ध को बांधकर फेंक दिया। "त्रैतन" दैत्य ने जब मेरा सिर काटने की चेष्टा की तत वह स्वयं ही कन्धोंसे आहत हुआ।५। ममता का पुत्र दीर्घतमा दश काल पश्चात् युद्ध हुआ। कर्म फल की इच्छा से स्तुति करने वाले स्तोता रथ युक्त हुए।६। (१)

सूक्त १५९

(ऋशि–दीर्घतमाः। देवता–द्यावापृथिवी। छन्द–जगती)

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याति प्रभूषतः ॥१
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४
तद् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ।५।२

यज्ञोंको पुष्ट करने वाली, ज्ञान वर्द्धिनी आकाश पृथिवीकी मैं पूजा करता हूँ। यजमान उनके पुत्र हैं। वे देवगणके साथ वरणीय धनोंसे धन देती हैं।१।

मैं आकाश रूप पिता और पृथिवी माता के महत्व का चिंतन करता हूँ। उन अत्यन्त पुरुषार्थियों ने जीवों को प्रकट किया और उनमें अन्नों को बनाया ।२। हे आकाश पृथिवी ! उत्तम कर्म वाले कुशल पुत्र रूप प्रजागण तुम्हें माता मानते हैं। तुम स्थावर जङ्गममें सत्य स्थापित करने के लिए सूर्य के स्थानकी रक्षा करते हो ।३। आकाश और पृथिवी एक स्थानसे उत्पन्न हुए सहोदरा है। वे प्रजा से युक्त हैं। किरणें उनका विभाजन करती और नवीन सूत्रों को प्रकट करती हैं ।४। हे द्यावा पृथिवी ! सविता की प्रेरणा से स्थिर तुमसे हम उस अत्यन्त उत्तम धन की याचना करते हैं। तुम हमको उत्तम वास तथा गवादियुक्त ऐश्वर्य को प्रदान करो ।५। (२)

सूक्त १६०

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–द्याव,पृथिव्यौ । चन्द–जगती ।)

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत् सीमभि रूपैरवासयत् ॥२
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३
अयं देवानामपसामपस्तमी यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया ऽजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ।५।३

अन्तरिक्ष को अपने में धारण करने वाली आकाश पृथिवी सबको सुख देने वाली है। उनके बीच सूर्य नित्य नियम पूर्वक गमन शील है ।१। अत्यन्त विस्तृत और विशाल आकाश और पृथिवी पिता और माता रूप से सब लोकों का पालन करते, जैसे पिता अपने शिशु को उत्तम

वस्त्रों से आच्छादित करता है ।२। वह माता पिता का भार वहन करने वाला सूर्य अपने बलसे संसार को पवित्र करता है । वह बहुत रङ्गोंवाली पृथिवीरूप धेनु ओर पौरुष युक्त आकाश रूप बैल को पवित्र करता हुआ पृथिवी से रस रूप दूध का दोहन करता है ।३। देवताओं में श्रेष्ठ वह परमात्मा महान् कर्मा है । उसने आकाश पृथिवी को उत्पन्न किया । उसी ने अपनी प्रजा से दोनों लोकों को नापा और जीर्ण न होने वाले खम्भों पर टिका दिया ।४।हे आकाश पृथिवी ! तुम हमारे लिए महान् ऐश्वर्य और बल को धारण करो, जिससे हम प्रजाओं का विस्तार करें । तुम हमको बल वाली स्तुति की प्रेरणा करो ।५। (३)

सूक्त १६१

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–ऋभवः । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् किमीयते दूत्यं कद् यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलो ऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद् भूतिमूदिम ॥१
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद् वो देवा अब्रुवन् तद् व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद् यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित् त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्या नामभिः स्परत् ।५।४

वे श्रेष्ठ ओर युवा हमारे पास आये हैं वे क्या दौत्य कर्म के लिये आये हैं ? हे अग्ने ! हमारे चमस की निन्दा नहीं की है । हमारे उस काष्ठ कर्मों को ही कहा है ।१। हे सुधन्वा के पुत्रो ! मैं देवज्ञा से तुम्हारे

पास आया हूँ। तुम एक चमस के चार कर दो। ऐसा करने पर देवताओं के साथ तुम भी यज्ञ भाग प्राप्त करोगे ।२। हे देवबन्धुओं! तुमने अग्नि को दूत बनाया है। हमको घोड़ा और गौ बनाकर दो। माता-पिता को युवावस्था दो। इन कार्यों के बाद हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होंगे ।३। हे ऋभुगण! कार्य करने के पश्चात् ही तुमने पूछा कि जो दूत यहाँ आया था वह कहाँ है? जब त्वष्टाने चमस के चार टुकड़े किये तब स्त्रियों को देखकर वह लज्जा से छिप गया ।४। त्वष्टा ने कहा कि जिन्होंने देवताओं के पीने के पात्र चमस की निन्दा की, उन्हें हम मार डालें। तब ऋभुओं ने सोम तैयार होने पर दूसरा नाम दिया और त्वष्टा की कन्या ने भी इसी नाम से पुकार कर प्रसन्न किया ।५। (४)

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किं स्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ।
।१०।५

इन्द्र ने घोड़ों को जोड़ा, अश्विदेवों ने रथ को जोड़ा, बृहस्पति ने गौ, को पुकारा। ऋभु, विश्वा और वाज, ये देवताओंके पास गये यथा यज्ञ भाग प्राप्त किया ।६। हे सुधन्वा-पुत्रो! तुमने अपने कर्मों से चर्म द्वारा गौ को पुनर्जीवन दिया। तुमने वृद्ध माता-पिता को जवानी दी। तुमने अश्व से अश्व

उत्पन्न किया और रथ जोड़ कर देवताओं के समक्ष उपस्थित हुए ।७। हे देवगण ! तुमने कहा था कि 'सुधन्वा-पुत्रो ! मूँज से निचोड़े रसको पीओ या जल पीओ । यदि इन दोनोंमें से किसी को नही पीना चाहते हो तो तीसरे सायंकाल सोम का पान करना ।८। एक ने जल को दूसरे ने अग्नि को और तीसरे ने पृथिवी को सर्वश्रेष्ठ कहा ऐसी सत्य बात कहते हुए उन ऋभुओं ने चमसों की रचना की ।९। एक ने लँगड़ीको जल की ओर हाँका, दूसरे ने माँस को पृथक् किया, तीसरे ने सूर्यास्त से पूर्व ही पुरीष को उठा लिया । माता-पिता पुत्रों का क्या उपकार कर सकते है ? ।१०।   (५)

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ।।११
संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित् तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत् प्रो तस्मा अब्रवीतन ।।१२
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता गोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत् संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ।।१३
दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ।१४।६

हे ऋभुओ ! तुमने उत्तम कर्म की इच्छा से इन प्राणियों के लिए ऊँचे स्थान में तृणादि को और नीचे स्थान में जलों को प्रकट किया । तुम अब तक सूर्य मण्डलमें सोते रहे । अब तुम वैसा कार्य क्यों नहीं करते ? ।११। हे ऋभु-गण ! जब तुम भुवनों को छिपाकर चारों ओर फिरते हों, तब तुम्हारे माता पिता कहां रहते हैं ? जो तुम्हारा हाथ पकड़ कर याचना करते हैं, तुम उन्हें वचन देते हो । जो तुम्हारी प्रशंसा करता है, उसे तुम अग्रणी बनाते हो ।१२। हे ऋभुओ ! सूर्य मण्डल में सोने के पश्चात् चैतन्य होकर तुमने पूछा कि 'किसने हमें जगाया ?' सूर्य ने कहा कि वायु ने तुम्हें जगाया ।' वर्ष भर बीत गया, अब फिर अपने कर्मोंको प्रकाशित करो ।१३। हे ऋभुओ ! तुमसे मिलने

को मरुद्गण आकाश से आ रहे हैं। अग्नि पृथिवी से और वायु अन्तरिक्ष में तथा वरुण जल रूप समुद्र मार्ग से चले आते हैं ।१४। (६)

सूक्त १६२

(ऋषि—दीर्घतमा: । अश्वः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद् वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य राति गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङ्जो मेम्यद् विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोलाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३
यद्धविष्यमृतृशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ।५।७

मित्र, वरुण अर्यमा, वायु, इन्द्र और मरुद्गण हमसे वियुक्त न हों। हम देवताओं के अत्यन्त वेगवान् अश्व के वीरतापूर्ण कर्मों का यज्ञ में वर्णन करते हैं। हम चमकते हुए वस्त्रों और सुवर्णयुक्त आभूषणों अश्वसे सुसज्जितके आगे विभिन्न वर्ण वाली सामग्रीले जाते हैं, वह इन्द्र और पूषाके लिये प्रिय हों ।२। सब देवगणसे योग्य पूषा का भाग आगे ले जाया जाता है, जिसे त्वष्टा अत्यन्त पुष्टिप्रद बनने के लिये प्रेरित करते हैं ।३। जहाँ मनुष्य नियत काल में देवगण के प्राप्त कराने योग्य अश्व को घुमाते हैं, वहाँ पूषा का भाग देवताओं के यज्ञ को प्रख्यात करता हुआ चलता है ।४। होता, अध्वर्यु, प्रह्वि प्रस्थाता, अग्नीत् ग्राव-स्तुत, प्रशस्ता ये सब अत्यन्त शोभित हुए हमारे हवियों वाले सस्वर यज्ञ को पूर्ण करें ।५। (७)

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६
उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७
यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद् वा घास्य प्रभृतमास्ये तृण सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद् वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥६
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तुत मेधं शृतपाकं पचन्तु ।१०।८

यूप काटने वाले, यूप ढोने वाले, यूप के लिये चषाल को गाढ़ने वाले और यज्ञ के लिये आवश्यक बर्तन तैयार करने वाले, सबका प्रयत्न हमको उत्साहजनक हो ।६। उज्ज्वल पीठ वाला अश्व देवगण की ओर मुख करके खड़ा है । मेरा स्तोत्र रुचिकर है । मेधावी ऋषि इसका समर्थन करते हैं । देवगण को पुष्ट करने के लिए हमने यह उत्तम मन्त्र तैयार किया है ।७। वेगवान् अश्व की रास और मुख में डाली हुई घास आदि अथवा अश्व की जो भी वस्तुयें हों, वे सब देवताओं की हों ।८। जो कच्चा भाग मक्खी जाती है, जो भाग तापदायक कर्मों में लग जाता है तथा जो भाग कार्यरत पुरुषों के हाथ में लग जाता है, वह सब देवगण के अधीन हो ।६। थोड़े पके अन्न और गन्धयुक्त खाद्य सामग्री को सिद्ध करने वाले उत्तम प्रकार से शुद्ध करके प्रस्तुत करें ।१०। (८)

यत् ते गात्रदग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद् भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ।१५।८

हे अश्व ! क्रोधाग्नि द्वारा, जलते हुए तेरे शरीर से जो अत्यन्त स्वेद रूप रस टपके, वह भूमिसात् न हो जाय, बल्कि उससे देवगण का उत्साहवर्द्धन हो ।११। अश्व को अत्यन्त क्रोधित देखते हैं, वे उसके सामने से हट जानेको कहते हैं । तब उसके उत्तम दिखाई देने के कारण सभी वीर उसे प्राप्त करने की याचना करते हैं, इससे भी अश्व स्वामी और वीर का उत्साह वर्द्धन होता है ।१२। मनको अच्छे लगने वाले, परिपाक करने वाले, सिंचन योग्य जो पात्र हैं, उनसे अश्व को सुभूषित करते हैं। १३। अश्व का भागना, बैठना, लेटना, जल पीना खाना जो कुछ कर्म हैं,वे सब देवताओंके अधीन हों ।१४। हे अश्व ! तुझे अग्नि का आँखों में घुस जाने वाला धुंआ कभी पीड़ित न करे । तुझ सुन्दर अश्व को देवगण स्वीकार करें ।१५।　　　　(८)

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६
यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७
चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ।।१९
मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत् ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहायं छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ।।२०
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद वाजी धुरि रासभस्य ।।२१
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान्।२२।१०

जो अश्वको वस्त्राभूषणों से सजाते हैं,वे देवगण को प्रसन्न करते हैं १६। हे अश्व ! तेरे हाँफने अथवा थम जाने पर तुझे जो कष्ट हुआ है, उसे मैं मंत्र द्वारा निवृत्त करता हूँ ।१७। हे वीरो ! वेगवान् अश्व की पीठकी पसलियों पर शस्त्र पहुँच सकता है इसलिये उसके शरीरको निवारण न करो । उसे अभ्यास द्वारा पूर्णशिक्षित बनाओ ।१८। हे अश्व ! चतुर पुरुष तुझपर नियन्त्रण रखे । तेरे अङ्गों को मैं कुशल नियन्ता के अधिकार में करूँ ।१९। हे अश्व ! चलते समय तुझे कोई पीड़ित न करे । तेरे शरीर में शस्त्र प्रविष्ट न हो। कोई मूर्ख मनुष्य लोभवश तेरे शरीरपर आघात न करे ।२०। हे अश्व ! तू मृत्युको प्राप्त न हो, पीड़ित भी न हो, उत्तम मार्गोंसे गमन करे । युद्ध में इन्द्र और मरुद्गण के अश्व तेरे साथी रहेंगे । अश्विदेवों के रथ में रासभ के स्थान पर भी कोई अश्व जोता जायगा ।२१। वह अश्व सुन्दर गवादियुक्त धनों से, एवं पुत्रादि से युक्त कराने वाला हो। अदिति हमारे पापों को दूर करें । यह अन्नयुक्त धन हमको बल प्रदान करे ।२२। (१०)

सूक्त १६३

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अश्वः । छन्द—त्रिष्टुप्)

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ।।१
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ।५।११

हे अश्व ! तुम्हारा जन्म भी कथन योग्य है । तुम अन्तरिक्ष या जल से निकलकर अत्यन्त शब्द करते हो । तुम्हारे बाज के समान पंख और हरिण के समान पैर हैं ।१। यम द्वारा दिये गये इस अश्व को त्रित ने जोड़ा । इन्द्र इस पर प्रथम बार सवारी की । गन्धर्व ने इसकी रास पकड़ी । हे देवताओ ! तुमने इसे सूर्य से प्राप्त किया ।२। हे अश्व ! तू यम रूप है, सूर्य रूप है और गोपनीय नियम वाला त्रित है । तू सोम से युक्त है । आकाश में तेरे बन्धन के तीन स्थान बताये जाते हैं ।३। हे अश्व ! आकाश, जल औप अन्तरिक्ष में तेरे तीन-तीन बन्धन स्थान बतलाये जाते हैं । तू ही वरुण है और जहाँ तेरा जन्म स्थान हैं, उसे बतलाते हैं ।४। हे अश्व ! ये तुमको पवित्र करने वाले स्थान हैं । ये तुम्हारे पदचिह्नों वाले स्थान हैं । यहाँ तुम्हारी कल्याणकारी रासें रखी हैं । यज्ञ-पालक इनकी रक्षा करते देखे जाते हैं ।५। (११)

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥६
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानलादिद् ग्रसिष्ठः ओषधीरजीगः ॥७
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।

देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥६
ईर्मान्तास: सिलिकमध्यमास: सं शूरणासो दिव्यासो अत्या: ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वा: ।१०।१२

हे अश्व ! मैंने तुम्हारे शरीरको अपने मनसे ही पहचान लियाहै। तुमको आकाश में उड़ते हुए देखा है। तुम धूल रहित मार्गों से जाने का यत्न करते हो। तुम द्रुत गतिसे चलते हुए सिरको ऊंचा उठातेहो ।६। हे अश्व! तुम्हारा श्रेष्ठ शरीर पृथिवी पर अन्नोंके जोतने के लिए घूमता है। जब मनुष्य तुम्हारे भक्षणार्थ तृणादि लाता है तब तुम उसे प्रसन्नता से खाते हो ।७। हे अश्व ! तुम्हारे पीछे रथ चलते हैं। मनुष्य, गौ आदि भी तुम्हारे पीछे ही चलते हैं। नारियों का सौभाग्य तुम्हारे पीछे चलता है। अन्य अश्व तुम्हारे साथ चलते हुए मित्र-भाव रखते हैं। देवगण तुम्हारे पीछे वीर्य, कर्म के प्रशंसक हैं ।८। इस अश्व का सिर सोने से सुसज्जित है। इसस पावों मैं लोहेका आवरण चढ़ा है। देवता भी इससे आर्कषित होते हैं। इन्द्र इस अश्व पर सर्व प्रथम सवार हुए ।६। जब यह घोड़ा भव्य गार्ग में चलता है तव उसके साथी अश्वोंके साथ चलती हुई कतार हंसों की पंक्ति जैसी नगती है। १०। (१२)

तव शरीरं षतयिष्ण्वर्वन् तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यान: ।
अज: पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्ति रेभ : ॥१२
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ।१३।१३

हे अश्व ! तू उड़ने में समर्थ है। तू वायु-वेग से चलता है। तू विविध स्थानों में भ्रमणशील है ।११। कुशल अश्व रणक्षेत्र की ओर जाता हुआ स्तुति के योग्य होता है। अन्य घोड़ा जो उसके साथ जन्मते हुए भी इसका बन्धु

रूप है, साथ चलता है । मेधावी वीर उसके साथ आगे बढ़ते हैं ।१२। ऐसा अश्व उत्तम स्थान को प्राप्त हुआ वीर देवताओं के पास पहुँचता है । उसे प्रदान करने वाला अश्व-स्वामी यजमान वरणीय धन प्राप्त करता है ।१३। (१३)

सूक्त १६४

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–विश्वेदेवाः प्रभृति । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती प्रभृति)

अस्य वामस्य पालितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥४
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानमेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ।५।१४

आह्वान योग्य, सुन्दर, सर्प के मध्यम भ्राता वायु और कनिष्ठ भ्राता अग्नि हैं । मैं यहाँ प्रजापालक सात किरणों से युक्त सूर्य को देखता हूँ ।१। एक पहिये वाले रथमें सात घोड़े जुतते हैं । इस अक्षय और तीन नाभि वाले पहिये को एक घोड़ा ले जाता है । सभी लोक इस पहिये के आश्रित हैं ।२। सात पहिये वाले समीपस्थ रथ को सात घोड़े चलाते हैं । किरण रूप सात बहनें इस रथ के आगे चलती हैं ।३। प्रथम जन्म वाले को किसने देखा ? उस अस्थि रहित ने अस्थि-युक्त को धारण किया । पृथिवीपर प्राण और रक्त उत्पन्न हुआ परन्तु आत्मा कहाँसे उत्पन्न हुई ? इस विषय को जानने के लिये विद्वान् के पास कौन जायगा ? ।४। मैं अज्ञानी हूँ । समझ में न आनेके कारण ही यह सब पूछता हूँ । नवयुवक बछड़ें के लिये विद्वानों ने सात सूत्र की

रस्सी प्रकट की, वे क्या है, ? (नवयुवक बछड़ेसे तात्पर्य ग्रह नक्षत्रादि का है और सात सूत्र की रस्सी का अर्थ सूर्य की आकर्षण शक्ति से हैं) ।५। (१४)

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षलिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यद् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ।१०।१५

मैं अज्ञानी होने से कारण पूछता हूँ जिसने इन छः लोकोंको स्थिर किया है, वे अजन्मा क्या एक ही हैं ? ।६। कौन इस आदित्य रूप पक्षी के स्थान का ज्ञाता है ? इनकी किरण रूप गौएँ तेजका दोहन करती हैं,वे जल पीने जाती हैं ।७। पृथिवी माता आकाशस्थ सूर्य को वृष्टि के लिये पूजती है । वह गर्भेच्छा से वर्षा रूप गर्भ से सींची गयी, तब मनुष्यों ने अन्न प्राप्त कर स्तुति की ।८। प्रदक्षिणा करती हुई पृथिवी गर्भभूत जल राशि के लिए ठहरी, तब वृष्टि रूप वत्स ने शब्द किया और बिश्व रूप वाली गौ शस्य श्यामला हुई ।९।ये आदित्य तीन माता और तीन पिताओं को धारण करता हुआ उच्च स्थान पर स्थित है । वे थकते नहीं । देवगण आकाश की पीठ पर बैठे हुए सूर्य के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं ।१०।　　　　　　　　　　　　　　　　　　(१५)

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षलर आहुर्रापितम् ॥१२
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४
साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षलिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः।१५।१६

सूर्य का बारह राशि रूप अरों से युक्त रथ-चक्र आकाश के चारों ओर बारम्बार फिरता है। वह कभी पुरानां नहीं होता। इस चक्रमें सात सौ बीस पुत्र रूप बन्धु स्थिर हैं।११। पाँच पैर और बारह रूप से युक्त जलों के स्वामी को आकाश के परले अर्द्ध भाग में स्थिर बताते हैं। अन्य व्यक्ति उन्हें सात पहिये और छः अरों वाले रथ पर सवार बताते हैं।१२। उस घूमते हुए पाँच अरों वाले रथ-चक्र में सब लोक स्थित हैं। उसका धुरा बहुत भार वहन करने पर भी क्षीण नहीं होता।१३। अक्षय चक्र घूमता हुआ सूर्य का नेत्र चमकता है। उसीमें सब भुवन स्थित हैं।१४। सहजाता ऋतुओं में अधिक मास वाली सातवीं ऋतु अकेली ही रहती है। छः ऋतु ही परस्पर जुड़ी हुई हैं और क्रमशः गमन करती हैं।वे रूप भेदसे युक्त हुई अपने स्वामी के निमित्त घूमती हैं।१५। (१६)

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१६
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७

अव: परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमान: क इह प्र वोचद् देवं मन: कुतो अधि प्रजातम् ॥१८
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहु:
इन्द्रश्च या चक्रथु: सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।२०।१७

किरणें स्त्री रूप होकर भी पुरुष के समान हैं। उन्हें नेत्रवान् मेधावी ही जानते हैं। जो जान लेते हैं, वे पितामह अनुभवी हैं ।१६। आकाश से नीचे पृथिवी के ऊपर वत्स को धारण करती हुई किरणें ऊपर उठती हैं। वे कहाँ जाती और कहाँ सोती है ।१७। जो आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी पर स्थित अग्नि की उपासना करते हैं, वे अवश्य ही विद्वान् हैं। इन बातों को किसने बताया ? कहाँ से यह दिव्याचरण वाला मन उत्पन्न हुआ ।१८। जो इधर आते हैं, उधर जाने वाले भी कहे जाते हैं। जो उधर जाते हैं उन्हें इधर आने वाला कहा जाता है। सोम और इन्द्र ने जो लोक बनाये वे प्राणी मात्र का भार वहन करते हैं ।१९। दो पक्षी वृक्षों पर रहते हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट फल खाता है और दूसरा कुछ नहीं खाता केवल देखता है। (जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी है। एक सांसारिक भोगों में लिप्त है और दूसरा केवल देखता है।) ।२०। (१७)

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपा: स मा धीर: पाकमत्रा विवेश ॥२१
यस्मिन् वृक्षे मध्वद: सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहु: पिप्पलं तन्नोन्नशद्य: पितरं न वेद ॥२२
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशु: ।२३
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेय वाकं द्विपदा चतुष्पदा ऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ।२५।१८।

जिसमें प्राणी अमर भाव के चिन्तनार्थ निरन्तर स्तुति करते हैं, वह लोक पालक सबका स्वामी मुझ मूर्ख में भी विद्यमान है ।२१। जिस वृक्ष में सभी मधुर रसके इच्छुक निवास करते और प्रजोत्पत्ति में लगे रहते हैं, उसके अग्र-भाग में स्वाष्टि फल लगे बताते हैं । जो व्यक्ति पिता को नहीं जानता, वह इसके फल को नहीं पा सकता ।२२। पृथिवी पर गायत्री छन्द, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द और आकाशमें जगती छन्द जिसने स्थापित किया, उसे जो जानता है, वह देवत्व प्राप्तकर चुका है ।२३। गायत्री छन्दसे जिन्होंने ऋचाएँ बनायीं ऋचाओं से साम को रचा, त्रिष्टुप् छन्द से वायुर्वाक्य बनाया । दो पद और चार पद वाली वाणी के वाक् रचना की । अक्षर से सात छन्द बनाये ।२४। जगती से आकाश में जलों को स्थापित किया, रथन्तर साम में सूर्य को देखा । गायत्री के तीन चरण हैं, अतः वह बल और महत्व में सबसे बढ़ी हुई है ।२५। (१८)

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो ऽभीद्धो धर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्सूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं धर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।३०।१९

मैं इस सरलता से दुही जाने वाली गौ को बुलाता हूँ । कुशल दोहन-कर्त्ता इसे दुहे । सविता हमको उत्साहित करें । मैं उनके तेजके लिए आह्वान

करता हूँ ।२६। बछड़े की इच्छा से रम्भाती हुई दुग्धवती धेनु हमको प्राप्त हुई। वह अहिंसा के अयोग्य, अश्विनी कुमारोंके लिये दूध दे, सौभाग्य लाभके लिए बढ़े ।२७। आँखें मींचते हुए बछड़े के पीछे शब्द करती हुई धेनु बछड़े के मुख को चाटती है। उसके होठों को थन से लगाने की इच्छासे बढ़ती हुई रम्भाती है। उसके थनों में दूध पूर्ण हो जाता है ।२८। बछड़ा निःशब्द गौ के चारों ओर घूमता है। गौ रम्भाती हुई अपनी पशु चेष्टाओं से मनुष्य को लजाती परन्तु उज्जवल दूध देकर उसे प्रसन्न करती है ।२९। चञ्चल मन वाला, श्वास युक्त जीव अपने घर में अविचल रूप में रहता है। मरण धर्म वालों के अन्न से युक्त होता हुआ वह अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ रहता है ।३०।

(१६)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ।।३१
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ।।३२
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ।।३३
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ।।३४
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।३५।२०

मैंने इन रक्षक आदित्य को अन्तरिक्ष में गमन करते देखा है। वे किरणयुक्त वस्त्रों से आच्छादित हुए सब लोकों में विचरते हैं ।३१। जिसने रचा, वह भी इसे नही जानता। जिसने इसे देखा, उससे वह छिपा है। वह मातृ गर्भ में टिका हुआ बहुत प्रजा वाला नाश को पहुँचा है ।३२। आकाश

मेरा पालनकर्त्ता पिता है, विस्तीर्ण पृथिवी मेरी माता है। आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष योनि रूप है, वहाँ पिता गर्भस्थापन करता है।३३। मैं तुम से पृथिवीका छोर पूछता हूँ। संसार की नाभि कहाँ है? यह जानना चाहता हूँ। अश्व का वीर्य कहाँ है और वाणी का परम स्थान कौन सा है? ।३४। वेदी पृथिवी का अन्त हैं। यज्ञ संसार की नाभि है सोम अश्व का वीर्य है। ब्रह्मा वाणी का परम स्थान है।३५। (२०)

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥३६
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद्वे वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते इमे समासते ॥३९
सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती।४०।२१

लोक के वीर्य रूप सात आधे गर्भ विष्णु की आज्ञा से नियमों में रहते है। बुद्धि और मन के द्वारा लोक को सब ओर से घेर लेते हैं।३६। मैं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ। मैं मूर्ख और अर्द्ध-विक्षिप्त के समान हूँ। जब मुझे ज्ञान का प्रथमांश प्राप्त होता है, तभीमैं किसी वाक्य को समझ पाता हूँ।३७। अमर, मरणधर्मा के साथ रहता है। अन्नमय शरीर पाकर पाकर वह कभी ऊपर, कभी नीचे जाता है। ये दोनों विरुद्ध गति वाले हैं। संसार उनमें एक को पहचानता है, परन्तु दूसरे को नहीं जानता। जीव अमर है और शरीर मर जाता है। संसार शरीर को तो भली प्रकार जानता है पर जीव के विषय में भ्रम में पड़ा है।३८। ऋचाएँ उच्च स्थान को प्राप्त हैं। सब देवता उन पर आश्रय लिये हुए हैं। जो इस बात को नहीं जानता

वह ऋचा से क्या लाभ उठाएगा ? जो इसे जानता है, वही प्रसन्न रहता है ।३९। हे सिंह के अयोग्य सुन्दर भाग्य वाली धेनु ! तू तृण सेवन करने वाली है । इनको भी भाग्यशाली बना । तू घास खाती हुई निर्मल जल पीने वाली हो ।४०। (२१)

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ।।४१
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति ।।४२
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।।४३
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ।।४४
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।४५
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।४६।२२

जलों को प्रेरणा करने वाली बिजली शब्दवान् हुई । वह उन्नत आकाश में एक, दो, चार, आठ और नौ पदों से सहस्र अक्षर वाली हुई है।४१। उसी बिजली से समुद्र प्रवाहित हैं उससे चारों दिशाएँ जीवित हैं। उससे मेघ जल-वर्षा करते हैं और उसी से संसार प्राणवान् है ।४२। मैंने गोबर से उत्पन्न धूम को दूर से देखा । चारों दिशाओं में व्याप्त धूम के मध्य अग्नि को देखा । ऋत्विजों ने यहाँ सोम पान किया । यह उनका प्रथम कर्म है ।४३। केशयुक्त तीन देवता नियम क्रम से दर्शन देते हैं । एक वर्ष में होता है, एक बलों से संसार को देखता है और एक का रूप दिखाई नहीं पड़ता, केवल गति ही दिखाई पड़ती है (यहाँ सूर्य अग्नि और वायु से अभिप्राय है ।) ।४४। वाणी चार प्रकार की है

विद्वान् उसके ज्ञाता हैं । उसके तीन पद अज्ञात हैं और चौथे पद को मनुष्य बोलते हैं ।४५। उसे इन्द्र, मित्र या वरुण कहते हैं । वही आकाश में सूर्य है । वही अग्नि, यम और मातरिश्वा हैं । मेधावी जन एक ब्रह्म का अनेक रूप में वर्णन करते हैं ।४६। (२२)

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ।।४७
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवो ऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ।।४८
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ।।४९
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।५०
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ।।५१
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ।।५२।२३

काले मेघ रूप घोंसले में किरण रूप सुनहरे पक्षी जल को प्रेरित करते हुए आकाश में उड़ते है । जब वे आकाश से लौटते हैं तब पृथिवी जल से भीग जाती है ।४७। जिस रथ के बारह घेरे, एक चक्र और तीन नाभियाँ हैं, उस रथ का ज्ञाता कौन है ? उसमें तीन सौ आठ मेखें ठुकी हैं । वे कभी ढीली नहीं होतीं (इसका आशय वर्ष और उसके दिनों की संख्या से हैं) ।४८। हे सरस्वती ! तुम्हारा शरीरस्थ गुण सुखदायक और वरणीय वस्तुओं का पोषक है । रत्नधारक और दानशील है । उसे हमारी ओर प्रेरित करो ।४९। यजमानों ने अग्नि से यज्ञ किया । वही प्रथम धर्म था । वे कर्मवान् अपने महत्वसे स्वर्ग पासके । वहीं साध्य देवता निवास करते है ।५०। जल का एक ही रूप है । यह कभी ऊपर जाता, कभो नीचे आता

है। मेघ वर्षा द्वारा पृथिवी को तृप्त करते हैं और अग्नियाँ आकाश को प्रसन्न करती हैं।५१। जलों और औषधियोंके कारणभूत, सम्मुख प्राप्त हुए स्तोताओं के लिए मैं वर्षा से तृप्त करता हूं।५२। (२३)

सूक्त १६५ [तेईसवाँ अनुवाक]

(ऋषि--अगस्त्य-। देवता--इन्द्रादयः। छन्द--त्रिष्टुप्)

कया शुभा सवयसः सनीलाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः।
कया मती कुत एतास एते ऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ॥३
ब्रह्माणि मे मतयः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥४
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ।५।२४

(इन्द्र) समवयस्क और सम स्थान वाले मरुद्गण समान शोभा से युक्त हैं। ये किस मत से, किस देश से आये हैं? क्या ये वीर धन लाभ की इच्छा से बल की पूजा करते हैं।१। तरुण मरुद्गण किस की हवियाँ ग्रहण करते हैं? उनको यज्ञ से कौन हटा सकता है? अन्तरिक्ष में विचरने वाले बाज पक्षी के समान इन मरुतों का किस श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा स्तवन करें।२। (मरुद्गण) हे श्रेष्ठ कर्म वालों का पालन करने वाले इन्द्र! तुम अकेले कहाँ जाते हो? तुम्हारा अभीष्ट क्या है? हे शोभनीय! तुम सबकी बात पूछते हो, हमसे जो कहना चाहो, हमसे जो कहना चाहो, कहो।३। (इन्द्र) ये स्तुतियाँ और निष्पन्न सोम मुझे सुख देते हैं। मेरा दृढ़ वज्र शत्रुओं पर व्यर्थ नहीं जाता।

मनुष्य मेरी पूजा करते और उनके स्तोत्र मुझे प्राप्त होते हैं, ये दोनों अश्व मुझे ले जाते हैं ।४। (मरुद्) हे इन्द्र ! निकट रहने वालों के साथ रहते हुए हम अपनी शक्ति से शरीरों को सजाते हैं । अपने बल से इन अश्वों को रथ में जोतते हैं । तुम हमारे स्वभाव को जानते ही हो ।५। (२४)

क्व स्या वो मरुत: स्वधासीद् यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नै: ॥६
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानोभिर्वृषभ पौंस्येभि: ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम ॥७
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्रा: सुगा अपश्चकर वज्रबाहु: ॥८
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदान: ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुसि प्रवृद्ध ॥९
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ।१०।२५

(इन्द्र) हे मरुद्गण ! वृत्र वध के कार्य में तुमने मुझे अकेला ही लगाया तब तुम्हारा पूर्ववत् स्वभाव कहाँ था ? मैं विकराल बली और दुर्जय हूँ । मैंने अपने शत्रुओं पर वज्र से विजय प्राप्त कर ली है ।६। (मरुद्) हे वीर ! तुमने हमारे साथ मिलकर बहुत वीरकर्म किया है । हे महाबली इन्द्र ! हम मरुद्गण भी अपने मनोबल से जो चाहें वह कर सकते हैं ।७। (इन्द्र) हे मरुतो ! मैंने अपने क्रोध के बल से वृत्र का वध किया । मैंने ही वज्र धारण कर मनुष्यों के लिए जल-वृष्टि की ।८। (मरुद्) हे ऐश्वर्य-शालिन् ! हे इन्द्र ! तुम से बढ़कर कोई धनी नहीं है । तुम्हारे समान कोई प्रसिद्ध देवता नहीं है । तुम्हारे कर्मों की समानता न कोई पहले कर सका और न अब कर सकता है ।९। (इन्द्र) हे मरुद्गण ! एक मेरा बलही सर्वत्र रहता है । मैं अत्तन्त मेधावी और प्रसिद्ध उग्रकर्मा हूँ । मैं जो चाहूँ वही करनेमें समर्थ हूँ जो धन संसार में हैं, उसका मैं स्वामी हूँ ।१०। (२५)

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ।११
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।१५।२६

(इन्द्र) हे मरुतो ! तुम्हारे स्तोत्र से आनन्दित हुआ हूँ । वह स्त्रोत तुमने मुझे पूज्य मान कर रचा है । मैं तुम्हारा मित्र अभीष्ट फल देने वाला हूँ ।११। (इन्द्र) हे मरुतो ! तुमने अनिद्य यश और श्रेष्ठ बलों को धारणकर मेरे निमित्त प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया । मैं अब भी तुम्हारे कर्मोंसे हर्षित हूँ ।१२। (अगस्त्य) हे मरुतो ! यहाँकौन तुम्हारी स्तुति करता है ? तुम सबके मित्र हो। अपने मित्र उपासक के पास जाओ। तुम उत्तम धनों की प्राप्ति में कारणभूत बनते हुए कर्मों की प्रेरणा करो ।१३। सेवा करने वाले से प्रसन्न होकर पारितोषक देने के समान इन्द्र ने मुझे कवित्व प्रदान किया । हे मरुद्-गण ! तुम स्तुतिकर्त्ता के सामने आओ ।१४। हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य ऋषि का यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त हो । तुम मेरे शरीर को बल देने के लिए अन्न के सहित पधारो । हम अन्न, बल और दान बुद्धि को प्राप्त करें ।१५। (२६)

॥ तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त १६६

(ऋषि–मैत्रावरुणाऽगस्त्यः । देवता–मरुतः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ।।१
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीलन्ति क्रीला विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ।।२
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव रजांसि पयसा मयोभुवः ।।३
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ।।४
यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन् भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ।५।१

हे महान् गर्जनशील मरुतो ! तुम इन्द्र के ध्वज रूप एवं वेगवान् गण हो । हम तुम्हारे पुरातन महत्व को कहते हैं । हे समर्थ ! तुम तेजवन्त हुए योद्धाओं के समान वीर कर्म करते हो ।१। युद्धमें शत्रुओं का धर्षण करने वाले, शिशुके समान मधुर क्रीड़ायुक्त इन्द्र-पुत्र मरुद्गण नमस्कार करने वालेकी रक्षा करते हैं वे हविदाता को दुःखी नहीं होने देते ।२। मृत्यु से रक्षा करने वाले मरुद्गण हविदाताको अत्यन्त धन देते हैं । उसके प्रदेश को मित्रों के सम,वर्षा से सींचते हैं ।३। हे मरुद्गण ! तुमने अपने बल से देशों का भ्रमण किया है । तुम्हारे वाहन आगे उड़ते हैं,तब सब लोक कम्पित होते हैं । हथियार उठाकर चलने वाले वीर को देखकर सब काँपते हैं, वैसे ही यह घर तुम्हारी गति से काँपते हैं ।४। हे मरुतो ! तुम तेजवान् गतिमान् मनुष्यों के हितकारी और पर्वतों को गुँजाने वाले हो । तुम आकाश की पीठ कँपाते हो । तुम्हारे डर से वृक्ष रथ पर चढ़ी हुई स्त्री के समान इधर से उधर हिलते हैं ।५।   (१)

यूय न उग्रा मरुतः सुचेतुना ऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो ऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥८
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥९
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
असेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे ।१०।२

हे विकराल मरुतो ! हमारे कल्याण की इच्छा से अपनी बुद्धि को दया की ओर प्रेरित करो जब तुम्हारी विद्युत रूपी तलवार चमकती है, तब वह बर्छी के समान पशुओं को नष्ट करती है । ६ । जिनका दिया हुआ धन स्थिर रहता है, वह कभी क्षीण नहीं होता । जिनकी यज्ञों में स्तुति की जाती है, वे मरुद्गण सोम के लिये इन्द्र की प्रशंसा करते हुए उनकी शक्ति और कर्मों के जानने वाले हैं ।७। हे विकराल कर्म, बल वाले मरुद्गण ! तुमने जिस पर कृपा की है, उसे तुम असंख्य घातों से बचाते हो और उसकी पुत्रादि साधन द्वारा रक्षा करते हो ।८। हे मरुद्गण ! सभी कल्याण, समस्त बल तुम्हारे रथ पर स्थापित हैं । तुम्हारे कन्धे पर स्पर्धायुक्त आयुध रहते हैं । तुम्हारा धुरा दोनों पहियोंको ठीक प्रकार घुमाता है ।९। हे मरुद्गण तुम्हारी भुजाएँ मनुष्य के हित साधन में तत्पर रहती हैं । तुम्हारा हृदय-देश कल्याणकारी स्वर्णहारों से सुसज्जित और कन्धे भयङ्कर आयुधों से युक्त हैं । पक्षी जैसे पंख धारण करते हैं वैसे ही तुमने शक्ति धारण कर रखी है ।१०। (२)

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः
।११

तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२
तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत् ततनन् वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।१५।३

महान् महिमा वाले बलवान् ऐश्वर्यवान्, आकाश के नक्षत्रों के समान दैदीप्यमान, गम्भीर,ध्वनियुक्त, सुन्दर जिह्वा और मधुर गान वाले मरुद्गण गर्जनशील हुए, इन्द्र के सहयोगी हैं ।११। उत्तम प्रकार से प्रकट हुए मरुतो ! तुम्हारा नाम अदिति के नियम के समान स्थिर है । इसलिए तुम महान् हो । जिस उत्तम कर्म वाले को तुम धन देते हो, उसके धनकों इन्द्र भी नहीं छीनते ।१२। हे अविनाशी मरुतो ! तुमने अपने बन्धु भाव के कारण प्राचीन स्तोत्रों की भली भाँति रक्षा की है । तुमने मनुष्यों की स्तुति स्वीकार कर उन्हें कर्मों का ज्ञान दिया ।१३। हे वेगवान मरुद्गण ! हम तुम्हारी कृपासे चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त हों । जिन कर्मों से मनुष्य विजयी होता तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है, अपनी उस अभिलाषा को मैं इन यज्ञों से प्राप्त करूँ ।१४। हे मरुद्-गण ! मान-पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र और वाणी तुम्हारे निमित्त हों। तुम हमारे शरीर को बल देनेके लिए अन्नके साथ आओ । हम अन्न बल और दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ।१५। (३)

सूक्त १६७

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः, मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्,)

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद् दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः परमाः समुद्रस्य चिद् धनयन्त पारे ॥२
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा समावती विदथ्येव सं वाक् ॥३
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४
जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात् त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ।५।४

हे अश्व सम्पन्न इन्द्र ? तुम्हारे असंख्य रक्षा-पालन हमको प्राप्त हों बहुत-सा अन्न और प्रचुर धन राशि हमको असीमित बल के साथ मिलें ।१। अत्यन्त मेधावी मरुदगण अपने रक्षा-साधनों और महान् धन के साथ हमारी ओर पधारें। उनके घोड़े समुद्र के पार हिन-हिनाते हुए प्रतीत होते हैं । २। मनुष्यों की गुप्त रूप से रहने वाली पत्नीके समान उन मरुद्गण की चमकती हुई स्वर्णिम कटार, म्यानमें रहती और निकलती है । वह विद्युत रूपा विदुषी के समान ओजस्विनी वाणी से युक्त है (बिजली कभी चमकती, कभी छिपती और कभी कड़कती है ।) ।३। द्रुत गतिमान् मरुद्गणको यह विद्युत् एकान्त निवासिनी पत्नी के समान अथवा यज्ञ में उच्चारण की जाने वाली वेदवाणीके समान प्राप्त होती है ।४। साधारण नारी के समान इस दमकती हुई विद्युत नें मरुद्गण को वरण किया । तब वह सूर्य के समान गति वाली मरुद्गण को प्राप्त हुई ।५। (४)

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६
प्र त विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो ऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥९
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१०
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।११।५

हे मरुद्गण ! तुमने अत्यन्त तेज वाली युवावस्था प्राप्त दामिनी को अपने रथ पर चढ़ाया उस समय सोम अभिषवकर्त्ता हवि देते हुए स्तुति गान करने लगे ।६। इन मरुद्गणके कथन योग्य पराक्रमका मैं यथावत् वर्णन करता हूँ । उसकी मानिनी वर्षणाभिलाषिणी, दृढ़ विचार वालीहै । वह मानिनी सौभाग्य वाली हुई प्रजाओं को धारण करती हैं ।७। मित्र और वरुण यज्ञ-निंदकों से रक्षा करते हैं । अर्यमा उनको नष्ट करते हैं । हे मरुद्गण ! जब तुम्हारा जल छोडने का समय आता है तव निश्चल मेघ भी डिग जाते हैं ।८। हे मरुद्गण ! तुम्हारा बल असीमित है । उसका पता न पास मे लगता है, न दूर से । तुम अत्यन्त सामर्थ्यवान हो । तुम जल के समान बढ़कर शक्तिशाली हुए शत्रुओं को परास्त करते हो ।९। आज हम इन्द्र के अत्यन्त प्रिय बनेंगे । कल हम उन्हीं को बुलावेंगे। पहिले भी उनको बुलाते रहे हैं । वे महान् इन्द्र हमारे अनुकूल हों ।१०। हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य का स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर को बल देने के निमित्त ऐश्वर्यों सहित यहाँ आओ और अन्न, बल तथा दानशील स्वभाव को प्राप्त कराओ ।११। (५)

सूक्त १६८

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—मरुतः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृलहानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥४
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ।५।६

हे मरुद्गण ! सभी यज्ञों में तुम अपने एकाग्र मन वाले यजमान को प्रत्येक स्तोत्र में बढ़ाते और उसे देवकर्मों के निमित्त धारण करते हो। मैं आकाश, पृथिवीकी रक्षाके लिए श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा तुम्हें अपनी ओर बुलाता हूँ ।१। हे मरुतो ! तुम स्वयं उत्पन्न, स्वयं बलशाली अन्नके लिये प्रकट होते हो। वे जल की लहरों के समान तथा पयस्विनी गौओं के समान दान करतेहैं ।२। उत्तम शाखा वाले सोम पीने के लिए अत्यन्त आनन्दप्रद होते हैं, वैसे ही मरुद्गण कल्याणकारी हैं। उनके कन्धों पर आयुध तथा तथा हाथों में कङ्कन और कटार सुशोभित है ।३। परस्पर मिले हुए मरुद्गण आकाशसे आते हैं। हे अविनाशी मरुतो ! अपने ओजस्वी शब्दों से हमारा उत्साह वर्द्धन करो। अनेक यज्ञों में आने वाले तुम दृढ पर्वतों को भी कम्पित करते हो ।४। हे आयुधोंसे सुमज्जित मरुतो ! तुम्हें कौन प्रेरणा देता है। जैसे मेघ स्वयं चलता है, वैसे ही तुम स्वयं परिचालित होते हो। यजमान तुम्हें अन्न प्राप्ति के लिये बुलाता है ।५। (६)

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६
सातिर्नं वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥८

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥६
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।१०।७

हे मरुद्गण ! उस मेघ मण्डल का आदि अन्त किधर है? जब तुम तृणों के समान मेघों को छिन्न-भिन्न करते हो तब जलों को उनसे पृथक् कर पृथिवी पर वर्षा करतेहो ।६। हे मरुद्गण ! तुम्हारे रथा-साधन सशक्त चमकते हुए दृढ़ तथा शत्रुओं को पीस देने वाले हैं । तुम्हारा दान यजमान को दक्षिणा के समान कल्याणप्रद और वर्षा के समान स्थायी प्रभाव वाला है ।७। मेघों के गर्जन की प्रतिध्वनि करती हुई नदियाँ वेगवती होती हैं । विद्युत् नीचे मुखकर के सुस्काती हैं और मरुद्गण पृथिवी पर जल-वर्षा करते हैं ।८। पृश्नि ने महा-युद्ध के लिए चपल मरुदगण को प्रसव किया । उन समान रूप वाले मरुतों ने जल प्रकट किया और मनुष्यों ने बलदाता अन्न के दर्शन किये ।६। हे मरुद्-गण ! मान के पुत्र मान्दार्य कविका यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर को बल देने वाले अन्न के सहित यहाँ आओ । हम अन्न, बल और दानशील वृद्धि को प्राप्त करें ।१०। (७)

सूक्त १६६

(ऋशि--अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । चतुष्पदा विराट्)

महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान् महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नः वेधो मरुतां चिकित्वान् त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥१
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीलहस्य प्रधनस्य सातौ ॥२
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ।।४
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणोतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृलयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ।५।८

हे रचना करने वाले इन्द्र ! तुम उद्वेग और क्रोध से बचाते हो । तुम मरुतों के स्वामी हो । हम पर कृपा करो और सुखी बनाओ ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे दानको जानने बाली प्रजाएँ तुम्हें प्राप्त होती है । मरुतों की सेना युद्ध में तुम्हें अत्यन्त युद्ध साधन प्राप्त कराती है ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध आयुध वज्र मेघ की ओर जाता है मरुद्गण हमारे लिए जलों को गिराते हैं । जैसे अग्नि काष्ठ में शीघ्र चलती है और जल टापुओं के चारों ओर रहते हैं, वैसे ही मरद्गण इसको अन्नोंसे पूर्ण करते हैं ।३। हे इन्द्र ! दक्षिणाके समान बड़ा हुआ जो धन अपने मित्र को दिया है, वही धन हमको दो । मधुर दुग्धसे जैसे स्त्री के स्तन पुष्ट होते हैं वैसे ही हमारी स्तुतियों से तुम हमें अन्नादि से पुष्ट करो ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारा धन अत्यन्त सत्यताप्रद, तुष्टिप्रद तथा आगे बढ़ाने वाला हो । जो मरुद्गण प्राचीन समय से नियमों पर दृढ़ रहते आये हैं वे हम पर अत्यन्त अनुग्रह करें ।५। (८)

प्रति प्र याहीन्द्र मीलहुषो नॄन् महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ।।६
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः । ७
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।८।९

हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी मेघों के पास जाकर अपना पुरुषार्थ प्रकट करो । मरुतों के वाहन मेघों पर आक्रमण करने को प्रस्तुत है ।६। चित्र-विचित्र द्रुतगामी मरुतों का गर्जन सुनाई देता है । अधम योद्धा को मारने

के समान मरुद्गण शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ।७। हे इन्द्र ! मरुतों के सहित आकर मान-पुत्रों के निमित्त सबके उत्पत्तिकर्त्ता जलों को गवादि सहित प्रकट करो । तुम स्तुत्य देवगण के साथ स्तुति किये जाते हो । हम अन्न बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ।८। (६)

सूक्त १७०

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप् ।)

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनो ऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥३
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥४
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वा ध प्राशान ऋतुथा हवींषि ।५।१०

(इन्द्र) आज और कल कुछ नहीं है । जो नहीं हुआ उसे कौन जानता है ? जिन मनुष्यों का चित्त चंचल है, वे चिंतन किये हुए को भी भूल जाते है ।१। (अगस्त्य) हे इन्द्र ! तुम क्या मुझे मारना चाहते हो ? मरुद्गण तुम्हारे भाई है उनके साथ भले प्रकार यज्ञ-भाव प्राप्त करो । हमको युद्ध-काल में नष्ट मत करना । २ । (इन्द्र) अगस्त्य ! मित्र होकर हमारा अनादर क्यों करते हो ? हम तुम्हारे मन को जानते हैं । तुम हमें देना नहीं चाहते ।३। ऋत्विजों ! वेदी को सजाओ । अग्नि को प्रदीप्त करो फिर हम अमृत के समान गुण दाता यज्ञ का विस्तार करें । ४ । (अगस्त्य) हे धनपते ! तुम धनों के स्वामी हो । हे मित्रपते ! तुम मित्रों के

आश्रय रूप हो । हे इन्द्र ! तुम मरुतों के साथ समानता वाले हो, हमारी हवियों को ग्रहण करो ।५। (१०)

सूक्त १७१

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रोमरुतः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेलो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥१
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस भद् वृधासः ॥२
स्तुतासो नो मरुतो मृलयन्तून स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्य हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृलता नः ॥४
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेलाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।११

मरुतों ! मैं नमस्कार करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ । तुम वेगवानों से दया-याचना करता हूँ । तुम स्तुतियों से प्रसन्न होकर क्रोध को शांत करो । अपने रथ से घोड़ों को खोल दो ।१। हे मरुद्गण ! नमस्कारों से युक्त तुम्हारा वह स्तोत्र हृदयसे रचा गया और मनमें धारण किया गया है । इसलिये इसे स्वीकार करते हुए स्नेहवश यहाँ आओ ।तुम निश्चयही हव्यान्न को बढ़ाते हो ।२। स्तुति किये जाने पर मरुद्गण हम पर कृपा करें । स्तुति करने पर इन्द्र भी शाँतिदाता हों । हे मरुतो ! हमारी आयु के दिन रमणीय सुख से युक्त, श्रेष्ठ और विजय-पूर्ण रहें ।३। हे मरुद्गण ! हम इन बलवान इन्द्र के डर से भागते हुए कांपते हैं । तुम्हारे लिए जो हव्य तैयार रखा था, उसे हमने

दूर कर दिया । अब तुम हम पर कृपा करो ।४। हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम्हारे बल से प्रेरित हुई उषायें नित्य खिलती और प्राणियों को जगाती हैं । तुम विकराल कर्म वाले, मरुतों के साथ हमारे लिए अन्न धारण करो ।५। हे अजेय इन्द्र ! तुम उन मेधावी मरुतों सहित अपने क्रोध को शांत करो । शत्रुओं को नष्ट करते हुए हमारी रक्षा करो । हम अन्न बल प्राप्त करें और हमारा स्वभाव दानशील हों ।६। (११)

सूक्त १७२

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—मरुतः । छन्द—जगती ।)

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥१
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥२
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान् नः कत जीवसे ।३।१२

हे कल्याणकारी मरुतो ! तुम्हारा आगमन हमारी रक्षा का प्रत्यक्ष कारण बने ।१। हे कल्याण दाता मरुद्गण ? तुम्हारे विनाशक अस्त्र हमसे दूर रहें । जिस आयुध को फेंकते हो, वह हमसे दूर गिरे ।२। हे मङ्गलमय मरुद्गण ! तृण के समान अवनति पर प्राप्त होनेपर भी हमारी सन्तान की रक्षा करना । हमें ऊँचा उठाओ जिससे हम पूर्ण आयु तक जीवित रह सकें ।३। (१२)

सूक्त १७३

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः ।—विराट् स्थाना)

गायत् साम नभन्य यथा वेरर्चाम तद् वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥१
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥२

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ॥३
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुरम्यो रथेष्ठाः ॥४
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ।५।१३

गायक पक्षी के समान दिव्य सोम को पावे । हम उससे ज्ञान का प्रकाश करते हुए उसका सम्मान करें । हिंसा के रहित पयस्विनी गाएँ कुश पर विराजमान इन्द्र की सेवा करती हैं ।१। हविदाता यजमान अध्वर्युओं के साथ हव्य देते हुए इन्द्र को पूजते हैं । हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूज्य हो । तुम्हारी स्मृति की आकांक्षा से मनुष्य होता यज्ञानुष्ठान करते हैं ।२। होता रूप सूर्य चारों ओर व्याप्त हैं । वे शरद् से पूर्व गर्भ-रूप अन्न को पृथिवी में धारण करते हैं । अश्व की तरह शब्द करते हुए अन्न युक्त, आकाश और पृथिवी के मध्य दूत के समान कार्य करते हैं ।३। इन्द्र के निमित्त यह हव्य अधिक रुचिकर किया है । यजमान श्रेष्ठ स्तोत्रों को अर्पित करते हैं । अश्विनीकुमारों के समान तेजस्वी रथी इन्द्र इन्हें स्वीकार करें ।४। हे मनुष्यो ! उस महाबली स्थिर इन्द्र की स्तुति करो । वे सबसे अधिक पराक्रमी तथा अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं ।५। (१३)

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥७
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत् त आसु मदन्ति देवाः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ॥८
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।

असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥९
विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ।१०।१४

जो इन्द्र अपनी महिमा से अग्रगण्य है उनकी पूर्ति के लिए आकाश और पृथिवी भी पर्याप्त नहीं है। उन इन्द्र ने पृथिवी को बालों के समान और आकाश को मुकुटके समान धारण किया है।६। हे वीर इन्द्र! पृथिव्यादि लोक तुम एक चित्त वाले सत्पुरुषों को वरण करने योग्य वीरको सुसज्जित करते हैं और तुम्हारे उपास्य को अन्नादि से युक्त करते हैं।७। हे इन्द्र! सोमकी आहुतियाँ अन्तरिक्षमें व्याप्त होकर प्रजा को सुखी करें। ये स्तुतियाँ तुम्हें प्रसन्न करती हैं तब वाणी तुम्हारी सेवा करती है। तुम स्तोताओं की स्तुतियों की कामना करतेहो।८। हे स्वामिन! तुम वही करो, जिससे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और हमारी स्तुतियां तुमसे अभीष्ट प्राप्त करा सकें। तुम हमारी स्तुतियों को सुनते हुए कर्म सम्पादन कराने वाले बनो।९। जैसे प्रशंसा करने पर स्पर्द्धी मनुष्य सदय हो जाता है, वैसे ही वज्रधारी इन्द्र हमारे प्रति हों। जैसे नगर के योग्य अधिपति के सुशासन से सभी उनकी स्तुति करते हैं वैसे हम इन्द्र की पूजा करेंगे।१०। (१४)

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद् यस्य मीलहुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।१३।१५

यदि कोई व्यक्ति मन में कुटिल हुआ यज्ञ में इन्द्र की पूजा करता है। तो लम्बे मार्ग में प्यासे को शीघ्र जल प्राप्त न होने के समान उस कुटिल मन वाले का यज्ञ फल की ओर नहीं जाता।११। हे बली इन्द्र! तुम युद्ध में हमसे वियुक्त न होओ। देवगण के साथ तुम्हारा हव्य भाग भी प्रस्तुत है।

तुम्हारे साक्षी मरुद्गणको भी हम हवि देते हुए पूजते हैं ।१२। हे अश्वों से युक्त इन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारा ही है । इसके द्वारा हमारे मार्गपर आओ । कल्याण के निमित्त हमारी ओर घूमो । हम अन्न बल की प्राप्ति करते हुए उदार स्वभाव वाले हों ।१३।   (१५)

सूक्त १७४

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥१
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शरदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥२
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः तरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३
शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद् युधा गास्तिष्ठरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४
वह कुत्समिन्द्र यस्मिश्चाकन् त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ।५।१६

हे इन्द्र ! तुम सब संसार के स्वामी हो । तुम हमारा पालन करो । हमारे वीरों की रक्षा करो । तुम सत्कर्म वालोंके उद्धारकर्त्ता हो । तुम धन और बल के दाता हो ।१। हे इन्द्र ! तुमने निरादर करने वाले मनुष्यों को निर्धन और निर्बल बना दिया । तुमने उनके गढ़ों को तोड़ा और जल को प्रवाहित किया । युवा "पुरुकुत्स" के शत्रु को उसके अधीन कराया ।२। हे बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ! तुम वीरों द्वारा रक्षित सेनाओं को प्रेरित करो । तुम जिस अग्नि से प्रकाश को प्राप्त होते हो उस सिंह के समान अग्नि को हमारे घर में स्थापित करो ।३। हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रशंसा के लिए वज्र के बल से शत्रु मरकर सो गये । उस समय तुमने जलोंको और गौओं को छोड़ा तथा शत्रुको धनहीन

बनाया ।४। हे इन्द्र ! तुम कुत्स की कामना करते हुए शीघ्रगामी, सुखदायक अश्वों को चलाते हो। तब सूर्य अपने रथ चक्र को समीप लाते हैं और तुम वज्र धारण कर शत्रुओं का सामना करते हो ।५। (१६)

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥६
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥७
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत् पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥८
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥९
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।१०।१७

हे इन्द्र ! तुमने अपने मित्रों को सन्ताप देने वाले अदानशीलों को नष्ट किया। जो तुम्हें मनुष्यों के मित्र रूप से देखते हैं वे सन्तानयुक्त हुए सदा स्थिर रहते हैं ।६। हे इन्द्र ! अन्न की प्राप्तिके लिए ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की। तुमने तीन भूमियों का अद्भुत दान किया। युद्ध में 'दुर्योणि' के लिए 'कुयवाच' को मरवाया ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राचीन पराक्रमकी नवीन ऋषियों ने स्तुति की। तुमने दुर्गों को तोड़कर दस्युओं को छिन्न-भिन्न किया तथा देव शून्य निन्दक का शस्त्र नीचे झुकाया ।८। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को कंपाने वाले हो। तुगने जलों को नदियों के रूप में प्रवाहित किया। तुमने समुद्र को परिपूर्ण किया। तब 'तुर्वश' और 'यदु' को पार लगाया ।९। हे इन्द्र तुम हमारे हो। तुम मनुष्यों की हिंसा से रक्षा करते हो। तुम हमको युद्धों में विजय प्राप्त कराते हो। हम ज्ञान, अन्न और आयु प्राप्त करें ।१०। (१७)

सूक्त १७५

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–इन्द्र । छन्द–अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, बृहती)

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषालमर्त्यः ॥२
त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३
मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥४
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वारिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥५
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामुन त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।१८

हे इन्द्र ! आह्लादकारी सोमका पान किया, तुम पुष्ट हो गये । यह वीर्यवान पौष्टिक, विजेता ! सोम तुम्हारे लिए ही है ।१। हे इन्द्र ! हमारा वह पौष्टिक एवं आह्लादकारी पेय तुम्हें प्राप्त हो । तुम बली, धन प्राप्त कराने वाले, शत्रु को वश में करने वाले अमर हो ।२। हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी और धन प्राप्त करके मनुष्यों की ओर प्रेरणा करने वाले हो । पात्र को ज्वाला से जलाने के समान तुम दैत्यों को दग्ध करते हो ।३। हे मेधावी इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सूर्य के रथसे वेग प्राप्त करते हो ":शुष्णवध" के लिए वायु के अश्वों से वज्र के साथ प्राप्त होओ ।४। हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रसन्नता ही बल है । तुम्हारा सङ्कल्प यश है । तुम अश्वादि के दाता, वृत्र नाशक और धन प्राप्त करन वालों के स्वामी हो । हे इन्द्र ! जैसे तुमने प्राचीन स्तोताओं को सुख दिया वैसे ही प्यासे को जल देने के समान मुझे भी सुख दो । मैं तुम्हारा

बारम्बार आह्वान करता हूँ। तुम मुझे अन्न बल और दान शीलता प्राप्त कराओ।५-३। (१८)

सूक्त १७६

(ऋषि–अगस्त्यः। देवता–इन्द्रः। छन्द–अनुष्टुप् त्रिष्टुप्)

मत्सि नो वस्य इष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद् वृषा ॥२
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥४
आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु सानुषगसत्।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥५
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।१९

हे इन्द्र! हमको कल्याण प्राप्त कराने के लिए आह्लाद युक्त होओ यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रवेश करे। तुम क्रोध में भर रहे हो परन्तु शत्रु तुम्हारे सामने नहीं आता।१। उस इन्द्र को स्तुतियाँ भेट करो, उस मनुष्यों के अद्वितीय अधीश्वर को हवियाँ दो। वे हमारे कार्य सिद्ध करते हैं।२। हे इन्द्र! तुम्हारे हाथों में मनुष्य की पाँच जातियों के सम्पूर्ण धन हैं। वह इन्द्र हमारे द्रोहियों को वज्र से नष्ट करे।३। हे इन्द्र! सोम का अभिषव न करने वालों तथा कठिनाई से वश में आने वालोंका वध करो। क्योंकि वे तुम्हें सुखी नहीं कर सकते। उनका धन हमको दो तुम्हारा स्तोता धन प्राप्त करने के योग्य है।४। हे सोम! इन्द्र के स्तोत्र में जो

निरन्तर प्रवृत्त रहता है, तुम उसकी सहायता करते हो । तुम उस वेगवान इन्द्र की युद्ध में रक्षा करो ।५। हे इन्द्र ! तुम प्यासे को पानी के समान प्राचीन स्तोता को सुख देने वाले हुए । मैं भी उसी स्तुति से तुम्हारा आह्वान करता हूँ । हम अन्न, बल और दानशील स्वभाव प्राप्त करें ।६। (१९)

सूक्त १७७

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरीं वृषणा याह्यर्वाङ् ।।१
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ।२
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ।।३
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ।।४
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।५।२०

मनुष्यों के पालक, श्रेष्ठ स्वामी, स्तुत्य यज्ञ की कामना करने वाले इन्द्र अपने पुष्ट घोड़ों को रथ में जोड़कर रक्षा के लिये यहाँ आवें ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे पुष्ट, उन्नत बलवान मन्त्र द्वारा रथमें जुतने वाले अश्व हैं, उनपर चढ़ कर आओ । हम सोम निचोड़ कर तुम्हारा आह्वान करते हैं ।२। हे इन्द्र ! तुम्हारे लिए मधुर सोम अभिषव किया गया है तुम अभीष्ट वर्षक रथ पर चढ़ो । बलवान अश्वों से युक्त रथ को यहाँ लाओ ।३। हे इन्द्र ! देवताओं को जाने वाला यह यज्ञ, यह स्तोत्र, यह सोम और यह कुश का आसन है । तुम शीघ्रता से यहाँ आकर अपने अश्वोंको लोलो और आसन ग्रहण कर सोमपान करो।४। हे इन्द्र! तुम मान पुत्रके स्तोत्रों को सुनकर प्रत्यक्ष होओ । हम स्तुति

करते हुए तुम्हारी रक्षा प्राप्त करें और अन्न, बल तथा दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ।५।   (२०)

सूक्त १७९

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया वभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ।।१
न घा राजेन्द्र आ दमन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन् गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च । २
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ।।३
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ।।४
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनाभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।५।२१

हे इन्द्र ! तुम अपने जिस साधन से स्तोता की रक्षा करते हो, उसे रोकने से हमारी कामना नष्ट हो जायगी, अतः ऐसा न करो । मैं प्राप्तव्य और उपभोग्य वस्तुओं को प्राप्त करूँ ।१। मङ्गल की दात्री रात्रि और उषा दोनों बहिनें जो कर्म करती हैं,इन्द्र उनके कर्मों को न रोके । इन्द्र हमको मैत्री और अन्न दें ।२। इन्द्र विजेता, याचककी पुकार सुनने वाले, उपासक के सामने रथ ले जाने वाले हैं । वे स्वयं ही स्तुतियों को प्रेरित करते हैं ।३। उत्तम यज्ञ की इच्छा वाले इन्द्र अपने यजमानकी हवियों को रुचि पूर्वक ग्रहण करते हैं। यजमान की प्रार्थना को सत्य सिद्ध करने वाले अनेक शब्दोंके स्तोत्र से स्तुत किये जाते हैं ।४। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे बलको प्राप्त कर शत्रुओं को वशीभूत करें। तुम हमारे रक्षक और वृद्धिकर्त्ता हो, हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करे ।५।   (२१)

सूक्त १७९

(ऋषि–लोपामुद्राऽगस्त्यौ । देवता–रतिः । छन्द–त्रिष्टुप् बृहती)

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नींर्वृषभिर्जगम्युः ॥२
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावदेत्र शतनीथमाजिं यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृलतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ।६।२२

(लोपामुद्रा) मैं वर्षों से दिन रात जरा की संदेश वाहिका उषाओं में तुम्हारी सेवा करती रही हूँ । बुढ़ापा शरीर के सौन्दर्य को नष्ट करता है । इसलिए यौवन काल में ही पति-पत्नी, गृहस्थ धर्म का पालन करके उसके उद्देश्यको पूर्ण करें ।१। धर्म पालक पुरातन ऋषि देवताओंसे सत्य बात करते थे । वे क्षीण हो गये और जीवन के परम प्राप्त फल को प्राप्व नहीं हुए, इसलिए पति-पत्नी को संयमशील और विद्याध्ययन में रत विद्वान को भी उपयुक्त अवस्था में काम भाव प्राप्त होता है और वह अनुकूल पत्नी को प्राप्त कर सन्तानोत्पादन का कार्य करता है ।२। (अगस्त्य) हमने व्यर्थ परिश्रम नहीं किया । देवगण हमारे रक्षक हैं । हम स्पर्द्धा करने वालों को वशमें करते और सैकड़ों साधनों का उपभोग करते हैं । हम स्त्री पुरुष सम्मिलत रूप से गृहस्थ धर्म निभावें ।३। रुके हुए नद की तरह वीर्यका निरोध करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ सेवनके लिए मुझे प्राप्त हो, धैर्यवान पुरुषको मैं धारण करूँ।४।(शिष्य) मैं हृदय से पान किये हुए इस सोम की स्तुति हूँ । हमसे कोई भूल हुई हो तो

उसे वे क्षमा करें क्योंकि मनुष्य विभिन्न कामनाओं से युक्त होता है ।५। विभिन्न साधनाओं से अगस्त्य ऋषि ने अनेक सन्तान और वल की इच्छा से दोनों वरणीय वस्तुओं को पुष्ट किया और देवगणके सच्चे आशीर्वाद को पाया ।६।   (२२)

सूक्त १८० (चौबीसवाँ अनुवाक)

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिवन्ता उषसः सचेथे ॥१
युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद् वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥२
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३
युवं ह धर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ।५।२३

हे अश्वनीकुमारो ! तुम्हारे अश्व आकाश में गतिमान है । तुम्हारा रथ समुद्र के चारों ओर चलता हुआ वर्धक होता है । तुम मधुर रस का पान करते हुए उषाओं के साथ चलते हो । १ । हे मधुरपायी अश्विद्वय ! तुम स्तुतियों के योग्य हो । जब उषा प्रकट होती है, तब तुम अत्यन्त पूजनीय रथ पर सवार होकर यजमान की अन्न, बल प्राप्ति की स्तुतियों के प्रति जाते हो । २ । हे सत्य-स्वरूप अश्विद्वय ! तुमने गायों को पयस्विनी वनाया है । वन वृक्षों के मध्य सदैव जागरूक यजमान तुम्हारे लिए हवि देता हुआ पूजता है । ३ । हे अश्विद्वय ! तुमने सहायता के इच्छुक "अत्रि" के लिए अग्नि के ताप को जल के समान शीतल कर दिया । इसलिए अग्नि में तुम्हारे निमित्त यज्ञ किया जाता है और रथ के पहिए की तरह सोम रस तुम्हारी

ओर जाता है ।४। हे अश्विद्वय ! मैं पुरातन काल में हुए 'तुग्र' राजा के पुत्रके समान स्तुति करता हुआ, गौओं के लिये अपनी ओर बुलाता हूँ । तुम्हारी महिमा से पृथिवी जलों से पूर्ण होती और तुम्हारी कृपा से पाप का फन्दा भी छूट जाता है ।५। (२३)

नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् । ७
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ।।८
प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९
त वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमि परि द्यामियानं विद्यामेषं बृजनं जीरदानुम् ।१०।२४

आकाश अश्विद्वय ! जब तुम घोड़ों को जोतते हो, तब अन्नों वाली बुद्धि देते हो । उस समय सुखी हुआ स्तोता अपने महत्व के लिए अन्न बल प्राप्त करता है ।६। हे अश्विद्वय ! हम सत्यभाषी स्तोता श्रद्धापूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम अभीष्ट दाता और अनिद्य हों देवता के समीप बैठकर सोम पान करो ।७। हे अश्विद्वय ! श्रेष्ठ कर्मवान अगस्त्य दुःख निवारक स्तोत्र की प्राप्ति के लिए शंखों के समान गर्जते हुए सहस्रों स्तुतियों से तुम्हें चैतन्य करते हैं ।८। हे अश्विद्वय ! तुम महिमा वाले रथ से यात्रा करते हो और होता के समान आते हो । स्तोताओं को सुन्दर अश्व देते हो । तुम असत्य रहित हो, हम को धन प्राप्त कराओ ।९। हे अश्विद्वय ! आकाश में घूमने वाले तुम्हारे रथ का हम आह्वान करते हैं । हम अन्न, बल और आयु लाभ करें ।१०। (२४)

सूक्त १८१

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्।)

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम्॥१
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु॥२
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान् त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः॥३
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे॥४
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः।५।२५

हे अश्विद्वय! अन्न धन और जल में ऐसा क्या हैं जिसे यज्ञ पूर्ण करने की इच्छा करते हुए ऊपर ही उठाये हुए हो? इम यज्ञ में तुम्हारी ही प्रशंसा होती है।१। हे अश्विद्वय! वायुके समान प्रचण्ड, शीघ्रगामी वेगवान शोभनीय उज्ज्वल अश्व तुम्हें यहाँ लावें।२। हे प्रशंसनीय कर्मवाले अश्विद्वय! तुम्हारा रथ कल्याण के लिए यहाँ आवे। वह अत्यन्त वेगवान, बड़ा और पूजनीय है।३। हे अश्विद्वय! तुम पाप रहित शरीरों से प्रकट होकर स्तुतियाँ प्राप्त करते हो। तुममें से दूसरा आकाश का पुत्र हुआ सौभाग्यों को धारण करता है।४। हे अश्विद्वय! तुम दोनों में से एक का अत्यन्त गतिमान रथ कामना वालों के घरों को प्राप्त हो और दूसरे के अश्व अन्नों से पुष्ट होते हुए हमारी स्तुतियों से प्रसन्न हों।५। (२५)

प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः॥६

अर्सजि वां स्थविरा वेधसा गीर्बालिहे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुतावव्रतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिर्बर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद् वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।२६

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में से एक का रथ अन्नों में विचरण करता है तथा दूसरे के गमनसे फूलती हुई जल धाराएँ हमको सींचती हैं ।६। हे अश्विद्वय ! तुम्हारी स्थिरता के लिए स्तुतियाँ बनाई जाती हैं । वे तीन प्रकार से तुम्हें प्राप्ति होती हैं । तुम याचना करने वाले यजमान के रक्षक होओ, और चलते हुए अथवा रुककर मेरी पुकार सुनो ।७। हे अश्विद्वय ! तुम दोनों के प्रदीप्त रूपका गान करने वाली वाणी यज्ञ-गृह के मनुष्यों को बढ़ाने वाली है। तुम्हारा जल वर्षा द्वारा गौ के समान मधुरवर्षक हो ।८। हे अश्विनीकुमारो ! पूजा की तरह अत्यन्त मेधावी हविदाता अग्नि और उषा के समान तुम्हारी स्तुति करता है । मैं तुम्हारी सेवा करता हुआ आह्वान करता हूँ । मैं अन्न, बल और दानशीलता प्राप्त करूँ ।६। (२६)

सूक्त १८२

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् जगती ।)

अभूदिदं वयुनामो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाच जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनो पेतथुः क्षोदसो महः ।५।२७

हे विद्वानो ! अश्विनी कुमारों के उत्तम रथ को खूब सजाओ । वे बुद्धि को प्रेरित करने वाली स्तुत्य 'विश्पला' को भली करने वाले तथा उत्तम कर्म वालो के लिए नियमों में विद्यमान रहते हैं ।१। हे अश्विनी कुमारों ! तुम इन्द्र और मरुद्‌गण के समान, रथियों में श्रेष्ठ रथी, विकराल कर्म वाले हो । तुम मधुर रससे पूर्ण रथ सहित हविदाता की ओर प्राप्त होओ ।२। हे अश्विदेवो! तुम यहाँ क्या करते हो ? जो कोई हवि न देने वाला पूजनीय बन गया है, उसे हराओ, उसका वध करो मुझ स्तोता को प्रकाश दो ।३। हे असत्य रहित अश्विदेवो ! हिंसक कुत्तों के समान हम पर आक्रमण करने वालों को मिटा दो । तुम उन्हें जानते हो । सेरे स्तोत्र को सत्य करते हुए रक्षा करो ।४। हे अश्विद्वय ! तुम ने "तुग्र" के पुत्र के लिए नाव बनाकर रक्षा की । देवताओं को चाहने वाले को समुद्र से उबार लिया ।५। (२७)

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिता पारयन्ति ॥६
कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७
तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद् वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।८।२८

जलों में सिर के बल गिरे हुए निराश्रित "तुग्र" के पुत्र को अश्विनी-कुमारों की चार नावें प्राप्त हुईं ।६। वह कौन सा वृक्ष था जिससे समुद्र में गिरा हुआ "तुग्र" का पुत्र चिपट गया । हे अश्यिदेवो ! तुमने यश प्राप्ति के लिए उसे बचाया ।७। हे असत्य से परे अश्विदेवो ! मान के पुत्रों द्वारा सोम-याग में गाया गया स्तोत्र तुम्हारे अनुकूल हो और हम अन्न,बल तथा दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ।८। (२८)

सूक्त १८३

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता-अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१
सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां तत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४
युवां गोतमः पुरुमीलहो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।२९

हे अश्विदेवो ! उस मन से भी अधिक वेग वाले रथ के द्वारा उत्तम कर्म वाले यजमानके घर को पक्षी के समान गतिसे प्राप्त होओ ।१। हे अश्विदेवो ! सरलता से मुड़ने वाला तुम्हारा रथ तुम दोनों मेधावियों को चढ़ाकर पृथिवी पर हव्य के निमित्त जाता है । तुम दोनों आकाश की पुत्री उषा से युक्त होओ और मेरी स्तुति शोभायुक्त हो ।२। हे असत्य रहित अश्विदेवो ! सरलता से घूमने वाले अपने रथ पर चढ़ो । वह हविदाताओं के कर्मानुष्ठानों के अनुसार चलता है । उस पर सवार होकर तुम यजमान ओर उसके पुत्रों के लिए यज्ञ में जाते हो ।३। हे अश्विदेवो ! मुझ पर वृक-वृकी का आक्रमण न हो । तुम हमको उलाँघकर न जाओ । हमारे स्थानको न त्यागो । यह यज्ञभाग, मधुर-रस युक्त पात्र और स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं ।४। हे अश्विद्वय ! गौतम', "पुरुमीढ़' और 'अत्रि' हवि के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं । जैसे सीधे

मार्ग पर चलने वाला लक्ष्य पर पहुँच जाता है, वैसे ही तुम मेरे आह्वान की ओर शीघ्र आओ ।५। हे अश्विदेवो ! हम इस अंधेरे से पार लग गये हैं। हमने तुम्हारे स्तोत्र को धारण किया है। तुम यहाँ देव मार्ग से आओ । हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ।६। (२६)

॥ चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त १८४

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत् पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।६।१

हे असत्य रहित अश्विदेवो ! तुम प्रसिद्ध धन के दाता हो । उषा के प्रकट होने पर हम तुम्हारा स्तुति गीतों द्वारा आह्वान करते हैं ।१। हे अश्विदेवो ! तुम सोम धारा से अत्यन्त आह्लादमय होकर लोभियों को नष्ट करो । मेरी स्तुतियोंकी कामना वाले तुम यहाँ आकर स्वयं मेरे स्तुति वचनों को सुनो ।२। हे संसार पालक अश्विदेवो ! जलोंत्पन्न महान अश्व तुम्हें सूर्या के विवाहोत्सव की ओर ले आते हैं। वरुण की सन्तुष्टि के लिए प्रभात

में की जाने वाली स्तुति तुम्हें प्राप्त होती है ।३। हे माधुर्यमय कल्याण करने वाले अश्विदेवो ! तुम्हारा दिया हुआ धन हम पर रहे । तुम मान के पुत्र के स्तोत्र को प्रेरित करो । साधक गण यज्ञ की इच्छा से पराक्रम के लिए उस स्तोत्र को बढ़ाते हैं ।४। हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए मान के पुत्रों ने इस बल युक्त स्तोत्र की रचना की । तुम मुझ अगस्त्य पर प्रसन्न होकर मेरे पुत्र के लिए घर पर पधारो ।५। अश्विद्वय ! हम अन्धेरे से पार लग गए हैं । तुम्हारे लिए स्तोत्र प्रारम्भ किया है, इसके प्रति देबताओं के योग्य मार्ग से आओ । हम अन्न बल और और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ।६। (१)

सूक्त १८५

(ऋषि—अगस्त्यः । देबता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवीं नो अभ्वात् ॥२
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद् रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं तृथिवी नो अभ्वात् ॥३
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।५।२

हे ऋषियो ! आकाश और पृथिवी मे कौन पहले और कौन पीछे उत्पन्न हुई ? इस बात का जानने वाला कौन है ? ये दोनों स्वयं सब पदार्थों को धारण करती और दिन-रात्रि के समान घूमती हैं । १ । वह न चलने वाली, बिना पैरों की आकाश पृथिवी पांव वाले शरीर धारियों को माता-पिता के समान गोद में धारण करती है । हे आकाश, पृथिवी ! हमारी

भय से रक्षा करो ।२। हे आकाश पृथिवी ! पवित्र, अक्षय, प्रकाशित, अमर, स्तुत्य धन की याचना करता हूँ । स्तोता के लिए उसे उत्पन्न करो और भयों से रक्षा करो ।३। दिन रात्रि सहित, देवताओं में पीड़ा रहित, अन्न से युवा रक्षा वाली, दिव्य गुण युक्त आकाश पृथिवी मेरे अनुकूल हों । हे आकाशपृथिवी, महान् भयों से हमारी रक्षा करो ।४। साथ चलने वाली, सदा तरुण, समान सीमायुक्त, भगिनी-भूत आकाश-पृथिवी माता-पिता की गोद रूप हैं । हे आकाश-पृथिवी ! महान् भय से हमारी रक्षा करो ।५। (२)

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते अप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७
देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद् दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ।१०
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।११।३

विस्तीर्ण वास-स्थान, महान्, रक्षाओं से युक्त आकाश पृथिवी का देवताओं की प्रसन्नता के लिए आह्वान करता हूँ । यह आश्चर्यरूप वाले जल को धारण में समर्थ है । यह हमारी महान पाप से रक्षा करें ।६। मैं इस यज्ञ में विस्तीर्ण, बहुत रूप वाली, असीमित आकाश पृथिवी की पूजा करता हूँ । यह सौभाग्यवती समस्त पदार्थ और प्राणियों को धारण करती हैं । हे आकाश-पृथिवी ! हमें महा पाप से बचाओ ।७। हे आकाश पृथिवी !

देवगण, गन्धुगण, जामाता आदि के प्रति हमने जो पाप किया है, वह इस स्तोत्र-यज्ञ से दूर हो। तुम हमको महापाप से बचाओ।८। मनुष्यों का हित करने वाली आकाश-पृथिवी मुझे आश्रय प्रदान करें और पालन करतीहुई मेरे साथ रहें। हे देवगण ! हम तुम्हारे स्तोता हविरूप अन्नदेकर तुम्हें प्रसन्न करते हैं और दान के लिए धन की याचना करते हैं।६। मैंने आकाश-पृथिवीके लिए सत्य का कथन किया है। आकाश-पृथिवी निन्दा और अनिष्ट से हमारी रक्षा करें और माता-पिता के समान हमारा पालन करें।१०। हे पिता माता रूप आकाश-पृथिवी मैंगे जो कुछ तुम्हारे समीप कहा है, वह सत्य हो। तुम देवताओं के सत्य रक्षा वाली होओ। हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें।११। (३)

सूक्त १८६

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्)

आ न इलाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विंथुरं न शवः ॥२
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे ऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः।
असद् यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ।५।४

सर्व प्रेरक सवितादेव हमारी स्तुतियों के प्रति यज्ञ में आवे। युवा देवताओ ! तुम यहाँ आकर प्रसन्न होते हुए हमें भी सुखी करो।१। मित्र, अर्यमा और वरुण ये एक से मन वाले देवगण एक साथ इस यज्ञ में आवें।

वे हमारी वृद्धि के कारण हों और प्रयत्न पूर्वक हमारा बल क्षीण न होने दे ।२। मनुष्यो मैं तुम्हारे प्रिय अग्निकी स्तुति करता हूँ । वे हमारी स्तुति द्वारा शत्रुओं को जीतें और हमने स्नेह करें । स्तुति करने पर वरुण हमको अन्नों से पूर्ण कर यशस्वी बनायें ।३। हे विश्वे देवताओ ! हम स्तुति करते हुए दिन रात्रि विजय की इच्छा से पयस्विनी गौ के समान उपस्थित होते हैं । मैं भी उसी प्रकार नमस्कार के साथ तुम्हारी पूजा करता हूँ ।४। आकाशमैं स्थित सर्प के समान आचरण वाली विद्युत हमको सुखी करे । सिंधु बछड़े के समान हमारा पोषण करें उसके द्वारा हम जलोत्पन्न अग्नि को प्राप्त करें ! मन के समान वेग वाले अश्व उन्हें ले जाते हैं ।५। (४)

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद् रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं न पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१०
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।११।५

स्तोताओं के साथ समान प्रीति रखने वाले त्वष्टा हमारी और आवें । वृत्र के हननकर्त्ता, मनुष्यों के रक्षक, महावली इन्द्र यहाँ पधारें । ६ । गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान अश्व संयोजन करने वाली हमारी स्तुतियाँ इन्द्र से स्नेह करें। प्रजनन में समर्थ पत्नियों के पति को प्राप्त होने

के समान हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को प्राप्त होती हैं ।७। उन्नत मन वाले, शत्रु-भक्षक, मित्रों के पक्षपाती मरद्गण आकाश और पृथिवी से मिलकर ऋषियों के समान यज्ञ में बैठें। उनके बिन्दुरूप अश्व जल प्रवाह के समान हैं ।८। जब से इन मरुतों की महिमा का ठीक प्रकार ज्ञान हुआ, तभी से कुशा बिछाने वाले यजमान यज्ञ कर्मों में प्रयुक्त हुए। इनकी सेनाएँ बाण के समान वेग से मरु भूमि को सींचने में समर्थ हैं ।९। हे मनुष्यो ! रक्षा के निमित्त अश्विदेवों को आगे बढ़ाओ। पूषा को भी आगे करो। द्वेष रहित, विष्णु वायु और ऋभुओं के स्वामी इन्द्र सब बलों को अपने अधीन रखते हैं। सुख के निमित्त मैं सब देवताओं को सामने बुलाता हूँ ।१०। हे पूजनीय देवताओं ! तुम्हारी भक्ति हमको जीवन देने वाली हो। हम उत्तम स्थान प्राप्त करें। तुम्हारी कल्याणदात्री शक्ति देवताओं को प्रेरित करे जिससे हम अन्न, बल और उदार वृत्ति वाले हों ।११।   (५)

सूक्त १८७

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–अन्नम्ः । छन्द–अनुष्टुप्, बृहती, गायत्री)

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ।५।६

अब मैं अत्यन्त बलदाता अन्न का स्तवन करता हूँ, जिसके बल से 'त्रित' ने वृत्र के जोड़-जोड़ को तोड़ कर मार डाला ।१। हे सुस्वादु अन्न ! तू मधुर है, हमने तेरा वरण किया है तू हमारा रक्षक हो ।२। हे अन्न ! तू कल्याण स्वरूप है। अपनी रक्षाओं सहित हमारी ओर आ। तू स्वास्थ्यदाता हमको

हानिप्रद न हो और अद्वितीय मित्र के समान सुखकर हो ।३। हे अन्न ! वायु के अन्तरिक्ष में आश्रय लेने के समान तेरा रस संसार में व्याप्त है ।४। हे पालक और सुस्वादु अन्न ! तुम्हारा दान करने वाले तुम्हारी कृपा चाहते हैं। तुम्हारे सेवन-कर्त्ता तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । तुम्हारा रस आस्वाद करने वालों की ग्रीवा उन्नत और दृढ़ करता है ।५।　　(६)

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ।।६
यददो पितो अजगन् विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितो ऽरं भक्षाय गम्याः ।।७
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद् भव ।।८
यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद् भव ।।९
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद् भव ।।१०
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ।११।७

हे अन्न ! महान् देवों का मन तुझ में ही रमा है । तुम्हारे आश्रय में सुन्दर कर्म किये जाते हैं । तुम्हारी रक्षा से ही इन्द्र ने वृत्र का वध किया था ।६। हे अन्न ! मेघों में जो प्रसिद्ध जल रूप धन है, उसके द्वारा मधुर हुए हमारे सेवन के निमित्त प्राप्त हो ।७। हे अन्न ! हम जलों और औषधियों का थोड़ा अंश सेवन करते हैं । तू वृद्धि को प्राप्त हो ।८। हे सोम ! हम तुम्हारे दुग्धादि से मिश्रित खिचड़ी रूप अन्न का सेवन करते हैं । अतः तू वृद्धि को प्राप्त हो ।९। हे औषध रूप अन्न ! तू शरीर-रचना के अनुकूल पुष्टिकारक रोग नाशक और उद्दीपन करने वाला है । तू वृद्धि को प्राप्त हो ।१०। हे अन्न ! गायें जैसे सेवनीय दूध को बहाती है, वैसे ही तुमसे स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं । तू देवताओं को प्रसन्न करने वाला हमको भी पुष्ट करता है ।११।

(७)

सूक्त १८८

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अग्न्यादयः । छन्द—गायत्री)

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥२
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ।३
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥४
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
दूरो घृतान्यक्षरन् ।५।८

हे सहस्रों के विजेता अग्ने ! तुम ऋत्विजों द्वारा सुशोभित किये जाते हो । तुम हवि वाहक दौत्य-कर्म में निपुण हो ।१। नियम-पालक मनुष्य के लिये यज्ञ माधुर्ययुक्त होता है । शरीरों के रक्षक अग्नि सहस्रों प्रकार के रसों को धारण करते हैं ।२। हे अग्ने ! तुम आहूत होकर यज्ञ में भाग ग्रहण करने वाले देवों को बुलाओ । तुम असीम अन्नोंके दाता हो ।३। हे आदित्यो ! जिस सहस्र वीरों के योग्य अग्नि रूप कुश को ऋत्विक् मन्त्रों द्वारा बिछाते हैं उस पर तुम विराजमान हो ।४। सब के शासक, बली, सशक्त अग्नि-रूप यज्ञ-द्वारों पर घृत वर्षा करते हैं ।५। (७)

सुरुक्मे हि सुपेशसाऽधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥६
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७
भारतीळे सरस्वति याः वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥८
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यज ॥९
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ।११।९

सुन्दर रूप और शोभा से युक्त उषा-रात्रि सुशोभित होती हैं, वे यहाँ विराजें ।६। प्रियभाषी, मेधावी, प्रमुख, दिव्य होता अग्नि हमारे यज्ञ में पधारें ।७। हे भारती इला और सरस्वती देवियो ! तुम्हारे समीप उपस्थित होकर स्तुति करता हूँ । जिससे मुझे यश प्राप्त हो सके, वह करो ।८। अग्नि-स्वरूप त्वष्टा रूप देने वाले हैं । उन्होंने पशुओं को प्रकट किया । हे त्वष्टा यज्ञ-द्वारा हमारे पशुओं की वृद्धि करो ।९। हे अग्नि स्वरूप वनस्पते ! अपनी शक्ति से दिव्य अन्न उत्पन्न करो । हे अग्ने ! हमारे हव्य को सुस्वादु बनाओ ।१०। देवों में अग्रणी अग्नि गायत्री छन्द द्वारा संयोजित किये जाते हैं । वह स्वाहा करने पर प्रदीप्त होते हैं ।११। (९)

सूक्त १८९

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२
अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४
मा नो अग्नेऽव सृजो अघाया ऽविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ।५।१०

हे अग्निदेव ! तुम नियमों के ज्ञाता हो । हमको सुमार्गगामी बनाओ । पाप को दूर करो । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ।१। हे अग्निदेव ! स्तुति किए जाने पर तुम हमको दुःखों से पार लगाओ । तुम हमारे लिए प्रशस्त

नगरी वाले बनो । तुम हमारी सन्तानों के रोगों को शान्त करने और भयों को मिटाने वाले हो ।२। हे अग्ने ! रोगों को हमसे दूर करो । जो लोग अग्नि से रहित हैं उन्हें रोग होने चाहिए । तुम देवगण के साथ हमारी पृथिवी को सुख से पूर्ण कर दो ।३। हे अग्ने ! हमारे प्रिय घर में प्रदीप्त हुए तुम अपने रक्षा-साधनों से सदा हमारा पालन करो । तुम्हारे स्तोता को कभी भय प्राप्त न हो ।४। हे महाबली अग्ने ! हमको पापी शत्रुओं के भरोसे न छोड़ो और न हमको दंश वाले (सर्पादि) अथवा बिना दाँत वाले, सींग आदि युक्त हिंसकों के ही सुपुर्द करो ।५। (१०)

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।
विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६
त्वं ताँ अग्न उभयान् वि विद्वान् वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्ममृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७
अवोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेमविद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।८।११

हे नियमों के लिए उत्पन्न अग्नि देव ! तुम स्तुति किये जाने पर निंदकों और हिंसकों से बचाने वाले और कुटिल व्यक्तियों का नाश करने वाले हो ।६। हे अग्ने ! तुम यज्ञकर्त्ता और यज्ञ-हींन, दोनों प्रकार के मनुष्यों को जानकर ही उषा काल में यज्ञकर्त्ता को प्राप्त होते हो । तुम सूर्यास्तके पश्चात् भी साधकसे वियुक्त न हो । यजमान तुम्हें सदा सुशोभित करते हैं ।७। हम मान के पुत्रों ने इस विजयशील अग्नि की स्तुति की है । हम ऋषियों के साथी असंख्य धनोंका उपयोग करें और धन, बल तथा उदार मनोवृत्ति से युवत हों ।८। (११)

सूक्त १९०

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्द—त्रिष्टुप्)

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नभ्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत् समृते मातरिश्वा ॥२
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥३
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद् यक्षभृद् विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥४
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत् पियारुम् ।५।१२

हे मनुष्यो ! द्वेष-रहित स्तुत्य बृहस्पति की स्तोत्रों से पूजा करो । वे स्तोता से वियुक्त नहीं होते । देवों में पूज्य उनके वचनों को देवता और मनुष्य सभी आदर से सुनते हैं ।१। वर्षा के समान स्तुतियाँ बृहस्पति को प्राप्त होती हैं । वे संसार को व्यक्त करने वाले हैं तथा मातरिश्वा के समान फलदाता हैं ।२। सविता द्वारा प्रकाश और ताप देने के समान बृहस्पति साधकों की स्तुति और नमस्कार को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट रहते हैं । इन हिंसा-रहित बृहस्पति के बल से ही सूर्य भयङ्कर वन-पशु के समान घूमते हैं ।३। आकाश और पृथिवी पर बृहस्पति का सुयश सर्वत्र फैला है । वे सूर्य के समान हवि धारण करते हैं । उनका शस्त्र माया-मृगोंके पीछे प्रतिदिन दौड़ता है ।४। हे बृहस्पते ! जो धन के मद से युक्त हुये पापी, तुम्हें बूढ़ा बैल मानकर अपने अहङ्कार से जीवित हैं, तुम उन मूर्खों को वरणीय धन नहीं देते । तुम उन दुष्टों से दूर रहते हो ।५। (१२)

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नो ऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।८।१३

हे बृहस्पते ! तुम सुमार्ग पर चलने वाले मनुष्यों के लिए मार्ग रूप और दुष्टों पर शासन करने वाले के मित्र के समान हो। जो हमसे द्वेष करते है, वे क्लेशों से घिरे रहें ।६। भँवरयुक्त गम्भीर जल वाली प्रवाहित नदियाँ जैसे समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे हमारी स्तुतियाँ बृहस्पति को प्राप्त होती हैं। वे तट और जल दोनों के समान हमारे कार्यक्रमों को सिद्ध-दृष्टि से देखते हैं ।७। बलवान्, श्रेष्ठ,पूज्य बृहस्पति बहुतों के उपकार के लिए प्रकट होते हैं। वे हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमको वीर सन्तान तथा गवादि धन प्रदान करें और हम अन्न, बल तथा उदार स्वभाव वाले हों ।८। (१३)

सूक्त १९१

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता—अप्तृणसूर्याः । छन्द–महापंक्तिः, महा–बृहती, अनुष्टुप्)

कङ्कतो न कङ्कतो ऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविती प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१
अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा बैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३
नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ।५।१४

अत्यन्त विषैले और विष रहित, जल में रहने वाले अल्प विष युक्त दोनों प्रकार के जलचर और थलचर जलन करने वाले प्रत्यक्ष और अदृश्य जीव मुझे विष द्वारा घेरे हुए हैं। १। औषधि उन अदृश्य जीवों और

उनके विष को मारती है। वह कूटी, पीसी जाकर भी विषैले जीवों को नष्ट कर देती है।२। शर, कुशर, दर्भ, सैर्य, मोंज और वैरिण नामक घासोंको छिपे हुए जीव विषयुक्त करते हैं।३। जब गायें गोष्ठ में बैठती है, हरिण अपने स्थानों पर विश्राम करते हैं, मनुष्य सुप्तावस्था में होता है तब ये विषैले जीव उन्हें विषयुक्त करते हैं।४। वे अदृश्य और प्रकट विषैले जीव चोरों के समान रात्रि की प्रतीक्षा करते हैं। इसलिए उनसे सावधान रहना चाहिए।५। (१४)

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६
ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७
उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।
अदृष्टान् त्सर्वाञ्जम्भयन् त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ।१०।१५

हे विषैले प्राणियों! आकाश तुम्हारा पिता, पृथिवी माता और सोम भ्राता तथा अदिति बहिन हैं। तुम प्रकट और अप्रकट दोनों प्रकार के जीव अपने स्थान पर ही रहो, सुखपूर्वक वहीं सोओ।६। हे विषैले प्राणियो! तुम कन्धे से जलने वाले शरीर से गमनशील, सुई के समान डङ्क वाले, अत्यन्त विषयुक्त, अदृश्य एवं प्रत्यक्ष, तुम जितने प्रकार के भो हो, वे हमारे पास से दूर चले जाओ।७। सबके समान प्रयत्न, अदृष्ट जीवों को भी दिखाने वाले, अदृश्य विषधरों और राक्षसी वृत्ति वाले हिंसक पशुओं का विनाश करने वाले सूर्य पूर्व में उदित होते हैं।८। समस्त विश्व द्वारा देखे जाने वाले, अदृष्ट

प्राणियों के नाशक अदिति पुत्र सूर्य बहुत प्रकारों से सब विषों का नाश करने के लिए पर्वतों से भी ऊँचे उठे हुए हैं ।६। शौण्डिक के गृह में मद्य-पात्र के समान मैं सूर्य मण्डल में विष को प्रेरित करता हूँ । सूर्य का उससे नाश नहीं होगा । हम भी नहीं मरेंगे । वे अश्वारूढ़ सूर्य विष को अमृत में बदल देते हैं ।१०। (१५)

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वय मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु
त्वा मधुला चकार ।।११
त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु
त्वा मधुला चकार ।।१२
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रमं नामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधुत्वा मधुला चकार ।।१३
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ।।१४
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ।।१५
कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ।१६।१६

जैसे क्षुद्र शकुनि (पक्षी) ने तेरा विष खाकर उगल दिया वह उससे मरी नहीं, वैसे ही हम भी नहीं मरेंगे । अश्वारूढ़ सूर्य दूर रहकर भी हम से विष को दूर करते हैं तथा विष को माधुर्य प्रदान कर देते हैं ।११। अग्नि ने इक्कीस प्रकार के विषो के बल का भक्षण कर लिया । उनकी ज्वालायें अमर हैं । हम भी नहीं मर सकते । अश्वारूढ़ सूर्य ने दूरस्थ विष को भी नष्ट कर दिया और विष को मधुरता प्रदान की ।१२। मैंने विष नाशक निन्यानवे क्रियाओं को जान लिया है । रथारूढ़ सूर्य दूर से भी विष को अमृत में बदल

देते हैं ।१३। हे विषय-युक्त प्राणी ! जैसे घड़े में स्त्रियाँ जल ले जाती हैं, वैसे ही इक्कीस मोरनियाँ और भगिनी रूप सात नदियाँ तुम्हारे विष को दूर करती हैं ।१४। वह छोटा सा नकुल तुम्हारे शरीर का विष खींच ले, अन्यथा उस नीच को मैं ढेले-पत्थर से मार डालूँगा । शरीर का विष हटाकर दूर देशों को चला जाय ।१५। नकुल ने पर्वत से निकल कर कहा-विच्छू का विष **प्रभाव से शून्य है** । हे वृश्चिक ! तेरे विष में प्रभाव नहीं है (जल औषधि और सूर्य में विषशामक शक्ति है । इसलिए यहाँ इनकी स्तुति की गई है ।) ।१६। (१६)

। इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ।

। अथ द्वितीयं मण्डलम् ।

सूक्त १ [पहला अनुवाक]

(ऋषि–गृत्समदः । देवता–अग्निः । छन्द–जगती ।)

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ।५।१७

हे अग्ने तुम यज्ञ काल में प्रकट होकर दीप्तियुक्त और पवित्र होओ। तुम जल से उत्पन्न हुए हो। पाषाण, वन और औषधि से उत्पन्न होते हो।१। हे अग्ने! होता आदि कर्म तुम्हारा ही है। यज्ञ की अभिलाषा करने पर प्रशास्ता अध्वर्यु और ब्रह्मा भी तुम्हीं हो। हमारे घरों के तुम्हीं पालक हो।२। हे अग्ने! तुम सज्जनों का मनोरथ पूर्ण करने वाले एवं बहुतों द्वारा स्तुत्य हो। तुम विष्णु रूप, स्तुतियों के स्वामी तथा अधीश्वर एवं बुद्धि-प्रेरणा में समर्थ हो।३। हे अग्ने! तुम नियमों में अटल वरुण स्वरूप हो। तुम शत्रुओं के हनन-कर्त्ता, साधुओं के पालक हो। तुम्हीं अर्यमा रूपसे व्यापक दानके स्वामी हो। तुम ही सूर्य हो। हमारे यज्ञ में अभीष्ट फल दो।४। हे अग्ने! तुम साधक के हरुषार्थ रूप, स्तुतियों के स्वामी और त्वष्टा हो। तुम मित्र-भाव से युक्त, प्रेरणाप्रद एवं तेजवान हो। तुम अत्यन्त धनी और बल के स्वरूप हो। उत्तम अश्वयुक्त धनों के देने वाले हो।५। (१७)

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥६
त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥७
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९
त्वमग्न ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः।१०।१८

हे अग्नि देव! तुम उग्रकर्मा रुद्र एवं मरुद्गण की शक्ति स्वरूप हो। तुम अन्नों के स्वामी, सुख के आधार हो। रक्त वर्ण के अश्व पर गमन करने वाले हो। तुम ही पूषा रूप से मनुष्यों की हर प्रकार रक्षा करते हो। ६।

हे अग्ने ! तुम यजमान को दिव्यलोक दिलाते हो। तुम सूर्य रूप से प्रकाशित, रत्न रूपी धनों के आधार एवं ऐश्वर्यके देने वाले हो। तुम अपने साधक यजमान के पालन कर्त्ता हो ।७। हे अग्ने ! साधक तुम्हें घरों में प्रज्वलित करते हैं। तुम रक्षक, प्रकाशवान और अनुग्रह बुद्धि वाले हो। तुम हवि स्वामी असंख्य फलों के देने वाले हो ।८। हे अग्निदेव ! यज्ञों में तुम पिता के समान तृप्त किये जातेहो। कर्मों द्वारा सन्तुष्ट करके मित्र बनाये जातेहो। तुम अपने सेवक के पुत्र रूप होते उसे यशस्वी बनाते हो। तुम हमारी मित्र रूप से रक्षा करो ।९। हे पावक ! तुम ऋभु रूप से स्तुतियों के योग्य हो। तुम अन्न, धन के स्वामी एवं प्रकाशमय हो। तुम यज्ञ निर्वाहक और उसके फल को बढ़ाने वाले हो ।१०। (१८)

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा।
त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः॥१४
त्वं तान् त्सं च प्रति चासि मज्मना ऽग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे।
पृक्षो यदत्र महिना वि मे भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१६।१९

हे अग्ने ! तुम अदिति रूप हो, होता और वाणी भी हो। स्तुतियों द्वारा बढ़ते हो। तुम्हीं धनों के रक्षक एवं वृत्र-हनन-कर्त्ता हो। ११। हे अग्ने तुम्हीं अन्न रूप एव ऐश्वर्यवान् हो। तुय दुःखों से उबारने वाले और

सर्व व्यापी हो ।१२। हे अग्ने ! तुम आदित्यों के मुख एवं देवताओं के जीभ रूप हो । यज्ञों में अभीष्ट देने के लिए एकत्रित हुए देवता तुम्हारी चाहना करते हुए तुममें दी गई हवियाँ ग्रहण करते हैं ।१३। हे पावक ! सभी अमर-धर्मा देवता तुम्हारे मुख में दी गई हवियाँ खाते हैं । मरण धर्म वाले जीव तुम्हारे अन्न को प्राप्त करते हैं । तुम औषधादि के गर्भ रूप हो ।१४। अग्ने तुम देवताओं से मिलकर भी अलग रहते हो । तुम उत्तम प्रकार से उत्पन्न होकर बल ग्रहण करते हो । तुम्हारी महिमा से आकाश पृथिवी के मध्य यज्ञ-स्थित अन्न व्याप्त होता है ।१५। हे अग्निदेव ! विद्वान् साधकों को गवादि धन दान वालों को श्रेष्ठ निवास दो । हम वीर सन्तान से युक्त हुए यज्ञ में श्रेष्ठ स्तुतियाँ करते हैं ।१६। (१९)

सूक्त २

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रामिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद् रोदसी अनु ।५।२०

प्रदीप्त, सुन्दर अन्न युक्त, यज्ञ सम्पादक, शक्तिदाता अग्नि को यज्ञ में बढ़ाओ । यज्ञ के निमित्त उनका पूजन करो ।१। हे अग्ने ! गौओं द्वारा बछड़ों की चाहना करने के समान, यजमान दिन-रात्रि में तुम्हारी कामना करते

हैं। तुम अनेकों के पूज्य, आकाशव्यापी और यज्ञों में निवास करने वाले हो ।२। अग्निदेव ! तुम प्रदीप्त हुए धनयुक्त रथ वाले, आकाश पृथिवी के स्वामी, कार्यों को सिद्ध करने वाले और स्तुत्य हो। देवगण तुमको ही जगत के मातृभूमि रूपसे स्थापित करते हैं।३। हे अग्नि! तुम अपनी गगनचुम्बी ज्वालाओं से चन्द्रमा के समान लगने वाले, चैतन्यप्रद हो। तुम जलोंके समान रक्षा-हेतु आकाश-पृथिवी में व्यापक होते हो, तुमको यज्ञ-मंडप में यजमान स्थापित करते हैं।४। हवि-संपादक अग्नि यज्ञोंको प्राप्त करें। वह ओषधियों में प्रज्वलित होकर नक्षत्रों के समान आकाश-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं। यज्ञों में साधकगण उन्हें सजाते हैं।५। (२०)

स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये संददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥६

दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥७

स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८

एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०

स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माश्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।१३।२१

हे अग्ने ! तुम कल्याण रूपसे धन दान करते हुए प्रदीप्त होओ । आकाश और पृथिवी में अन्न धन व्याप्त करो । मनुष्यों द्वारा दी गई हवियाँ देवताओं को प्राप्त कराओ ।६। हे अग्निदेव ! गवादि धन, सन्तान आदि बहु संख्यक ऐश्वर्य देकर यशस्वी बनाओ । तुम्हें उषाएँ प्रकाशित करतीहै, इसयज्ञ द्वारा आकाश-पृथिवी को हमारे अनुकूल बनाओ ।७। उषा वेला में प्रज्वलित अग्नि सूर्यके समान तेजस्वी होते हुए स्तुतियों द्वारा पूजे जाते हैं । वे यज्ञकर्त्ता के पास यज्ञ स्वामी और अतिथि के रूपमें आते हैं ।८। हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । मनुष्यों द्वारा कृत स्तुतियाँ तुम्हें व्यापक बनाती हैं । पयस्विनो धेनु के समान, यज्ञ में की हुई स्तुति असंख्य धन प्रदात्री है ।९ हे अग्निदेव ! तुम्हारे द्वारा प्रचुर सामर्थ्य पाकर हम दुःखोंसे पार हों । दूसरोको अप्राप्य धन हमारे पास असंख्य रूप में हो, हम सुर्य के समान यशस्यी हों ।१०। हे अग्ने ! तुम स्तुति सुनो, तुम शत्रु को हराने वाले हो । अन्न, धन, सन्तान प्राप्ति के लिए मनुष्य तुम्हारी यज्ञों में पूजा करते हैं ।११। हे अग्ने ! बुद्धिमान् स्तोता और यजमान सुखप्राप्ति के लिए तुम्हारे आश्रित हुए हैं । तुम,हमको उत्तम निवास प्रसन्नताप्रद धन, सन्तान आदि प्रदान करो ।१२। हे अग्ने ! जो बुद्धिमान् यजमान स्तोताओं को गवादि धन दान करते हैं,उनको और हमको उत्तम निवास दो । हम वीर सन्तान वाले होकर यज्ञ में श्रेष्ठ स्तोत्रों को गावेंगे ।१३।

(२१)

सूक्त ३

(ऋषि–गृत्समद इत्यादयः । देवता—अग्न्यादयः । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ।।१
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ।।२

ईलितो अग्ने मनसा नो अर्हन् देवान् यक्षि मानुषात् पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ।५।२२

वेदी में प्रतिष्ठित अग्नि सम्पूर्ण यज्ञ स्थान में व्याप्त है। वे यज्ञ सम्पादक, पावक, प्रकाशित होकर देवताओं का पूजन करने वाले हों ।१। नराशंस नाम वाले अग्गिदेव अपनी महत्ता से प्रदीप्त हुए तीनों लोकों को व्याप्त करते हैं। वह हवियुक्त घृत-सिंचनकी कामना वाले, देवताओ को यज्ञमें बुलावें ।२। प्रसन्न मन वाले यज्ञ में समर्थ होते हुये देवताओं का यजन करें। ऋत्विजों, मरुद्गण और अविनाशी इन्द्र के प्रति वाणी रूप स्तुति करो। कुश पर स्थित इन्द्र का पूजन करो ।३। हे कुश स्थित अग्ने ! हमको विस्तृत धन दिलाने के लिए बढ़ो। तुम बुद्धिमय और वीरतायुक्त हो। हे वसु देवताओ, विश्वेदेवो, आदित्यो तुम घृत सिंचित कुश पर विराजो ।४। हे प्रकाशित अग्निदेव ! तुम यज्ञ द्वार का उद्घाटन करो। मनुष्यों में तुम महान के प्रति हवि देते हुए सामीप्य करते हो। तुम वीरतायुक्त, यशस्वी व्यापक और वरण करन योग्य अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त हो ।५। (२२)

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७
सरस्वती साधयन्ती धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।

प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ।११।२३

उत्तम कर्म में प्रेरित करने वाली उषा और रात्रि दो स्त्रियों की तरह परस्पर अनुकूल हुई यज्ञ का स्वरूप बनाती हुई पट बुनने वालीके समान चलती हैं । वे जल सींचने वाली तथा अभीष्ट फल देने वाली है ।६। विद्वानों में देवता के समान पूज्य अग्नि होता रूप हैं । वे स्तुतियों द्वारा पूजन करते हुए देव-यज्ञ सम्पन्न करते हैं । वे पृथिवीकी नाभि रूप उत्तम वेदीमें तीनों वरणीय धर्मों के निमित्त सुसंगत होते हैं ।७। हमारी बुद्धि को कर्मों में प्रेरित करती हुई सरस्वती, इला और भारती यज्ञ मंडपमें अन्नाश्रय प्राप्त करतीहुई हमारे यज्ञ की रक्षा करें ।८। अग्नि रूप त्वष्टा के अनुग्रह से हमें शीघ्र कार्यकारी, अन्नोत्पादक यज्ञ और देवताओंकी कामना वाला वीर पुत्र प्राप्त हो । हमारी सन्तान अपने कुलका पालन करने वाली हो ओर हमें अन्न की प्राप्ति हो ।९। हमारे कर्मों के ज्ञाता अग्नि हमको प्राप्त हों । अपने उत्तम कर्मों से हव्यान्न का परिपाक कर देवों को पहुँचावें ।१०। घृत अग्नि का आश्रय स्थान एवं प्रकाश है । मैं अग्नि में घृत होमता हूँ । हे मनोरथ वर्षक अग्ने ! हविदान के समय देवों को बुलाकर उनकी प्रसन्नता प्राप्त करते हुए उनको हव्य पहुँचाओ ।११। (२३)

सूक्त ४

(ऋषि–सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता–अग्निः । छन्द- त्रिष्टुप्)

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद् देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ आ । ३
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्वंभ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ।५।२४

यजमानो ! अतिति स्वरूप अग्नि को तुम्हारे निमित्त आहूत करता हूँ। वे सब प्राणियों के ज्ञाता और मनुष्य एवं देवगण के धारक हैं ।१। भृगुवंशियों ने जिस अग्निको जल-स्थान अन्तरिक्ष और मनुष्योंमें स्थापित किया, वे द्रुत-गामी अश्व वाले हमारे शत्रुओं को हरावें ।२। देवगण ने अग्नि को मनुष्योंमें मित्र के समान स्थापित किया। वे अग्नि हविदाता के गृह में निवास कर रात्रियों में प्रकाश करते हैं ।३। जैसे अपने शरीर की पुष्टि करते हैं, वैसे अग्नि को पुष्ट करो। जब वे अग्नि अधिक बढ़ते हुए काष्ठादि का भक्षण करते हैं उस समय वे अत्यन्त तेजस्वी हो जाते हैं। जैसे रथमें जुड़ा हुआ घोड़ा अपनी पूँछ हिलाता है, वैसे उनकी ज्वालायें काष्ठ पर हिलती हैं ।४। अग्नि की महानता का गुणगान करने पर वे अपना रूप प्रदर्शित करते हैं। वे हव्य ग्रहण करने को लपटों से युक्त होते हैं तथा वे कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं करते ।५।
(२४)

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ।९।२५

प्यासे के समान अग्नि वनों को जलाते और जलों के समान भ्रमण करते हैं। वे रथ में जुते अश्व के समान शब्द करते और अपने काले मार्ग को प्रकट करते हुए भी सूर्य मण्डल के समान शोभायमान होते हैं।६। विश्व व्यापक अग्नि पृथिवी पर बढ़ते और स्वामी-हीन पशु के समान घूमते हैं। यही प्रदीप्त अग्नि वनों को भस्म कर पीड़ा देने वाले कांटों को भी मिटा देते हैं।७। हे अग्ने ! तुम्हारे प्रथम सवन की रक्षा को याद करके आज हम तृतीय सवन में रमणीय स्तुतियाँ करते हैं। तुम हमको वीरत्व, यश और सुन्दर धन प्रदान करो।८। हे अग्नि ! गुफा में बैठे हुए ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रक्षित हुए स्तोत्र उच्चारण करते हुए दिव्य धन प्राप्त करते हैं। वे श्रेष्ठ सन्तानादि पाकर शत्रुओं को हराने में समर्थ होंगे। तुम विद्वान् स्तोताओं को वरणीय धनों को दो।९। (२५)

सूक्त ५

(ऋषि–सोमाहुतिभार्गवः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्)

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ।।१
आ यस्मिन् त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ।।२
दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ।।३
साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ।।४
ना अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ।।५

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्यु रागतौ यवो वृष्टीव मोदते ।।६
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वमेमा ररिमा वयम् ।।७
यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ।८।२६

होता रूप, चैतन्यप्रद पिता के समान अग्नि पूर्व पुरुषों की रक्षा के लिए प्रकट हुए थे । हम भी हवियुक्त होकर पूज्य विजेता और रक्षा साधन सम्पन्न, अग्नि से धन प्राप्त करेंगे ।१। यज्ञ के नायक अग्नि में सात रश्मियाँ जुड़ी हैं । देवों के पोता तुल्य अग्नि मनुष्यों में पोता रूप हुए, यज्ञ के आठवें स्थान में व्याप्त होते हैं ।२। इस यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा धारण किये हव्यान्न और गायी हुई स्तुतियों को वे अग्निदेव भली प्रकार जानते हैं ।३। वह अग्नि अत्यन्त पवित्रता से उत्पन्न हुए हैं । एक डाल से दूसरी डाल पर जाकर फल तोड़ने के समान, यजमान यज्ञ को अभीष्ट दाता जानते हुए एक के पश्चात् दूसरा यज्ञ करते हैं ।४। मेष्टा अग्निकी सेवा में दस उँगलियाँ धेनु रूपसे सींचने वाली होती हैं तथा इनके गार्हपत्य आदि रूपों की पूजा में लग जाती हैं ।५। मातृभूमि वेदी के पास भगिनी के समान जुहू को घृत से पूर्ण करके रखते हैं, तब वृष्टि से बढ़ने वाले जौ के समान अग्निभी पुष्टि को प्राप्त होते हैं ।६। यह अग्नि उत्तम कर्म के लिए ऋत्विक् के समान होते हैं । हम उनके लिए स्तोत्र और हवि देते हुए यज्ञ करें ।७। हे अग्ने ! तुम्हारी महत्ता को जानने वाला यजमान सब देवताओं को तृप्त कर सके, वह कार्य करो । हम जिस यज्ञ को करते हैं, वह तुम्हारा ही है ।८। (२६)

सूक्त ६

(ऋषि—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ।।१

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥२
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥३
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥४
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५
ईलानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥६
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन् त्सत्सि बर्हिषि ।८।२७

हे अग्ने ! मेरी समिधा और आहुतियों को ग्रहण करो ! मेरे स्तोत्र को सुनो ।१। हे अग्निदेव ! हम तुम्हें आहुतियों से प्रसन्न करें । तुम उत्तम जन्म वाले, बल के पुत्र हो । यज्ञ का विस्तार करते हो । हमारी स्तुति से प्रसन्न होओ ।२। हे धनदाता अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना वाले, स्तुतिके योग्य हो । हम, तुम्हारे साधक स्तुतियोंसे प्रार्थना करते हैं ।३। हे अग्ने! तुम मेधावी धन देने वाले हो । उठकर हमारे शत्रुओं को भगा दो ।४। अग्नि, हमारे लिए, अन्तरिक्ष से जल वर्षा करते हैं । वह हमें महाबली बनावें और असंख्य अन्न प्रदान करें ।५। हे अतियुवा अग्ने ! मेरी स्तुतियों के प्रति आओ । मैं तुम्हारे आश्रय की इच्छा से पूजन करता हूँ ।६। हे अग्नि ! तुम मनुष्यों के मनों की बात जानते हो । तुम उनके दोनों जन्मों की बात जानते हो । तुम ज्ञानी, मित्रों का हित करने वाले तथा दूत रूप हो ।७। हे अग्ने ! तुम ज्ञानी हो हमारी अभिलाषाएं पूरी करो । तुम चैतन्यप्रद हो । देवताओं का यज्ञ करने के लिए कुश पर विराजो ।८। (२७)

सूक्त ७

(ऋषि–सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री ।)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३
शुचिः पावक वन्द्यो ऽग्ने बृहद् वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४
त्वं नो असि भारताऽग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५
द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ।६।२८

हे अतियुवा अग्ने! तुम पालक,पोषक प्रशंसनीय और प्रकाशवान हो। बहुतों द्वारा इच्छित धनों को यहाँ लाओ ।१। हे अग्ने ! शत्रुओं का पक्ष लेकर हमको न हराओ। हमारी हर प्रकार रक्षा करो ।२। हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा होने से हम स्वयं समर्थ हो सकेंगे ।३। हे पावक ! तुम पूजनीय हो। घृत की आहुतियों द्वारा तुम अत्यन्त प्रकाशवानहो ।४। हे अग्ने ! तुम पालनकर्त्ता हो। हमारी सुन्दर गौओं, बैलों और बछड़ों द्वारा पूजित हो ।५। मेधावी, बल के पुत्र, यज्ञ-सम्पादक, प्राचीन, समिधा रूप अन्न वाले, घृत सिंचन के इच्छुक अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ।६। (२८)

सूक्त ८

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—अग्नि । छन्द—अनुष्टुप्)

वाजयन्निव नू रथान् योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीलहुषः ॥१
यः सुनीथो ददाशुषे ऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥२
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥३
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥४
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ।६।२९

जो अग्नि अश्व के समान आचरण वाले, रमणीय अन्न वाले तथा इच्छित वर्षा करने वाले हैं, उनका गुणगान करो ।१। जो अग्नि नायक रूपसे

उत्तम गति वाले हैं, उनको हविदाता शत्रु-नाश के निमित्त बुलाता है।२। जो अग्नि उत्तम ज्वालाओं से युक्त हुए घरों में प्रतिष्ठित हुए नित्य पूजे जाते हैं, उनका कर्म अक्षुण्ण रहता है।३। रश्मिवान् सूर्यके समानही जरा रहित अग्नि भी लपटो सहित प्रकाशित होते रश्मियों से शोभायमान होते हैं।४। शत्रु नाशक और सुशोभित अग्नि अत्यन्त तेजोमय हैं। इनकी शोभा अद्भुत है। हम अग्नि, इन्द्र, सोम तथा अन्य देवों का आश्रय प्राप्त कर चुके हैं।५। अब कोई हमारा अनिष्ट नहीं कर सकता। हम शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ हों।६। (२९)

॥ इति पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥

सूक्त ६

(ऋषि—गृत्समदः, भार्गवः शौनकः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनाभप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ॥२
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे।
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४
उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि।६।१

वह अग्नि मेधावी प्रदीप्त, बलवान्, दिव्य होता, आश्रयभूत, पोषक, सत्यवक्ता और ज्वालायुक्त हैं। यज्ञशाला में उत्तम आसन पर विराजमान हों

।१। हे इच्छित वर्षा करने वाले अग्ने ! हमारा दौत्य,कर्म करो । हमारी ओर हमारे पुत्रों की रक्षा करो ।२। हे अग्ने ! तुम्हारे जन्म स्थान में तुम्हें पूजेंगे । जहाँ प्रकट हुए हो उस स्थान की पूजा करेंगे । वहाँ प्रदीप्त होने पर तुम्हें हवियाँ दी जाती है ।३। हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ यज्ञकर्त्ता हो । हमको दिये जाने योग्य अन्नों को देवताओं से दिलाओ । तुम धन के स्वामी हो । हमारी स्तुति के ज्ञाता बनो ।४। अग्ने ! तुम दर्शनीय एवं दुःख-नाशक हो । तुम्हारा दिव्य या पार्थिव,कोई भी ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता । स्तोताको अन्न दो और उसे वनों का अधिपति बनाओ ।५। हे अग्ने ! तुम अपने साथियों सहित हम पर दया करो । तुम देवताओं के पोषक, हमारे रक्षक और अहिंसित हो । ऐश्वर्य से युक्त तुम सर्वत्र प्रकाशवान हो ।६। (१)

सूक्त १०

(ऋषि—गृत्समदः, भार्गवः शौनकः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेलस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाहं चक्रे विभृत्रः ॥२
उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३
जिघर्म्यग्नि हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ॥४
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥५
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद् वदेम ।
अनूनमग्नि जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ।६।२

अग्नि होता और पिता रूप हैं। वे मनुष्यों द्वारा यज्ञ स्थान में प्रदीप्त किये जाते हैं। वे प्रकाशवान, अमर, मेधावी अन्न और ब ल से युक्त सबके द्वारा सेवा करने योग्य हैं।१। बुद्धिमान्, अद्भुत प्रकाश वाले अविनाशी अग्नि मेरे आह्वान को सुनें। उनके लाल रङ्ग के घोड़े उन्हें विभिन्न स्थानों में पहुँचाते हैं।२। अध्वर्युओंने दो अरणियों से अग्निको उत्पन्न किया। वे विविध वेशों में गर्भ रूप से व्याप्त होते और रात्रि में अत्यन्त प्रकाशसे युक्त और सब लोकों के पालक हैं। वे बुद्धि को प्राप्त हुए हवियों द्वारा व्याप्त होते हैं। हम उन दर्शनीय अग्नि का घृतयुक्त हवियों से पूजन करते हैं।३-४। सर्वव्यापो यज्ञ की कामना वाले अग्नि को हम घृत से सींचते हैं। वे शान्ति पूर्वक उसे सेवन करें। अग्नि के पूर्ण प्रदीप्त होने पर उन्हें स्पर्श करने में कोई समर्थ नहीं।५। हे अग्ने ! अपने तेज से शत्रुओं को हराते हुए हमारी कामना योग्य स्तुतियों को समझो। तुम्हारे आश्रय में हम मनु के समान स्तुति करते हैं। तुम धन-दाता हो, हाथ में जुहू लेकर मैं तुम्हें स्तोत्रों से बुलाता हूँ।६। (२)

सूक्त ११

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः, शौनकः। देवता–इन्द्रः। छन्द–विराट्स्थाना, त्रिष्टुप्)

श्रुधीं हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥१
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः॥२
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः॥३
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः॥४

गुहा हितं गुह्यं गूयहमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ।५।३

हे इन्द्र ! मेरी स्तुति श्रवण करो। मेरा निरादर न करो। हम तुम से धन लेने के योग्य है। यह नदी की तरह प्रवाहयुक्त हवि यजमान के लिए धन की कामना करती है। यह तुम्हें बढ़ावे ।१। हे वीर इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा बरसाये गये जलपर वृत्र नें आक्रमण किया, तुमने उस जलको मुक्त कर दिया। वह वृत्र अपनेको अमर समझता था, ररन्तु स्तुतियों से वृद्धि प्राप्त कर तुमने उसे धराशायी किया ।२। हे वीर इन्द्र ! तुम जिन सुखकारी स्तोत्रोंकी कामना करते हो, वे स्तोत्र प्रकाशवान हुए यज्ञमें तुम्हारे निमित्त प्रकट होते हैं ।३। हे इन्द्र ! स्तुतियों से हम तुम्हारा बल बढ़ाते और वज्र भेंट करते हैं। तुम उन दस्युओं को सूर्य के समान तेज से हराते हो ।४। हे इन्द्र ! गुफा में छिपे हुए जिस वृत्र ने अपनी अद्भुत शक्तिसे अन्तरिक्ष और आकाश को, आश्चर्यान्वित किया उसे तुमने वज्र से मार डाला ।५। (३)

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ।।६
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टाऽरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ।।७
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन् नि ।।८
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ।।९
अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रो ऽमानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत् पपिवान् त्सुतस्य ।१०।४

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे महान् यश को गाते हैं और इन नवीन अद्भुत कर्मों की प्रशंसा करते हैं। तुम्हारे चमकते हुए वज्र की, ध्वज

की और अश्वों की स्तुति करते हैं ।६। हे इन्द्र ! तुम्हारे द्रुतगामी अश्व जल-वर्षक मेघ की ध्वनि वाले हैं । समतल भूमि मेघ की गर्जना से प्रसन्न होती और मेघ भी सर्वत्र वर्षा करते हुए सुशोभित होते हैं ।७। मेघ अन्तरिक्ष में पहुँचकर जल के साथ घूमने लगा । मरुद्गण ने उसके शब्द को बढ़ाते हुए सर्वत्र व्याप्त किया ।८। महाबली इन्द्र ने मेघ में छिपे हुए वृत्रका वध किया । इन्द्र के वज्र द्वारा जल-वर्षक शब्द से आकाश पृथिवी भयभीत हुई,कांप गयी ।९। जब मनुष्यों का हित करने वाले इन्द्र ने वृत्र को मारने की इच्छा की तब उनका वज्र गरजने लगा । इन्द्र ने सोम पीकर दैत्यकी मायां को छिन्न-भिन्न कर दिया ।१०।　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(४)

पिबापिबदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रभाव ॥११
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्ति सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२
स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्त ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवाऽस्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत् सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान् त्सु पृत्स्वा तरुत्राऽवर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ।१५।५

हे इन्द्र ! इस निचोड़े हुए सोम को पियो वह तुम्हें प्रसन्नता दे । उससे तुम्हारी उदर-पूर्ति हो । उदर को पूर्ण करने वाला सोम तुम्हें तृप्ति दे ।११। हे इन्द्र ! हम बुद्धिमान तुम्हारे हृदयमें स्थान प्राप्त करेंगे । कर्मफल की इच्छा से तुम्हारा यज्ञ करेंगे । तुम्हारे आश्रय के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं जिससे हम तुम्हारा दिया हुआ धन शीघ्र पा सकें ।१२। हे इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय की कामना से तुम्हें हवियों से बढ़ाने वालों के समान हम भी तुम्हारा

आश्रय प्राप्त करें। तुम हमको इच्छित, वीर पुत्र युक्त धन प्रदान करो।१३। हे इन्द्र! हमको निवास, बन्धु और महान् पौरुष दो वायु के साथ बल वाले देवगण इस सोमरस को पीवें।१४। हे इन्द्र! तुम्हारे सहायक मरुद्गण सोमपान करें। तुम भी इस तृप्ति देने वाले सोमको पिओ। तुम शत्रुओंका हनन करने वाले हो पूज्य मरुतों के साथ हमको युद्ध में बढ़ाओ।१५। (५)

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत् त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद् दानुमौर्णवाभम्।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत् तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।२१।६

हे इन्द्र! तुम अनिष्ट का निवारण करते हो। तुम्हारा सेवक शीघ्र ही महानता प्राप्त करता है। कुश बिछा कर तुम्हारी पूजा करने वाले तुम्हारे आश्रय से गृह और अन्नादि पाते हैं। १६। हे वीर इन्द्र! तुम तीनों लोकों में सूर्य के समान हुए सोम पीओ। फिर अपनी मूँछों को पोंछकर प्रसन्नतापूर्वक अश्वों के द्वारा यहाँ आओ।१७। हे इन्द्र! जिस बल से तुमने उस दानव वृत्र को कीड़े की तरह मार डाला उसी बल को धारण करो। तुमने मनुष्यों के लिए सूर्य का प्रकाश दिखाया और दस्युओं को हटा दिया।१८। हे इन्द्र! तुम्हारे जिस आश्रित ने अहङ्कारियों या दस्युओं को भगा दिया, हम उसकी स्तुति करते हैं। तुमने "त्रित" की मित्रता के

लिए त्वष्टा के पुत्र 'विश्वरूप' को नष्ट किया था। हमारे निमित्त भी वैसे ही मित्र भाव वाले होओ ।१९। 'त्रित' द्वारा बढ़े हुए इन्द्र ने 'अर्बुद' को मारा। सूर्य द्वारा अपने रथके पहिए को चलाने के समान इन्द्रने अङ्गिराओं की सहायता से वज्र घुमाकर शत्रु को नष्ट किया ।२०। हे इन्द्र ! वह तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वालों का अभीष्ट पूर्ण करती है, उसे हमको प्रदान करो। उसे हमारे सिवाय किसी अन्य को मत देना। हम सन्तान युक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ।२१। (६)

सूक्त १२ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः, शौनकः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्।)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥२
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ।५।७

जो अपनी शक्ति सहित प्रकट होकर मनुष्यों में अग्रगण्य हुए और जिन्होंने देवगण को वीर कर्मों से विभूषित किया। आकाश और पृथिवी जिनके बल से डर गई, वे इन्द्र है। १। जिन्होंने काँपती हुई पृथिवी को दृढ़ता दी और भड़कते हुए पर्वतों को शांत किया, जिन्होंने अन्तरिक्ष को बना कर आकाश को सहारा दिया, वे इन्द्र हैं ।२। जिन्होंने वृत्र वध करके सप्त नदियों को बहाया और राक्षस द्वारा रोकी हुई गायों को मुक्त किया, जो मेघों में अग्नि उत्पन्न करते और युद्ध में शत्रुओं को मारते हैं, वह इन्द्र

है।३। जिन्होंने संसार को रचा और दुष्टों को निम्न गुफाओं में बसाया, जो शत्रु के धनों को जीतते हैं, वे इन्द्र हैं।४। जिनके सम्बन्ध में लोग जिज्ञासा करते और जिनकी चर्चा करते हैं। जो शत्रुओं के धन को शासक के समान छीन लेते हैं, वे इन्द्र हैं।५। (७)

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद् रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं वभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९
यः शश्वतो मह्योनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ।१०।८

अत्यन्त धन देने वाले, दरिद्र, याचक और स्तुति करने वालेको धनदाता सुशोभित यजमानों के पालक जो हैं, वही इन्द्र हैं।६। जिनकी आज्ञा में अश्व, गौ, रथादि है, जो सूर्य और उषाके नियामक और जल प्रेरणा करने वाले हैं, वह इन्द्र हैं ।७। युद्ध में जिन्हें आहूत करते हैं। ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र सभी जिन्हें बुलाते हैं, वह इन्द्र हैं।८। जिनकी उपेक्षा से जय-लाभ नहीं होता, रक्षा के लिए जिनका आह्वान किया जाता है, जो दृढ़ पर्वतों को भी नष्ट करने में समर्थ हैं वही इन्द्र हैं।९। जिन्होंने पापियों, अकर्मशीलों को नष्ट किया, जो स्वाभिमानी को सिद्धि देते और दुष्टों को मारते हैं, वे इन्द्र हैं।१०। (८)

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ।।१२
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य प्रर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ।।१३
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ।।१४
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाज दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ।१५।६

जिन्होंने पृथ्वी में छिपे 'शम्बर' नामक दैत्य तथा सोते हुए महाबली 'अहि' को मारा, वे इन्द्र हैं ।११। जो वाराह रूप वाले, महान्, विद्युत् के समान तेजस्वी, रश्मिवान्, इच्छित वर्षक एवं सप्त नदियों के प्रवाहित करने वाले, बाहु में वज्र धारण करते हैं तथा जिन्होंने स्वर्गाकांक्षिणी 'रोहिणी' को रोक दिया, वे इन्द्र हैं ।१२। जिनके सामने पर्वत कम्पायमान होते हैं, आकाश पृथिवी जिन्हें प्रणाम करती हैं, जो सोमपायी, दृढ़ अङ्ग वाले और वज्र बाहु हैं, वे इन्द्र हैं ।१३। जो सोम छानने वाले के रक्षक और पुरोडाश सिद्ध करने वाले स्तोता के पालक हैं जिनके स्तोत्र हमारे लिए अन्नके समान हैं, वे इन्द्र हैं ।१४। हे इन्द्र ! तुम सोम छानने वाले और यजमान को अन्न देते हो, तुम सत्य स्वरूप हो । हम प्रिय सन्तानादिसे युक्त हुए तुम्हारी स्तुति का गान करेंगे ।१५। (६)

सूक्त १३

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः, शौनकः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् जगती ।)

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद् यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पर्योऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ।।१
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ।।२

अन्वेको वदति यद् ददाति तद् रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ।। ३
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ।।४
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन् त्सास्युक्थ्यः ।५।१०

सोम वर्षा से उत्पन्न होता है, जल में बढ़ता है। जल की सारभूत सोम लता बढ़ती हुई निचोड़े जाने के योग्ग होती है। वही अमृत तुल्य सोम इन्द्र का पेय है ।१। जल बहाने वाली नदियाँ सर्वत्र प्रवाहित होती हुई समुद्रमें जाती हैं। जल निचले मार्ग पर चलता है। हे इन्द्र ! तुम वह सब कार्य कर चुके हो, अतः प्रशंसा के योग्य हो ।२। एक यजमान दान करता है दूसरा उसका गुणगान करता है। एक जल उत्तम पदार्थों को नष्ट करता, दूसरा अवगुणों का शोधन करता है। हे इन्द्र! इन कर्मों के कर चुकनेके कारणही तुम प्रशंसित हो ।३। हे इन्द्र! गृहस्थ जैसे अभ्यागतोंको धनदान करते हैं वैसेही तुम्हारा धन प्रजाओं में व्याप्त है, मनुष्य जैसे भोजन को चबाता है वैसे ही तुम'प्रलयकाल में इस सृष्टि को चबा जाते हो। हेन्द्र ! अपने कर्मों से ही तुम स्तुति के पात्र हो ।४। हे इन्द्र ! तुमसे आकाश-पृथिवी को सुन्दर बनाया। नदियों के मार्ग को बनाया। तुम वृत्र के मारने वाले हो। जैसे तुम अश्व को पानी पिलातेहो, वैसे ही साधक तुम्हें स्तुतियाँ भेंट करते हैं ।५। (१०)

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ।।६
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा ऽधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ।।७
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ।।८

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून् त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षलस्तभ्ना विष्टिपः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ।१०।११

हे इन्द्र ! तुम अन्न और धन देने वाले हो । गीले वृक्ष से सूखे फल उपजाते तथा वर्षा से सूखा अन्न प्राप्त कराते हो । तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं हैं, इसलिए स्तुति के योग्य हो ।६। कर्म द्वारा फूल फल युक्त वनस्पति की रक्षा करते हो,सूर्य को ज्योति देकर उसे प्रकाशित करतेहो । तुमने अपनी महत्ता से हो सब प्राणियों को प्रकट किया, इसलिए प्रशंसा के योग्य हो ।७। हे असंख्वकर्मा इन्द्र ! हवि ग्रहण करने और असुरों का नाश करने के निमित्त तुमने वज्र का मुख खोला । तुम प्रशंसा के योग्य हो ।८। हे इन्द्र ! तुम सहस्रों धनों के स्वामी हो । ऋषि के लिए तुमने राक्षसों को बिना रस्सी ही घेर कर मार डाला । इसलिये तुम प्रशंसा-योग्य हो ।९। सब नदियाँ इन्द्र के बल से चलती हैं । साधक इन्द्र को हवि देते हैं । हे इन्द्र ! तुमने आकाश, पृथिवी, दिवस, रत्रि, जल तथा औषधि आदि को स्थापित किया है । अतः तुम प्रशंसा के पात्र हो ।१०। (११)

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११
अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः ॥१२
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१३।१२

तुम्हारा पुरुषार्थ आदर के योग्य है । तुम शत्रु के धन को कर्म से प्राप्त करते हो । तुमने उत्पन्न हुओं को अन्न दिया । इन सब कार्यों के कारण तुम स्तुति के पात्र हो ।११। हे इन्द्र ! तुमने 'तुर्वीति' और 'वय्य' को जल के पार

किया और अन्धे तथा पंगु परावृज का उद्धार किया, तुम स्तुति के योग्य हो ।१२। हे इन्द्र ! हमको उपभोग्य धन दो । तुम्हारा दान वास योग्य तथा दिव्य है । हम नित्य प्रति उसकी कामना करते हैं । हम सन्तानादिसे युक्त हुए स्तुति करते हैं ।१३। (१२)

सूक्त १४

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः, शौनकः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायं एष इन्द्रो अर्हतिपीतिमस्य ॥२
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ।६।१३

हे अध्वर्युओं ! इन्द्र के निमित्त सोम लाओ । चमस द्वारा अग्नि में हवि दो । सोम-पान के इच्छुक इन्द्र को सोम भेंट करो ।१। वज्र द्वारा जल को रोकने वाले वृत्र के वधकर्त्ता इन्द्र के निमित्त सोम लाओ । इन्द्र सोम पीने के योग्य हैं ।२। जिस इन्द्र ने गायों का उद्धार किया और राक्षसों को मारा उस इन्द्र के लिए सोम को व्याप्त करो और वस्त्र से आच्छादित करने के समान इन्द्र को सोम से ढक दो ।३। जिस इन्द्र से निन्यानने भुजा वाले 'उरण' तथा 'अर्बुद' का हनन किया, उसी इन्द्र को सोम सिद्ध होने

पर भेंट करी ।४। जिन इन्द्र ने 'स्वश्न' को मारा, 'शुष्ण' के कन्धे काट डाले, 'पिप्रु' 'नमुचि' और 'तुम्रिका' का हनन किया, उन्हीं इन्द्र को हवि दो ।५। जिन इन्द्र ने वज्र से शम्बर' के पाषाण-नगरों का विध्वंस किया तथा 'वर्ची' के एक लाख अनुयायियों को धराशायी किया, उन्हीं इन्द्र के निमित्त सोम रस ले आओ ।६। (१३)

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग् भरता सोममस्मै ॥७
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८
अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१२।१४

जिस रिपुनाशक इन्द्र ने एक लाख दैत्यों को धराशायी किया तथा 'कुत्स', आयु और 'अतिथिग्व' के द्वेषियों को मारा उसी इन्द्र के लिए सोम लेकर आओ ।७। हे अध्वर्युओं ! इन्द्रको सोम भेंट करनेपर तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, हाथों से सिद्ध किये उस सोम को लाकर इन्द्र को दो ।८। अध्वर्युओं ! इनको हर्षित करने वाला सोम तैयार करो । जल में शुद्ध किये सोम लाओ । इन्द्र तुमसे सोम चाहते हैं, उनके लिए आह्लादकारी सोम भेंट करो ।९। अध्वर्युओं ! गौओं के निचले अङ्गमें दूध भरे रहने के समान, इन्द्र को सोमसे भर दो । मैं सोम के स्वभाव का राजा हूँ । इन्द्र उससे हर्षित होकर यजमान को सुखी करते हैं ।१०। इन्द्र आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष के ऐश्वर्यों के

स्तोत्र हैं। जैसे जौ से बर्तन भरा जाता है, वैसे ही सोम से इन्द्र को भर दो ।११। हे उत्तम वास देने वाले इन्द्र ! हमको भोगने योग्य धन दो। तुम्हारा दान अद्भुत हैं, हम नित्य ही इसकी इच्छा करते हैं। श्रेष्ठ सन्तानोंसे युक्त हुए हम इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ।१२। (१४)

सूक्त १५

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः, शौनकः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवी पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३
स प्रवोलह्न् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
स गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४
स ईं मही धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।५।१५

मैं शक्तिशाली हूँ। सत्य विचार वाले के महान् यशों का बखान करता हूँ। इन्द्र ने सोम-पान से उत्पन्न बल से बढ़कर 'अहि' को मारा ।१। इन्द्र ने सूर्य-मण्डल को रोक रखा है। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को तेज दिया है। इन्द्र ने यह सब कार्य सोम से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा किये हैं।२। इन्द्र ने इस अखिल विश्व का मुख पूर्व की ओर रखा है। उन्होने वज्र से नदी के द्वारों को खोल कर दीर्घकाल तक प्रवाहित रहने योग्य मार्गों पर बहाया। इन्द्र ने ये कार्य सोम से उत्पन्न बल से किये ।३। 'दभीति' ऋषि को नगर से बाहर ले जाते हुए राक्षसों को रोक कर उनके शास्त्रों को इन्द्र ने

भस्म किया । फिर दभीति को गवादि धन दिया । सोम द्वारा उत्पन्न शक्तिसे इन्द्र ने यह कर्म किया ।४। इन्द्र ने, पार जाने के लिए नदी को शांत कर असमर्थ व्यक्तियों को पार लगाया । वे धन को लक्ष्य करते हुए नदी से पार हुए । इन्द्र ने सोम के आनन्द में यह कार्य किया ।५। (१५)

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन् त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७
भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।८
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिभावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्व ता मद इन्द्रश्चमार ॥९
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदम विदथे सुवीराः॥१०॥१६

इन्द्र ने अपनी महिमा से सिन्धु नदी को उत्तर की ओर प्रवाहित किया । वज्र द्वारा उषा के रथ को तोड़ा । यह कार्य इन्द्र ने सोम के बल से किया।६। अपने बिवाह को आयी हुई कन्याओं को भागता देखकर परावृज पंगु होते हुए भी उठकर दौड़ पड़े । नेत्र विहीन होनेपर भी देखने में समर्थ हुए उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पाँव और नेत्र दिये । यहकार्य उन्होंने सोम-जनित प्रसन्नता में किया ।७। अङ्गिरावंशियों की स्तुति पर इन्द्र ने बल को विभक्त किया और पर्वतके द्वार को खोला तथा कृत्रिम बाधायें दूर की । सोम के हर्ष में इन्द्रने यह काम किया ।८। हे इन्द्र चुमुरि और धुनि नामक दैत्यों को तुमने मारा तथा दभीति ऋषि को रक्षा की । सोम के हर्ष में तुमने यह किया ।९। हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तोता का अभीष्ट पूरा करती है, वही

हमें दो। किसी अन्य को न देना। हम संतान युक्त होकर यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करेंगे।१०। (१६)

सूक्त १६

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः, शौनकः। देवता–इन्द्रः। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्।)

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे॥१
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन् त्संभृताधि वीर्या।
जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम्॥२
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु॥३
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना॥४
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति।५।१७

हम तुम्हारे निमित्त उन महानतम इन्द्र के प्रति प्रदीप्त अग्नि में हवि देते हैं और सुन्दर स्तुति गाते हैं। उन अजर, परन्तु विश्व को बुढ़ापा देने वाले सोम-पायी इन्द्र का आह्वान करते हैं।१। इन्द्र के बिना जगत् कैसा? वह सर्व-शक्तिमान् और विराट हैं। सोम-रस धारण करने वाले बली और तेजस्वी हैं। वे ज्ञानी और वज्रधारी हैं।२। हे इन्द्र! जब तुम अपने अश्व पर सुदूर गमन करते हो तब आकाश और पृथिवी तुम्हारे बल को जीत नहीं सकती। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथ को नहीं रोक सकते। तुम्हारे बल का सामना कोई नही कर सकता।३। यजन योग्य शत्रुहन्ता वर्षक इन्द्र का सभी यज्ञ करते हैं। हे विद्वान्! तुम सोम देने वाले हो। इन्द्र के लिए यज्ञ करो।

हे इन्द्र ! कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि के साथ सोम पियो ।४। मदकारी और इच्छितवर्षी सोम अनुष्ठान करने वालों के निमित्त इन्द्र की ओर जाता हैं । अध्वर्यु पाषाण द्वारा सोम को कूटते-छानते हैं ।५। (१७)

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥६
प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेन दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निवोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।९।१८

हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, रथ, अश्व और आयुध सभी अभीष्ट वर्षण करने वाले हैं । तुम हर्षकारी सोम के अधिकारी हो । अतः उसके द्वारा तृप्ति को प्राप्त करो ।६। हे इन्द्र ! तुम रिपुहन्ता हो । स्तोता को युद्ध में नाव की तरह बचाते हो । यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करता हुआ मैं तुमको प्राप्त होता हूँ । हमारे स्तोत्र को भले प्रकार जानो । हम तुम्हें सींचेंगे ।७। जैसे घास खाकर गाय बछड़े को लौटाती हे, वैसे ही हमें भी अनिष्ट से लौटाओ । हे शतककर्मा इन्द्र ! जैसे पत्नियाँ पतियोंको प्रसन्न करती हैं, वैसे हो हम भी अपने रुचिकर स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्यवाली दक्षिणा स्तोता के अभीष्ट पूर्ण करती है, वह दक्षिणा हमें प्रदान करो किसी अन्य को नहीं । हम सन्तान युक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ।९। (१८)

सूक्त १७

(ऋषि–गृत्समदः, भार्गवः, शौनकः । देवता–इन्द्रः । छन्द्र–जगती, त्रिष्टुप् ।)

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद् यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुस्ममैरया ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥३
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृन् प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद् रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत् सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४
स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा ऽधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवी विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ।५।१९

मनुष्यो ! अङ्गिराओं के समान नवीन स्तोत्रों से इन्द्र को पूजो । इन्द्र का तेज सूर्य रूप से उदय होता है सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण इन्द्र ने वृत्र द्वारा रोके हुए मेघ को खोला ।१। इन्द्र ने युद्ध काल में, शत्रुनाश की इच्छा से सोम-पान के निमित्त अपनी महिमाको बढ़ाया । वे इन्द्र प्रसन्न हों । उन्होंने अपने मस्तक पर सूर्य-लोक को धारण किया ।२। हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी हो । स्तुतिसे प्रसन्न होकर तुमने शत्रु को नष्ट करने वाली शक्ति प्रकट की । तुम्हारे रथ में जुड़े हुए घोड़ों के कारण दुष्ट लोग दल बद्ध होकर ओर कुछ छिन्न-भिन्न होकर भाग गये ।३। बहुत अन्न वाले इन्द्र सब संसार के स्वामी है । उन्होंने आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया । उन्होंने अन्धकार को सर्वत्र प्रेरित करते हुए विश्व को ढक दिया ।४। इन्द्रने गमनशील पर्वतों को अचल किया । मेघ से जल को गिराया । संसार को धारण करने वाली पृथिवी को अपने बल से धारण किया और आकाश को इस प्रकार स्थापित किया, जिससे वह गिर न सके ।५। (१९)

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ॥६
अमाजूरिव पित्रोः सचा सतीं समानादा सदसत्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ॥७

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः॥८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्री दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् विदथे सुवीराः ।६।२०

इन्द्र अखिल विश्व के रक्षक और समस्त प्राणियों के प्रकट करने वाले हैं । यशस्वी इन्द्र ने 'क्रिवि' को वज्र मार कर धराशायी किया ।६। हे इन्द्र ! माता-पिता के घरपर सदा रहने वाली पुत्री जैसे अपने पितृकूल से भरणपोषण के लिए धन-भाग चाहती है,वैसे ही मैं तुमसे धन माँगताहूँ । उस धनको प्रकट करो । मुझे उपभोग्य धन दो और स्तुति करने वालों को भी धनसे संतुष्ट करो ।७। हे पालनकर्ता इन्द्र ! तुम कर्म और अन्न के प्रेरक हो । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हमको विविध रक्षा-साधनों द्वारा आश्रय दो । तुम अभीष्ट वर्षण में समर्थ हो, हमको अत्यन्त धनवान् बनाओ ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारी धन युक्त दक्षिणा सब इच्छा-पूर्ति करती है । तुम भजन के योग्य हो । हमको वही दक्षिणा दो, अन्य को नहीं । हम सन्तान युक्त हुए यज्ञ में स्तुति करेंगे ।६।

(२०)

सूक्त १८

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४

आ विंशत्या त्रिशता याह्यर्वाङ्ग चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा ऽऽवष्टचा सप्तत्या सोमपेयम् ।५।२१

यह स्तुति के योग्य पवित्र यज्ञ उषा काल में प्रारम्भ हुआ। इसमें चार पाषाण तीन स्वर सात छन्द और दश प्रकार के पात्र हैं। यह मनुष्यों को दिव्यता प्रदान करता है। यह रमणीय स्तोत्र और हवियों से सिद्ध होगा।१। यह यज्ञ तीनों सवनों में इन्द्र को सन्तुष्ट करने वाला है। यह मनुष्यों के लिए शुभ फल-दाता है। ऋत्विग्गण सिद्ध-स्तोत्र प्रकट करते हैं। अभीष्ट पूरक यज्ञ अन्य देवताओं से सुसङ्गत होता है।२। नवीन स्तोत्रों द्वारा इन्द्र के रथ में अश्व संयोजित किये जाते हैं। इस यज्ञमें अत्यन्त बुद्धिमान् स्तोताहैं। हे इन्द्र! अन्य यजमान तुम्हारी तृप्ति करने में समर्थ नहीं है।३। हे इन्द्र! आहूत हुए तुम अपते विभिन्न संख्यक अश्वों द्वारा सोम-पान के लिये आओ। यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है, इसे त्यागना नहीं।४। हे इन्द्र! तुम बीस, तोस, चालीस, पचास, साठ और सत्तर गति वाले घोड़ों को रथों से जोड़कर सोम पीने के लिये यहाँ आओ।५। (२१)

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङ्ग शतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूरसवने मादयस्व ॥७
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।९।२२

हे इन्द्र! अस्सी, नव्वे और सौ अश्वों द्वारा हमको प्राप्त होओ। तुम्हारी प्रसन्नता के लिए पात्र में सोम प्रस्तुत हैं।६। हे इन्द्र! मेरी स्तुति से प्रसन्न होओ। संसार व्यापी अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़ों।

तुम्हें बहुत से यजमान बुलाते हैं। तुम इस यज्ञ में बल प्राप्त करो ।७। इन्द्र की मैत्री कभी न छूटे। यह दक्षिणा हमको इच्छित फल दे। हम विपत्ति को दूर करने वाले इन्द्र को चाहते हैं। हम सभी युद्धों में जीतें ।८। हे इन्द्र ! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वाले की इच्छा पूर्ण करने वाली है, वह हमारे सिवाय अन्य को प्राप्त न हो। तुम स्तुति के योग्य हो। हम सन्तानयुक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ।९। (२२)

सूक्त १९

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्।)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो ऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत् सूर्यं विदद् गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा ऽऽदेवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद् रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ।५।२३

सोम छानने वाले यजमान की हर्षवर्द्धक हवियों को प्रसन्नता के लिए इन्द्र सेवन करें। इससे बढ़े हुए इन्द्र इसी में वास करते हैं। इन्द्र के स्तोत्रों की कामना वाले ऋत्विक् भी इसमें वास किये हुए हैं ।१। इस हर्ष सम्पन्न सोम से आह्लादित इन्द्र ने वज्र धारण कर जल रोकने वाले 'अहि' को छेद डाला। उस समय पक्षियों के पुष्करिणी के सामने जा के समान प्रसंनताप्रद जल-राशि समुद्र के सामने पहुँचने लगी ।२। पूजनीय एवं अहिमर्दक इन्द्र ने जल-प्रवाह को समुद्र के सामने भेजा। समुद्र को

बनाकर उसने गौएँ प्राप्त की और अपने तेज की शक्ति से सूर्य को प्रकाशित किया।३। हविदाता यजमान को इन्द्र ने श्रेष्ठ धन दिया। वृत्र को मारा और सूर्य को पाने के लिए स्तुति करने वालों में विरोध होने पर इन्द्र ने अपने साधकों को शरण दी।४। सोम छानने वाले 'एतश' के लिए, स्तुति किये जाने पर इन्द्र सूर्य को लाये। क्योंकि पिता को पुत्र द्वारा धन देने के समान एतश ने यज्ञ में इन्द्र को सोम भेंट किया था।५। (२३)

स रन्धयत् सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः॥९॥२४

इन्द्र ने अपने सारथि 'कुत्स' के लिए 'शुष्ण', 'अशुष' और 'कुयव' को वश में किया और 'दिवोदास' के लिए 'शम्बर' के निन्नानवे नगरों को तोड़ा।६। हे इन्द्र ! अन्न की इच्छा से हम तुम्हें स्तुतियों से बलवान् बनाते हैं। तुम्हें प्राप्त कर हम सप्तपदी मैत्रीका लाभ पावें। देवविरोधी "पीयु" के प्रति वज्र चलाओ।७। हे इन्द्र ! जाने के लिए मार्ग साफ करने वाले के समान हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र रचते हैं। तुम्हारे स्तोत्रों की कामना कर अन्न, बल, निवास और सुख को प्राप्त करें।८। हे इन्द्र तुम्हारी धन वाली दक्षिणा स्तोता की इच्छाएँ पूर्ण करती हैं। वह हमारे सिवा अन्य को न मिले। हम सन्तानयुक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करेंगे।९। (२४)

सूक्त २०

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, विराट्रूपा)

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥१
त्वं न यन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरमि यो नक्षति त्वा ॥२
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च प्रगेषत् ॥३
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥४
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ।५।२५

हे इन्द्र ! अन्न प्राप्ति के लिए ही रथ बनाने वाला, रथ बनाता है, वैसे ही हम तुम्हारे लिए अन्न प्रस्तुत करते हैं तुम हमसे भली-भाँति परिचित हो। हम स्तुति से तुम्हें प्रकाशमान बनाते हैं और तुमसे सुख की याचना करते हैं।१। हे इन्द्र ! हमारे पालक और रक्षक होओ। तुम अपने उपासकों की शत्रुओं से रक्षा करते हो। तुम हविदाता के स्वामी हो और उसके शत्रु को भगाते हो। हवि से सेवा करने वाले के लिए तुम यह कार्य करते हो।२। हम यज्ञानुष्ठान करते हैं। स्तुति के योग्य, मित्र के समान सुख के देंने वाले युवा इन्द्र हमारे रक्षक हों, स्तोता हविदाता और कर्मवान् व्यक्ति को इन्द्र आश्रय देते ओर कर्मों में निपुण बनाते हैं।३। मैं इन्द्र का स्तोता ओर उनका प्रशंसक हूँ। उनके स्तोता प्रथम वृद्धि को प्राप्त हुए और फिर शत्रु का नाश कर पाये। जो नवीन स्तोत इन्द्र के निकट स्तुति-पाठ करते हैं, उनकी धन की कामना को इन्द्र पूर्ण करते हैं।४। अंगिरा वंशियों के स्तोत्रों से प्रसन्न हुए इन्द्र ने उन्हें गौएँ लाने का मार्ग

दिखाकर उनकी स्तुति पूर्ण की। स्तोताओं की प्रार्थना पर इन्द्र ने सूर्य द्वारा उषा को छिपाकर अश्व के नगरों का नाश किया।५। (२५)

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद् दासस्य स्वधावान् ॥६
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद् वि।
अजनयन् मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७
तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।९।२६

तेजस्वी, यशस्वी एवं दर्शनीय इन्द्र साधक के लिए सदा तैयार रहते हैं। वे रिपुहन्ता बली इन्द्र प्राणियों को दुःख देने वाले दस्यु का मस्तक छिन्न कर फेंक देते हैं।६। वृत्र को मारने वाले तथा पुर तोड़ने वाले इन्द्र ने अन्धकार को उत्पन्न करने वाले दस्युओं को नष्ट किया। उन्होंने मनुष्य के लिए पृथिवी और जल बनाया। वह यजमान की सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करें।७। जल की प्राप्ति के लिए स्तोताओं ने सदा इन्द्र को बढ़ाया। जब इन्द्र ने हाथ में वज्र लिया, तब उससे असुरों को मार कर उनके लौह दुर्गों को तोड़ डाला।८। हे इन्द्र! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणी स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करती है। उस दक्षिणा को हमारे सिवा अन्य को नहीं देना। हम संतानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे।९। (२६)

सूक्त २१

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् जगती।)

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळहाय सहमानाय वेधसे।

तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीलितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ।६।२७

संसार को जीतने वाले, धन, मनुष्य, भूमि, अश्व, गौ और जल आदि को जीतने वाले अजेय इन्द्रके प्रति उनका इच्छित सोम लाओ।१। सबके हराने वाले, विकराल कर्म द्वारा विनाशक, किसीके द्वारा उल्लंघन न करने योग्य, संसार के रचयिता सदा जयशील इन्द्र के लिए नमस्कार युक्त अभिवादन करो ।२। बहुतों को हराने वाले,भजन योग्य, विजेता शत्रु संहारक सोम से आह्लादित, प्रजा का पालन करने वाले इन्द्र के पुरुषार्थ का यशगान करते हैं । ३ । जिनके दान की तुलना हो सके, हिसकोंका नाश करने वाले, इच्छित वर्षाकरने वाले, दर्शनीय, कर्मों में कभी न हराने वाले, कर्मवान् को उत्साह देने वाले संसार व्यापी, महान इन्द्र ने उषा द्वारा सूर्य को प्रकट किया ।४। इन्द्र की स्तुति करने वाले अङ्गिराओं ने यज्ञ द्वारा जल को प्रेरित करने वाले इन्द्र से अपहृत गायों का मार्ग ज्ञात किया । फिर उन्होंने इन्द्र की रक्षा प्राप्ति की कामनासे स्तुति और पूजा द्वारा गोधन प्राप्त किया ।५। हे इन्द्र! हमको उत्तम धन और ख्याति प्रदान करो । सौभाग्य-दान कर धन बढ़ाओ । हमारी वाणी में माधुर्य भरी, हमारे शरीर की रक्षा करो। हमारे लिए सभी दिन सुख से पूर्ण हों ।६।

(२७)

सूक्त २२

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता–इन्द्रः। छन्द–अष्टिः, अतिशक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्
सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं
सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य
मज्मना प्र वावृधे।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं
सत्य इन्दुः ॥२

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः
सासहिर्मृधो विचर्षणिः।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं
सत्य इन्दुः ॥३

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः।
भुवद् विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ।४।२८

अत्यन्त बली पूज्य इन्द्र ने अपनी इच्छानुसार 'त्रिकद्रु' को यज्ञ में मिलाया। सोम ने इन्द्र को महान् कार्य सिद्ध करने के लिए प्रसन्न किया। सत्य रूप उज्ज्वल सोम तेजस्वी इन्द्र को प्रसन्न करे। १। तेजस्वी इन्द्र ने 'क्रिवि' को अपने बल से जीता। अपने तेज से आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया। वे सोम के बल से वृद्धि को प्राप्त हुए। इन्द्र ने सोम का एक भाग अपने उदर में धारण किया तथा शेष भाग को देवताओं के लिए दिया। यह सत्य रूप उज्ज्वल सोम इन्द्र को पुष्ट करे। २। हे इन्द्र ! तुम बल रहित यज्ञ में प्रकट हुए। तुमने पौरुष में वृद्धि प्राप्त कर हिंसा करने वाले दुष्टों पर

विजय पाई। तुम सत्यासत्य के ज्ञाता हो। स्तोता को कर्म सिद्ध करने वाला इच्छित ऐश्वर्य प्रदान करो।३। हे इन्द्र! तुम संसारको नचाते हो। तुमने जो हितकारी कार्य पहिले किये थे वे सूर्य-मण्डल में प्रशंसा योग्य हुए। अपने बल से वृत्र को मारकर तुमने जल को बहाया। तुम शतकर्मा हो। अन्न और बल के ज्ञाता हो।४। (२८)

सूक्त २३ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-गृत्समदः, भार्गवः शौनकः। देवता—बृहस्पतिः ब्रह्मणस्पतिः।
छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृवन्नतिभिः सीद सादनम्।१
देवाश्चिश्चत ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञिय भागमानशुः।
उस्रा इव सूर्य ज्योतिषा महो विश्वेषाभिज्जनिता ब्रह्मणामसि।२
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम्।३
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत।
ब्रह्माद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम्।४
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते।५।२६

हे ब्रह्मणस्पते! तुम देवताओं में दिव्य और कवियों में श्रेष्ठ हो। तुम्हारा अन्न सबसे उत्तम है। तुम प्रशंसा किये हुओं में सर्वश्रेष्ठ एवं स्तोत्रों के स्वामी हो। तुम हमारी स्तुति से आश्रय देनेके लिए यज्ञ स्थान में विराजो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं।१। राक्षसोंका वध करने वाले, ज्ञानवान् ब्रह्मणस्पते! देवताओं ने तुम्हारा यज्ञ भाग पाया हैं। जैसे सूर्य अपनी ज्योति से रश्मियाँ उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम स्तोत्र उत्पन्न करो।२। हे ब्रह्मणस्पते! सब ओर से निंदकों और अँधेरे को मिटाकर तुम दमकते हुए विकराल, शत्रु-

नाशक, मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए हो ।३। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम हविदाता को उत्तम मार्ग पर ले जाने वाले हो,उसकी पाप से रक्षा करते हो । तुम अपनी महिमा से स्तुति न करने वालों को दुःख देते और क्रोधी का नाश करते हो ।४। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम जिसके रक्षक हो, उसे कोई दुःख नहीं देसकता । उसे पाप नहीं व्यापता । उसे शत्रु नहीं मार सकते । तुम उसके लिए सभी हिंसा करने वालों को दूर भगा दो ।५। (२९)

त्वं नो गोपाः पथिकृद् विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ।६
उत वा यो नो मर्चयादनागसो ऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ।७
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहे ऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ।८
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयो ऽभि सन्ति सम्भया ता अनप्नसः ।९
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते प्रप्रिणा सस्निनायुजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि।१०।३०

हे ब्रह्मणस्पते ! तुम अद्भुत कर्म वाले उत्तम मार्ग पर चला कर हमारी रक्षा करते हो । तुम्हारे प्रति यज्ञ करते हुए हम मन्त्र पाठ द्वारा स्तुति करते हैं । हमारे प्रति कुटिलता करने वाले की बुद्धि बिगड़ जाय और उसे ही शीघ्र नष्ट कर दे । ६ । हे ब्रह्मणस्पते ! जो अहङ्कारी हमारे पास आकर हमको मारना चाहे,उसे उत्तम मार्ग से हटा कर, यज्ञ के निमित्त हमारा मार्ग सुगम कर दो । ७ । हे ब्रह्मणस्पते ! हमको विघ्नों से रक्षित करो, हमारी सन्तान को पालो । हम पर प्रसन्न होकर मधुर वचन बोलो । देव-निंदकों को नष्ट करो जिससे मूर्ख व्यक्ति सुखी न हों । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।८। हे ब्रह्मणस्पते देव ! तुम्हारी वृद्धि होने पर हम धन पावें । जो निकटस्थ या दूरस्थ शत्रु हम पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उन यज्ञ-विहीन शत्रुओं

का नाश करो ।९। हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम पवित्र हो, अभीष्ट पूर्ण करने वाले हो । तुम्हारी सहायता से हम श्रेष्ठ अन्न पायेंगे । हमको हरानेकी इच्छा वाला दुष्ट शत्रु हमारा स्वामी न बन जाय । हम उत्तम स्तोत्र द्वारा पुनीत हुए अपने को उन्नत बनावें ।१०। (३०)

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद् दमिता वीलुहर्षिणः ॥११
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥१३
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थ्यं बृहस्पये वि परिरापो अर्दय ॥१४
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।१५।३१

हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम्हारा दान अनुपम है । तुम इच्छित देते हो । युद्ध में शत्रुओंको दुःख देते और मारते हो ।तुम अटूट बल वाले उग्र एवं अहङ्कारियों को दबाते हो ।११। हे ब्रह्मणस्पति ! जो देवताओं से रहित मन वाला अहङ्कारी हमें मारना चाहता है, उसका शस्त्र हमारा स्पर्श न कर पावे । हम बलयुक्त हों और शत्रु के क्रोध को नष्ट करने में सामर्थ्यवान हों ।१२। जो ब्रह्मणस्पति युद्ध काल में नमस्कार पूर्वक बुलाये जानेके योग्य हैं, वे युद्ध करते तथा सर्व प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । वे सबके स्वामी, हिंसक शत्रु की सेना के रथ तोड़नेके समान विध्वंस करते हैं ।१३। हे ब्रह्मणस्पते ! संतान देने वाले तीक्ष्ण शस्त्र से दैत्यों को पीड़ित करो । इन्होंने, तुम्हारे महाबली होनेपर तुम्हारी रक्षा की थी । तुम अपने उसी प्राचीन पराक्रम को प्रकट कर निदकों को विनष्ट कर दो ।१४। हे यज्ञ में उत्पन्न ब्रह्मणस्पते ! आर्यों द्वारा

पूजित, देदीप्यमान यज्ञ वाला धन सुशोभित होता है, उसी तेजयुक्त धन को हमें प्रदान करो ।१५। (३१)

मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत् साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मस्पतिद्रुंहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१९।३२

हे ब्रह्मणस्पति देव ! विद्रोही, शत्रु, परधनाकांक्षी, देवताओं से विमुख साम-गान से रहित राक्षसों के लिए हमको मत सौंप देना ।१६। हे ब्रह्मणस्पते, तुम सर्वश्रेष्ठ को त्वष्टा ने उत्पन्न किया है अतः तुम सम्पूर्ण साम का उच्चारण करने वाले हो । यज्ञ कर्म द्वारा तुम ऋण का परिशोध और विद्रोही का संहार करते हो ।१७। हे अङ्गिरावंशी ब्रह्मणस्पते ! पर्वतों ने गौओं को छिपा लिया। जब यह भेद खुला तब तुमने गौओं को निकाला और इन्द्र की सहायता से वृत्र द्वारा रोकी हुई जल राशि को गिराया ।१८। हे ब्रह्मणस्पते ! सुखी बनाओ। देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, वही कल्याण को वहन करने वाला होता है। हम पुत्र-पौत्र युक्त हुये इस यज्ञ में स्तोत्र गायेंगे ।१९। (३२)

। इति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ।

सूक्त २४

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—ब्रह्मणस्पतिः बृहस्पतिः ।
छन्द्र—जगती, त्रिष्टुप् ।)

सेमामविड्ढि प्रभृर्ति य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।
यथा नो मीढ्वा स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम्।१
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद् वसुमन्तं वि पर्वतम् ।।२
तद् देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन् दृलहाव्रदन्त वीलिता ।
उद् गा आजदाभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ।।३
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेय विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ।।४
सना ता का चिद् भुवेना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरन्तो अन्यदन्यदिद् या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ।५।१

हे ब्रह्मणस्पति देव । तुम विश्व के अधीश्वर हो । हमारी स्तुति को स्वीकार करो। हम इस नवीन स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं । हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको इच्छित फल दो । यह स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है ।१। हे ब्रह्मणस्पति देव ! तिरस्कार योग्य व्यक्ति को तुमने अपनी महत्ता से तिरस्कृत किया । शम्बरको चीर डाला । रुके हुए जलको चलाया और जहाँ गौएँ छिपी थीं, उस पर्वत में घुस गये ।२। देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मणस्पति के पराक्रम से पर्वत शिथिल हो गया तथा स्थिर वृक्ष टूट पड़ा । उन्होंने गौओं को छुड़ाया और मन्त्र से बल नामक असुर को हटा दिया । सूर्य को प्रकट कर अन्धकार को दूर कर दिया ।३। पाषाण के समान दृढ़ और मधुर जलों से युक्त जिस मेघ का ब्रह्मणस्पति ने भेदन किया, सूर्य की किरणों ने उससे रस पान कर जलमय वृष्टि को पृथिवी पर सींचा ।४। मनुष्यों ! ब्रह्मणस्पति ने तुम्हारे लिए ही सनातन और अद्भुत वर्षा का द्वार खोला । उन्होंने मन्त्रों को दिव्यता दी और आकाश-पृथिवी को सुख बढ़ाने वाले बनाया ।५। (१)

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन् तदुदीयुराविशम् ।।६
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।

ते वाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥७
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८
स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती धना ऽऽदित् सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९
विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ।१०।२

विद्वान् अङ्गिराओं ने खोज कर 'पणियों' के दुर्ग में छिपाये गए धन को प्राप्त किया। फिर माया कों देखकर पूर्व स्थान को प्राप्त हुये ।६। विद्वान अङ्गिराओं ने माया को देख कर उसी ओर गमन किया। उन्होंने अग्नि को प्रज्वलित कर पर्वत पर फेंका। वे पर्वतों को जलाने वाले अग्नि देव पहले वहाँ नहीं थे ।७। ब्रह्मणस्पति बाण फेंकने में कुशल हैं। वह अपनी इच्छित अभीष्ट धनुष द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। उनका फेंका हुआ बाण कार्य सिद्ध करने में समर्थ होता है। वे बाण दर्शनार्थ कान से प्रकट होते हैं ।८। ब्रह्मणस्पति पुरोहित रूप हैं। वे सब पदार्थों को पृथक करते और मिलाते हैं। सब उनका स्तवन करते हैं तभी सूर्योदय होता है ।९। वृहस्पति वृष्टि देने वाले हैं। उन का धन सर्वत्र व्याप्त और श्रेष्ठ हे। उन्हीं ने अन्न युक्त सम्पूर्ण धन दिया है। यजमान और स्तोता दोनों ही इस धन का ध्यान-रत रहते हुए भोग करते हैं ।१०। (२)

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११
वश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नो ऽन्नं युजेव -ाजिना जिगातम् ॥१२
उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीलुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३

ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन् महीव रीतिः शवसासरत् पृथक्
॥१४
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वींराँ उप पृङ्‌धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१६।३

सब ओर रमे हुए स्तुति योग्य ब्रह्मणस्पति अपने बल से विद्वान और बली दोनों प्रकारके मनुष्यों की रक्षा करते हैं । वे दानशील स्वभाव वाले देवताओं के प्रतिनिधि रूप से प्रसिद्ध हैं और वे सभी जीवों के स्वामी हैं ।११। हे इन्द्र! हे ब्रह्मणस्पते! तुम ऐश्वर्यवान् हो, सम्पूर्ण धन तुम्हाराहै। तुम्हारे उद्देश्य को कोई नहीं रोक नहीं सकता । रथ में जुते अश्वों के अन्न के प्रति दौड़ने के समान तुम भी हमारी हवियों के प्रति दौड़े हुये आओ ।१२। ब्रह्मणस्पति के अश्व हमारी स्तुति श्रवण करते हैं । विद्वान् अध्वर्यु सुन्दर स्तोत्रयुक्त हवि देते हैं । ब्रह्मणस्पति हमारे निकट आकर मन्त्र स्वीकार करें ।१३। ब्रह्मणस्पति के किसी कर्म में लगने पर उनका मन्त्र फलदायक होता है । उन्होंने गौओं को निकाला, सूर्यलोकके लिए उसका भाग किया । वे गौऐं महान् स्तोत्रके समान पृथक्-पृथक् अपने बल से गतिवती हुईं ।१४। हे ब्रह्मणस्पति देव ! हम श्रेष्ठ नियम वाले अन्न युक्त धन के स्वामी बनें । तुम हमारे योद्धा पुत्र को संतान दो । तुम सबके स्वामी हमारी स्तुति और अन्न रूप हवि की कामना करतेहो ।१५। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम विश्व के नियामक हो । हमारे स्तोत्रको जानते हुए हमारी सन्तानों को सुखी बनाओ । देवगण जिसकी रक्षा करते हैं,वह कल्याण वाहक है । पुत्र-पौत्र युक्त हुये हम इस यज्ञ में स्तवन करेंगे ।१६। (३)

सूक्त २५

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—जगती ।)

इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद् रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१
वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीरभि वष्टयोजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युज कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवो ऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ।५।४

अग्नि को प्रज्वलित करने वाला यजमान शत्रु-वध में समर्थ हो। स्तुति और हवि दान द्वारा समृद्ध हो। जिस यजमानसे ब्रह्मणस्पति सख्य भाव रखते हैं, वह पौत्रसे भी अधिक समय तक जीवित रहता है।१। यजमान अपने वीर पुत्रों द्वारा शत्रु के पुत्रों पर विजय प्राप्त कराये। वह गोधन युक्त पौत्र-प्रसिद्ध एवं सर्वज्ञाता है। जिसे ब्रह्मणस्पति सखा मानते हैं, उसके पुत्र-पौत्र भी समृद्ध होते हैं।२। नदी के वेग से कछार टूटते हैं, साँड बैलों को हराता है, उसी प्रकार ब्रह्मणस्पति का सेवन अपने बलसे शत्रुओं के बल को तोड़ता हुआ पराजित करता है। अग्नि की शिखा को जैसे कोई नहीं रोक सकता वैसे ही ब्रह्मणस्पति से सख्य-भाव पाये हुये यजमान को कोई नहीं रोक सकता। ३। ब्रह्मणस्पतिकी सेवा करने वाला यजमान सर्वप्रथम गोधन पाता है। वह अपने बल से शत्रुओं को मारता है। जिसे वे सखा रूप में स्वीकार करते हैं, वह दिव्य रसास्वादन करने में समर्थ होता है।४। जिस यजमान को ब्रह्मणस्पति सखा-भाव से देखते हैं, उसकी ओर सभी रस प्रवाहित होते हैं। वह विविध सुखों का उपभोग करने वाला श्रेष्ठ भाग्य से युक्त हुआ समृद्धि प्राप्त करता है।५।

(४)

सूक्त २६

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—ब्रह्मणस्पतिः । छन्द—जगती)

ऋजुरिच्छंसो वनवद् वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१
यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२
स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत् प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ।४।५

ब्रह्मणस्पति की स्तुति करने वाला शत्रुओं को नष्ट करे । देवों का उपासक देव-विहीनों को हरावे । ब्रह्मणस्पति को सन्तुष्ट करने वाला युद्धमें भयंकर शत्रुओं का संहार करता है । याज्ञिक यज्ञ-द्वेषियों का धन प्राप्त करता है ।१। ब्रह्मणस्पति का स्तवन करो । अहङ्कारी शत्रुओं पर आक्रमण करो । संयम में दृढ़ होओ । ब्रह्मणस्पतिके लिये हवि तैयार करनेपर उत्तम धन प्राप्त करोगे । हम उनकी रक्षा चाहते हैं ।२। देवोंके पिता ब्रह्मणस्पति की जो यजमान श्रद्धा पूर्वक सेवा करता है, वह अपने स्वजन एवं सन्तान से युक्त हुआ अन्न और धन पाता है ।३। जो यजमान घृत-युक्त हवि से ब्रह्मणस्पति की सेवा करता है, उसे वे सुगम मार्ग पर चलाते हैं और पाप दारिद्र्य तथा शत्रु से बचाते हैं । वे उसके कार्य सिद्ध करते हैं ।४। (५)

सूक्त २७

(ऋषि—कूर्मों, गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता—आदित्याः ।
छन्द—त्रिष्टुप् ।)

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१

इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२
त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३
धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥४
विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ।५।६

तेजस्वी आदित्यों के निमित्त जुहू द्वारा घृत सींचते हुए मैं स्तुति करता हूँ । मित्र, अर्यमा, भग, वरुण, दक्ष और अंश मेरे स्तवन पर ध्यान दें ।१। दया-भाव वाले, अनिंद्य अहिंसित, यशस्वी, कर्मवान्,मित्र, अर्यमा और वरुण रूप वाले आदित्य मेरी इस स्तुतिको ग्रहणकरें ।२। गम्भीर बहुद्रष्टा दमनकरने में समर्थ, प्राणियोंके हृदय को जानने वाले आदित्य महान् है । दूरके पदार्थ भी उनसे दूर नहीं है ।३। ये आदित्यगण स्थावर जङ्गम को वास देकर सब भुवनों के रक्षक हैं । वे बहुत कर्म वाले प्राण रूप आदित्य जलोंके रक्षक और सत्य के द्वारा ऋण का परिशोधन करते हैं ।४। हे आदित्यो ! भय उपस्थित होने पर तुम्हारा आश्रय सुख का हेतु बनाता हैं । हम तुम्हारे उस आश्रय को प्राप्त करें । अर्यमा, मित्र, वरुणका अनुगत हुआ, मैं पापों को दूर करूँ ।५।
(६)

सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६
पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राऽति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ।
तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥८
त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽस्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ।१०.७

हे अर्यमा ! मित्रावरुण ! तुम्हारा मार्ग सुगम और निष्कंटक है । हे आदित्यो ! हमको उसी मार्ग पर चलाओ । मधुर वचन कहते हुए दिव्य सुख प्रदान करो ।६। माता अदिति हमको शत्रुओं से पार लगावें । अर्यमा हमको सुगम मार्ग पर ले चलें । हम बहुत से वीरों से युक्त अहिंसक रहें तथा मित्र और वरुण हमको सुखदें ।७। आदित्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग,मर्त्य, जल तथा सत्य लोकों के धारणकर्त्ता हैं । ये तीन सवन युक्त यज्ञ वाले, यज्ञ से ही महिमावान् हुए हैं । हे अर्यमा ! मित्र ! और वरुण ! तुम्हारा कर्म प्रशंसनीय है ।३। स्वर्ण के समान तेजस्वी वर्ण वाले, दीप्तिमान्, वृष्टि के कारणभूत, सचेष्ट न झुकने वाले, नेत्रों से युक्त अहिंसित. स्तुत्य आदित्यगण जगत् के निमित्त अग्नि, वायु और सूर्य का रूप धारण करते हैं ।६। वरुण ! तुम देवता हो या मनुष्य सबके स्वामी हो । सौ वर्ष देखने के योग्य करो, जिससे हम पूर्वजों की आयु को भोग सकें ।१०। (७)

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३
अदिते मित्र वरुणोत मृल यद् वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति वृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥१५

या वो माया अभिदुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन् त्स्याम ॥१६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१०।८

वास देने वाले आदित्यो ! हम दाहिने, बाँये, सामने पीछे सन्देह में नहीं पड़ते हैं । कच्ची बुद्धि वाला, अधीर होकर भी भ्रम में न पड़ूं । मैं तुम्हारे द्वारा सुगम मार्ग पर चलाया जाता हुआ आनन्दरूप तेज प्राप्त करूँ ।११।यज्ञ स्वामी आदित्य गणको हवि देने वाले यजमान को उनकी कृपा से पोषण सामर्थ्य प्राप्त होती है । वह धनयुक्त, प्रसिद्ध एवं प्रशंसित हुआ रथपर चढ़कर यज्ञ-स्थान को प्राप्त होता है, ।१२। वह यजमान तेजवान्, अहिंसित, अन्नवान् पुत्रवान् हुआ श्रेष्ठ जल के निकट वास करता है । आदित्यों के आश्रयमें रहने वाले को कोई शत्रु मार नहीं सकता ।१३। हे अदिति, मित्र, वरुण ! हम यदि तुम्हारे प्रति कोई अपराध करें, तो भी उसे क्षमा करो । हे इन्द्र ! हम विस्तृत तेज और अभय प्राप्तकरें । हमको अँधेरी रात नष्ट न करे ।४४। आदित्योंका अनुसरण करने वालेको आकाश-पृथिवी पुष्ट करतेहैं । वह भाग्यवान् दिव्य रस प्राप्त कर समृद्ध होता है । युद्ध में शत्रु को हराता हुआ चलता है । संसार के आधे भागमें (पृथिवी पर) वह कर्म-साधन करने वाला होता है ।१५। हे पूज्य आदित्यो ! विद्रोहियों को तुमने माया-पूर्वक वशमे किया और शत्रुओंके लिये पाश रचा, हम उस माया और पाशको घोड़े पर सवार मनुष्यके समान लांघें और हिंसा-रहित हुये, परम सुख से सुन्दर गृह में रहें ।१६। हे वरुण ! मुझे किसी ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के समक्ष अपनी दारिद्र्यगाथा न कहनी पड़े । मुझें आवश्यक धन की कमी कभी न खटके । हम सन्तानयुक्त हुये इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ।१७।   (८)

सूक्त २८

(ऋषि–कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । देवता–वरुणः । छन्द–त्रिष्टुप्)

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांस ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३
प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ।५।९

स्वयं प्रकाशित और अपनी महिमा से संसार के जीवों को रचने वाले वरुणके लिए यह हवि रूप अन्न है। वे अत्यन्त तेजस्वी वरुण यजमानको सुख देते हैं। मैं उनका स्तवन करता हूँ ।१। हे वरुण ! हम तुम्हारी स्तुति ध्यान और सेवा करते हुये भाग्यवान् बनें। रश्मि वाली उषा के प्रकट होने पर प्रति दिन तुम्हारी स्तुति करते हुए हम तेजस्वी बनें ।२। हे विश्व के स्वामी वरुण ! तुम वीरोंके अधिपति को बहुत से साधक पूजा करते हैं। हम तुम्हारे दिये हुए वास स्थानको प्राप्त करें। अहिंसक, तेजस्वी आदित्यो ! हमारे प्रति मित्रभाव रखो और हमारे दोष दूर करो ।३। विश्वको धारण करने वाले अदिति-वरुण जल की रचना करते हैं और उन्हीं की महिमा से नदियाँ बहती हैं। ये सदा चलती रहती हैं और पीछे की ओर लौटतीं नहीं। वेग-सहित पृथिवी पर आती हैं ।४। हे वरुण ! मैं पाप के बन्धन में रस्सी के समान बँधा हूँ। उससे मुझे मुक्त करो। हम तुम्हारे द्वारा नदियों को जलसे पूर्ण करें। हमारा बुनने का तार कभी न टूटे। हमारे यज्ञ की समृद्धि असमय में न रुके।५। (९)

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत् सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद् वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।

मा ज्योतिष: प्रवसथानि गन्म वि षू मृध: शिश्रथो जीवसे न: ॥७
नम: पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यच्युतानि दूलभ व्रतानि ॥८
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥९
यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान् ॥१०
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमाप: ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीरा: ।११।१०

हे वरुण ! मेरा भय मिटाओ । हे सत्य से युक्त स्वामिन् ! हम पर कृपा करो । रस्सेसे गोवत्स को छुड़ाने के समान मुझे पापसे छुड़ाओ । तुम्हारी कृपा के बिना कोई समर्थ नहीं हो पाता ।६। हे वरुण ! यज्ञ में अपराध करने वालों को जो अस्त्र दण्डित करते हैं, वे हमको दण्डित न करें । हम प्रकाशसे वंचित न हों । हमारे हिंसक को हमसे दूर करो ।७। हे बहुकर्मा इन्द्र ! हमने भूतकाल में तुमको नमस्कार किया, वर्तमान और भविष्य काल में भी तुमको प्रणाम करेंगे । तुम हिंसा के योग्य नहीं हो । तुम में सभी पराक्रमयुक्त कर्म पर्वत के समान निहित है ।८। हे वरुण ! हमारे पूर्वजों ने जो ऋण किया था, उससे उऋण करो । अब मैंने जो ऋण किया है, उससे भी छुड़ाओ । मुझे दूसरे से धन माँगने की आवश्यकता न पड़े । उषाओं को इस प्रकार करो कि वे ऋण ही न होने दें । हम ऋण रहित उषाओं में जीवित रहें ।९। हे वरुण ! मैं भयभीत हूँ । मित्रों द्वारा बतायी गयी भयङ्कर स्वप्न की बातोंसे मेरी रक्षा करो। मैं उनमें न पड़ूं । मुझे जो दस्यु मारना चाहे उससे भी रक्षा करो ।१०। हे वरुण ! किसी उदार धनिक को मुझे अपनी दारिद्र्य गाथा न सुनानी पड़े । आवश्यक धन की कमी मुझे कभी न व्यापे । हम सन्तान वाले होकर इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ।११। (१०)

सूक्त २९

(ऋषि--कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । । देवता--विश्वेदेवाः । छन्द--त्रिष्टुप्)

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयंद्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृलयतापरं च ॥२
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृलत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवालृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥११

हे व्रत युक्त देवो ! तुम शीघ्रगामी और सबके द्वारा प्रार्थना किये, जाते हो। गुप्त रहस्य को छिपाने के समान मेरा अपराध दूर फेंको । हे मित्र हे वरुण ! मैं तुम्हारी कल्याणकारी भावनाओं को जानता हूँ, इसलिए रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ । हमारे स्तोत्र को सुनो ।१। हे देवो ! तुम अनुग्रह पूर्वक शक्ति प्रदान करो । वैरियों को हमसे हटाओ । हिंसा करने वाले शत्रुओं को हटाओ । वर्तमान तथा भविष्य में भी सुख दो ।२। हे विश्वेदेवताओ ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य-साधन कर सकेंगे ? मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र और मरुतो ! हमारा कल्याण करो । ३ । हे देवताओ ! तुम हमारे मित्र हो । हम पर कृपा करो । हम तुम्हारी स्तुति

करते हैं । हमारे यज्ञ में आते हुए तुम्हारे रथ की चाल धीमी न हो । तुम्हारी मित्रता पाकर हम थकें नहीं ।४। देवताओ ! तुम्हारे आश्रित होकर मैंने अनेकों पापों को मिटा डाला । कुमार्गगामी पुत्र को पिता द्वारा उपदेश देने के समान, तुमने मुझे सीख दी है । हमारे सब पाप और बन्धन हट जायें तुम व्याध द्वारा पक्षी को मारने के समान मुझे न मारना ।५। हे पूज्य विश्वेदेवो ! हमारे समान प्रत्यक्ष होओ । मैं भयभीत हूँ, अतः तुम्हारी शरण प्राप्त करूँ । हमको दस्यु द्वारा हिंसित होनेसे बचाओ । विपत्ति डालने वाले से हमारी रक्षा करो ।६। हे वरुण ! मुझे किसी उदार, धनिक के सामने अपनी दारिद्र्‌ता की बात न कहनी पड़े । मुझे आवश्यक धन की कभी कमी न पड़े । हम सन्तान युक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करेंगे ।७। (११)

सूक्त ३०

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—इन्द्र प्रभृति । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ।।१
यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ।।२
उर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत् तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ।।३
बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्यं वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ घृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ।।४
अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ।५।१२

वर्षक, तेजस्वी, प्रेरणाप्रद, वृत्रनाशक इन्द्र के यज्ञ के लिये जल नहीं रुकता, उसका स्रोत सदा गतिमान रहता है । उसकी सृष्टि अन्य कार्य के

लिये नहीं हुई थी ।१। वृत्र को पुष्ट बनाने वाले की बात अदिति ने इन्द्र को बताई । ये नदियाँ नित्य प्रति अपने मार्ग पर चलती हुई इन्द्र की इच्छानुसार समुद्र में जाती हैं ।२। अन्तरिक्ष में उठकर सब पदार्थों को आच्छादित कर लेने के कारण वृत्र पर इन्द्र ने वज्र चलाया । वृष्टि प्रद मेघ से ढका हुआ वृत्र इन्द्र के सामने आया, तब तीखे शस्त्र वाले इन्द्र ने उसे परास्त किया ।३। हे बृहस्पते ! वज्र के समान चमकते हुए आयुध से वृक द्वारा दस्यु-पुत्रों को मारो ! इन्द्र ! जैसे पुरातन समय में तुमने अपने बल से शत्रुओं का वध किया था, वैसे ही हमारे शत्रु को मारो ।४। हे इन्द्र ! तुम उन्नत हो । स्तुति करने वालों के मन्त्र से तुमने जिस पाषाण-वज्र से शत्रुओं को मारा था, उसी वज्र को आकाश से नीचे की ओर चलाओ । जिस समृद्धि को पाकर हम पुत्र, पौत्र तथा गवादि धन प्राप्त कर सकें, वही हमको दो ।५। (१२)

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम् ।।६
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद् यो ददद् यो निबोधाद् यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ।।७
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ।।८
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ।।९
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ।।१०
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ।११।१३

हे इन्द्र ! हे सोम ! तुम जिसे मारना चाहते हो, उसे समूल नष्ट करो । शत्रुओं के विरुद्ध अपने साधकों को प्रेरणा दो । तुम मेरी रक्षा करो

तथा इस स्थान से भय को भगा दो।६। हे इन्द्र ! मुझे क्लेश और क्लान्ति से बचाकर आलस्य-रहित करो। हम सोम के अभिषवका सदा समर्थन करें। तुम मेरा अभीष्ट पूर्ण करते और इच्छित फल देते हो। तुम यज्ञ को जानकर अभिषव करने वाले के समक्ष गौओं सहित आते हो।७। हे सरस्वति ! हमारी रक्षा करो। मरुद्गण, सहित जाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। इन्द्र ने धीरता का अहङ्कार करने वाले युद्धाभिलाषो 'शण्डामार्क' का वध किया था।८। बृहस्पते ! जो छिपकर हमको मारना चाहता है, उसे ढूँढकर अपने विद्रोहियों पर सब ओर से प्राण घातक वज्र का प्रहार करो।९। हे वीर इन्द्र शत्रुओं का संहार करने वाले हमारे वीर कर्मोंका सम्पादन करो। हमारे शत्रु-ओं ने सिर उठा लिया। उनकों मार कर उनका धन हमको प्रदान करो।१०। हे मरुद्गण ! सुख-प्राप्ति की कामनासे नमस्कार युक्त स्तुति द्वारा हम तुम्हारे दिव्य बल का स्तवन करते हैं, जिसके द्वारा हम वीरों वाले होकर प्रशंसा पावें और ऐश्वर्य का भोग करने में समर्थ हो।११। (१३)

सूक्त ३१

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता—विश्वेदेवाः।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अस्माकं मित्रावरुणायतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचामुवा।
प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः॥१
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जंघनन्त पाणिभिः॥२
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये॥३
उत त्य देवी भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद रथम्।
इला भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती।४
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।

स्तुषे यद् वाँ पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे । ५
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधे ऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥६
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ।७।१४

अन्न की इच्छा से वनों में घूमने वाले पक्षियों के समान हमारा रथ एक दूसरे स्थान को प्राप्त होता है । हे मित्रावरुण ! आदित्य, रुद्र और वसुओं सहित तुम उस समय हमारे उस रथ की रक्षा करते हो । (यहाँ रथसे मनुष्यों के शरीर का तात्पर्य है) ।१। हे समान स्नेह वाले देवताओ ! अन्न के लिए गये हुए हमारे रथ की रक्षा करो । इस रथ में जुते घोड़े पैरों से चलते हुए ऊँची भूमि पर भी चढ़ जाते हैं ।२। सबको देखने वाले इन्द्र मरुद्गण की सहायता से दिव्य लोक से आते हुए अपनी हिंसा रहित शरण द्वारा परम ऐश्वर्य और अन्न की प्राप्ति के साधन हमारे रथके उपयुक्त हों ।३। वे संसार द्वारा सेवा करने योग्य त्वष्टादेव, देव-नारियोंके सहित रथको गति दें । इला तेजस्वी, भग, आकाश-पृथिवी पूषा और सूर्य के स्वामी अश्विद्वय हमारे रथका संचालन करें ।४। विख्यात, तेजस्विनी, सुन्दर, परस्पर देखने वाली, प्राणियों को प्रेरणा देने वाली उषा और रात्रि हमारे रथ को चलावें । हे आकाश ! हे पृथिवी ! नवीन स्तोत्रों से तुम्हारा स्तवन करता हूँ । अन्न रूप हवि देता हूँ । औषधि, सोम, पशु—ये तीन प्रकार के धन मेरे पास हैं ।५। हे देवताओ ! तुम हमारी स्तुति चाहते हो । हमभी तुम्हारी स्तुति चाहते हैं । अन्तरिक्षके देवता अहि, सूर्य, त्रित, इन्द्र और सविता हमको अन्न दें । द्रुतगामी अग्नि हमारे स्तोत्र से हर्ष को प्राप्तहों ।६। हे यजन योग्त विश्वेदेवताओं ! तुम स्तुत्य हो । हम तुम्हारी स्तुति करनेके इच्छुक रहते हैं । अन्न और बल चाहने वाले मनुष्य ने तुम्हारा स्तोत्र रचा । रथ के घोड़े के समान तुम्हारा बल हमको प्राप्त हो ।७। (१४)

सूक्त ३२

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—द्यावापृथिव्यौ प्रभृति । छन्द—जगती, अनुष्टुप्)

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥१
मा नो गुह्या रिप आयोरहन् दभन् मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे ॥२
अहेलता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८॥१५

हे द्यावापृथिवी ! जो स्तुति करने वाला, यज्ञ-कर्म द्वारा तुम्हें प्रसन्न करने की कामना करे, उसको आश्रय दो । तुम्हारा अन्न सर्वश्रेष्ठ है । सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं । मैं भी श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करूँगा ।१। हे इन्द्र ! दिन या रात्रि में कभी भी शत्रु की माया हमारे लिये घातक न हो । त्रास देने वाली शत्रु सेना के वश में हमको न करना । हमारे मैत्री-भाव को मत तोड़ना । हमारी मित्रता को याद रखते हुये हमको सुख देना, यही हमारी अभिलाषा है ।२। हे इन्द्र ! मन में प्रसन्न हुये तुम दुग्ध देने

वाली हृष्ट-पुष्ट गौ को लेकर आना । युम्हारा आह्वान सभी करते हैं । तुम द्रुतवान् एवं द्रुतभाषी हो । मैं दिन-रात तुम्हारा स्तवन करता हूँ ।३। आह्वान के योग्यपूर्ण रात्रिकामैं आह्वान करता हूँ । वे शोभनीय हमारे आह्वान को सुनें । वे हमारी कामना को समझकर हमारे कर्मों को सुगठित करें और बहुधनयुक्त वीर पुत्रदें ।४। हे रात्रिदेवी ! तुम अपनी कृपासे हविदाताको श्रेष्ठ धन देती हो, प्रसन्न मन से उसी कृपा सहित आओ । हे सुन्दर भाग्यशाली ! तुम विविध प्रकार से हमारी रक्षा करने वाली हो ।५। हे स्थूल अन्धकारयुक्त रात्रि ! तुम देवताओं की बहिन हो । हमारे दिव्य हव्य को ग्रहण करो और हमको सन्तान दो ।६। घोर अन्धकारयुक्त रात्रि शोभनीय भुजा और अँगुलियों वाली उत्तम प्राकट्य और बहु प्रजननसे युक्त हैं । लोकों की रक्षा करने वाली उस देवी के निमित्त हवि द्रदान करो ।७। गुङ्गू, कुहू, देव पत्नी, अन्धकार वाली रात्रि और सरस्वती देवी का आह्वान करता हूँ । मैं इन्द्राणी को उत्तम आश्रय के लिए आहूत करता हूँ तथा सुख कामना से वरुणानी का आह्वान करता हूँ ।८। (१५)

सूक्त ३३ [चौथा अनुवाक]

(ऋषि-गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता-रुद्रः । छन्द-त्रिष्टुप्)

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१
त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीरां अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।

ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ।५।१६

हे मरुद्गण के जनक रुद्र ! तुम्हारा सुख-दान हमको प्राप्त हो । हम सूर्य के दर्शन से कभी वञ्चित न रहें । हमारे वीर पुत्र शत्रुओं से सदा जीतें । हम अनेक पुत्र-पौत्र वाले हों ।१। हे रुद्र ! हम तुम्हारे शत्रुओं द्वारा प्रदत्त सुख देने वाली ओषधिसे सौ वर्ष की आयु भोगें । तुम हमारे शत्रुओंको नष्ट करो हमारे पाप को बिल्कुल मिटादो । शरीर में व्यापने वाले सभी रोगों को हमसे दूर करो ।२। हे रुद्र ! तुम ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ हो । तुम्हारी भुजा में वज्र रहता है । तुम अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो । तुम हमको पाप से पार लगाओ पाप हमसे सदा दूर रहे ।३। तुम अभीष्टों को वर्षा करने वाले हो । हम नियम विरुद्ध नमस्कार एवं भ्रमयुक्त स्तुति तथा तुम्हारे असहयोग को आह्वान कर तुम्हें कुपित न करें । तुम श्रेष्ठ भिषक् हो अतः ओषधि द्वारा हमारी सन्तान को बलवान् बनाओ ।४। मैं हवियुक्त आह्वान से बुलाये जाने वाले रुद्र का क्रोध स्तुति द्वारा निबारण करूँगा । कोमल उदर पीतवर्ण और सुन्दर नाक वाले शोभायमान रुद्र हमारीं हिंसा न करें ।५। (१६)

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीयाऽऽविवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ।।६
क्व स्य ते रुद्र मृलयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ।।७
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम । ८
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ।।९
अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ।१०।१७

मरुद्जनक रुद्र अभीष्टवर्षी हैं । उत्तम अन्न देने की उनसे प्रार्थना

करता हूँ। धूप से व्याकुल मनुष्य द्वारा छायाका आश्रय ग्रहण करने के समान मैं भी पाप रहित हुआ रुद्र का दिया सुख ग्रहण करूंगा। मैं उनकी सेवा करूँगा।६। हे रुद्र! तुम्हारा सुख का दान करने वाला बाहु कहाँ है? उसके द्वारा औषधि देते हुए सबको सुखी बनाते हो। तुम अभीष्ट वर्षणमें समर्थ हो। अरे पाप को हटाकर मुझे क्षमा दान दो।७। अभीष्ट वर्षा करने वाले पीतवर्ण और श्वेत आभायुक्त रुद्र के प्रति हम महत्व पूर्ण वाणीसे स्तुति करते हैं। हे स्तोता! तेजवान् रुद्रको नमस्कार द्वारा पूजो। हम उनके गुणोंका गान करते हैं।८। बहुत रूप वाले, दृढ़ शरीर वाले विकराल,पीतवर्ण युक्त उज्ज्वल तेजसे प्रकाशित हैं। वे सब भुवनोंके स्वामी और भरण-पोषण करने वाले हैं। वे सदा बल से युक्त रहते हैं।९। हे वसुधारी पूजनीय रुद्र! तुम अनेक रूप में व्याप्त हुये रक्षा करते हो। तुम्हारे समान बली अन्य कोई नहीं है।१०। (१७)

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।
मृला जरित्रे रुद्र स्तवानो ऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११

कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृल ॥१४

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१५।१८

हे स्तोताओ! प्रसिद्ध, रथ पर आरूढ़ हुये, विकराल रूप वाले, शत्रु संहारक युवा रुद्र का स्तवन करो। हे रुद्र! तुम स्तुति करने पर सुख देने वाले हो। तुम्हारी सेना हमारे शत्रु का संहार करे।११। पिता द्वारा

आशीर्वाद देने पर पुत्र नमस्कार करे, उसी प्रकार हे रुद्र ! तुम्हारे आने पर हम तुमको नमस्कार करते हैं। तुम अनेक धनों के देने वाले और सज्जनों के पालक हो। स्तुति किये जाने पर तुम्हारा दान चलता है।१२। हे मरुद्गण ! तुम्हारी स्वच्छ औषधि अत्यन्त सुख को देने वाली है। जिस औषधि की हमारे पूर्वज मनु ने खोज की थी, वह भयको नष्ट करने वाली थी। उसी औषधिकी हम कामना करते हैं।१३। रुद्र का अस्त्र हम पर न पड़े। तेजस्वी रुद्र की भीषण क्रोध बुद्धि हमारी ओर न हो। हे सेचन समर्थ रुद्र ! अपने यजमान के प्रति धनुष की प्रत्यंचा ढीली करो। हमारे पुत्र-पौत्रको सुख प्रदान करो।१४। हे अभीष्ट-वर्षण सामर्थ्य वाले रुद्र ! तुम पीत-वर्ण वाले, हमारे आह्वान को सुनते हो। हम पुत्र-पौत्रादि सहित इस यज्ञ में स्तुति उच्चारण करेंगे।१५।
(१८)

सूक्त ३४

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः, शौनकः। देवता–मरुत्। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्)

धारावारा मरुतो धृष्णवोजसो वृगा न भीमास्तविषीभिर्रचिनः।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भूमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद् वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२
उक्षन्ते अश्वाँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः।५।१९

ये मरुद्गण जल धारा द्वारा आकाश को आच्छादित करते हैं।

उनका बल शत्रु को हराता है । वे पशु के समान विकराल हैं और संसार उनके बल द्वारा व्याप्त है । वे अग्नि के समान प्रदीप्तियुक्त और जलमय हैं । वे गतिशील मेघों को प्रेरित कर वर्षा करते हैं ।१। हे उज्ज्वल हृदय वाले मरुद्गण! तुम रुद्र से उत्पन्न हुए हो । नक्षत्रों से आकाश के सुशोभित होनेके समान अपने गुणों से तुम भी सुशोभित हो । तुम शत्रु का संसार करने वाले और जल को प्रेरणा देने वाले हो । तुम मेघों से जैसे बिजली शोभा पाती है, वैसे हो शोभा को प्राप्त होओ ।२। अश्व के समान मरुद्गण विशाल क्षेत्र को सींचते हैं । वे अश्वारोही, शब्द करते हुए मेघ के निकट में वेग से गमन करते हैं । हे मरुद्गण! तुम स्वर्ण मुकुट वाले और समान क्रोध करने वाले हो । तुम बृक्षादि को कँपाते हो । तुम बिन्दु चिह्नित मृग पर अन्न के निमित्त पहुँचते हो ।३। हविदाता यजमान के लिए ये मरुद्गण मित्र के समान जलवाहक है । वे उदार मन वाले बिन्दु चिह्नित मृग से युक्त हुये, अन्न से युक्त हुये सरल चाल वाले घोड़ेके समान चलते हैं ।४। हे मरुतो ! तुम समान क्रोध वाले हो । तुम्हारे आयुध चमकते हुये हैं । जिस प्रकार हंस अपने निवास पर जाता है उसी प्रकार तुम भी अत्यन्त जल-स्रोत वाले मेघों के साथ निर्विघ्न मार्ग से सोम जनित हर्ष के निमित्त गौओं सहित आओ ।५। (१९)

आ नो व्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ।।६
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद् दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ।।७
यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसो ऽश्वान् रथेषु भरा आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे मसीमिषम् ।।८
यो नो मरुतो वृकतामि मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ।।९
चित्रं तद् वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वानिदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ।१०।२०

हे मरुद्‌गण ! स्तोत्र के प्रति आने के समान हमारे छाने हुए सोम के प्रति आओ। घोड़ी के समान गाय का नीचे का भाग पुष्ट करो। यजमान का यज्ञ अन्न युक्तहो।६। हे मरुद्‌गण ! तुम हमें अन्न और पुत्रदो। तुम्हारे आपने पर वह तुम्हारा यशोगान किया करेगा। स्तुति करने वालों को तुम अन्न देते हो। स्तोता को उदारता, रण कुशलता तथा अक्षुण्ण शक्ति प्रदान करो।७। मरुद्‌गण के हृदय उज्ज्वल हैं। उनका दान सबका कल्याण करता है। वे जब अपने रथ में अश्व संयोजन करते हैं तब बछड़े को गाय द्वारा दूध देनेके समान हविदाताको अभीष्ट अन्न प्रदान करते हैं।८। हे मरुद्‌गण ! जो हिंसक हमसे वृक के समान शत्रुता करता है, उससे रक्षा करो। उसे अपने ताप से भगा दो।९। हे रुद्रो ! जब तुमने 'पृश्नि' के नीचे के भाग को दुहा था, तब स्तोता की निन्दा करने वाले का वध किया था। 'त्रित' के द्रोहियों का भी संहार किया था। उस समव तुम्हारी सामर्थ्य सब पर विदित हुई।१०। (२०)

तान् वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे।
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११

ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२

ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३

ताँ इयानो महि वरूथमूतय शप घेदेना नमसा गृणीमसि।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवरांश्चक्रियावसे ॥१४

यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम्।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ।१५।२१

हे उत्तम कर्म वाले मरुद्‌गण ! तुम यज्ञ में सदा जाते हो। सोम के सिद्ध होने पर तुम बुलाये जाते हो। स्तोतागण स्रुक हाथ में लेकर मरुद्‌गण

से श्रेष्ठ धन मागते हैं ।११। दिव्यलोक प्राप्त करने वाले अङ्गिरारूप मरुतों ने प्रथम यज्ञ को ढोया । वे हमको उषा कालमें यज्ञ कर्म में लगावें । जैसे उषा, रात्रि को दूर करती है, वैसे ही मरुद्गण, अपनी जल सींचने वाली प्रकाशित ज्योति से अंधेरे को मिटाते हैं ।१२। वे रुद्र पुत्र मरुत्,विशेष ध्वनि और अरुण वर्ण वाले हुये जल के आधारभूत मेघ में बढ़ते हैं । वे सदा प्रतिभावान् रहते हुये अपनी शक्तिसे जल लाते हुए अत्यन्त सुशोभित होते हैं ।१३। उन मरुद्गण से वरण करने योग्य धनों को माँगते हुए हम अपनी रक्षा के निमित्त प्रार्थना करते हैं । अभीष्ट सिद्ध करनेके निमित्त प्राण, अपान, समान,व्यान और उदान इन पाँचों होताओं को त्रित द्वारा सञ्चालित करते हैं ।१४। हे मरुद्गण ! तुम जिस साधन से यजमान की पाप से रक्षा करते हो तथा स्तुति करने वाले को शत्रु से बचाते हो, तुम्हारा वही साधन हमको प्राप्त हो ।१५। (२१)

सूक्त ३५

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता–अपान्नपात् । छन्द–त्रिष्टुप्)

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥१
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्वर्यो भुवना जजान ॥२
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥३
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ।५।२२
अन्न की कामना से मैं इस स्तोत्र को बोलता हूँ । शीघ्रगामी और

शब्दवान् जल-पौत्र अग्नि हमको प्रचुर अन्न और मनोहर रूप दें। वे स्तुतिकी कामना करते हैं, इसलिए मैं इनकी स्तुति करता हूँ।१। हम उनके निमित्त हार्दिक भावसे रची यह स्तुति करेंगे। वे हमारी स्तुति को भले प्रकार जानें। उन्होंने जीवों के हितकारी बल द्वारा समस्त संसार को रचना की है।२। जलों के साथ जल मिलते हैं। वे सब समुद्र में बड़वानल को बढ़ाते हैं। निर्मल और पवित्र जल अपान्नपात नामक देवता को घेरे रहता है।३। अहङ्कार रहित युवती, शृङ्गार से सज्जित हुई अपने तेजस्वी पति को प्राप्त होती है। वैसे ही ईंधन-रहित घृत से सिंचित अग्नि धनयुक्त अन्न की प्राप्ति के लिए जलों के मध्य तेज से प्रदीप्त होते हैं।४। इला, सरस्वती, भारती—ये त्रिदेवियाँ ह्रास रहित अपान्नपात् देव के निमित्त अन्न धारण करती हैं। ये जल में उत्पन्न पदार्थ को बढ़ाती हैं। अपान्न-पात (सर्व प्रथम प्रकट जल) के सार का हम पान करते हैं।५। (२२)

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥६
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९
हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णः।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ।१०।२३

अपान्नपात युक्त समुद्र में उच्चैःश्रवा अश्व उत्पन्न हुआ। हे विद्वान्! तुम द्रोही हिंसकों से स्तोताओं को बचाओ। अदानशील, मिथ्याचारी व्यक्ति इस देवता को प्राप्त नहीं होते।६। जो देवता अपने गृह में दिवास करते हैं उनका दोहन सरलता से किया जाता है। वे देवता वर्षा के लिए जल

की वृद्धि करघे और उत्तम अन्न सेवन करते हैं। वे जल में सशक्त हुये यजमान को धन दान के लिए भले प्रकार शुशोभित होते है।७। जो अपान्नपात सत्य रूप, विस्तीर्ण, पवित्र, तेजस्वी, जलों में सदा समान रूप से वास करने वालें प्रकशित होते हैं,सभी प्राणी उनके अंश-मात्र हैं। फल-युक्त औषधियों को उन्होंने उत्पन्न किया हैं।८। वे अपान्नपात टेड़ी चाल चलने वाले, मेघके मध्य ऊँचे होकर विद्युत्को धारण करते हैं। उनके यशको पाती हुई नदियाँ वहती हैं।९। उनका रूप, आकृति और वर्ण सुवर्ण के समान है। उनका स्थान भी हिरण्ययुक्त है। सुवर्ण दान वाले उन्हें अन्न भेंट करते हैं।१०। (२३)

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११
अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२
स ईं वृषाजनयत् तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णो ऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३
अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्माभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।१५।२४

अपान्नपात का किरण रूप शरीर सुन्दर नाम वाला है। यह गम्भीर होते हुए भी बढ़ते हैं। जल सहित विद्युत् उन्हें अन्तरिक्षमें दीप्तियुक्त करती है। उनका अन्न, जल ही है।११। हम अपने मित्र रूप अपान्नपात की यज्ञ, हविदाना और नमस्कार से पूजा करेंगे। मैं उनके उच्च भाग को सजाऊँगा। मैं उन्हें काष्ठ और अन्नद्वारा धारण करता हुआ स्तोत्र उच्चारण करता हूँ।१२। उन सेचन समर्थ अपान्नपात ने जल में गर्भ प्रकट किया। वे पुत्र रूप से जल-पान करते हैं। कभी जल उनको चाटता है। वे प्रदीप्त

दिव्य अपान्नपात नामक अग्नि पृथिवी पर अन्न रूपसे रहते हैं।१३। अपान्नपात् का श्रेष्ठ स्थान है। वे तेजस्वी और प्रदीप्त हैं। जल समूह उनके लिए वहन करते और गतिमान् रहते हुए उनको ढके रहते हैं।१४। हे अग्ने ! तुम सुन्दर हो। पुत्र प्राप्ति के लिए मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। यजमानके हित के लिए सुन्दर स्तोत्र वाला हूँ। देवगण का समस्त कल्याण हमको प्राप्त हो। हम पुत्र-पौत्र वाले होकर इस यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करेंगे।१५। (२४)

सूक्त ३६

(ऋषि—गृत्समद। भार्गवः शौनकः। देवता—इन्द्रमध्वादयः। छन्द—जगती।)

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपो ऽधुक्षन् त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः।
पिवेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२
अमेन नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धनस्त्वष्टर्देवेभिजनिभिः सुमद्गणः ॥३
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि वदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥४
एष स्य से तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥५
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिवतं सोम्यं मधु।६।२५

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त दूध और रस से युक्त है। यज्ञ में विद्वज्जन इसे पत्थर से कूटकर सिद्ध करते हैं। तुम जगत् के स्वामी हो। सब देवों में प्रथम तुम अग्नि में स्वाहाकार द्वारा डाले सोम का पान करो।१। हे मरुतो ! तुम रथारूढ़ रथ से युक्त, अस्त्रों से सुशोभित, रुद्र के पुत्र और

अन्तरिक्ष अग्रणी हो। तुम कुश पर विराजमान होकर होता से सोम को ग्रहण करो ।२। हे उत्तम आह्वान वाले विद्वानों ! हमारे साथ आकर कुशपर विराजमान होते हुए प्रसन्न होओ। हे अग्ने! विद्वानहो। इस यज्ञमें के देवताओं साथ सोम सेवनकर तृप्त होओ ।३। हे अग्ने ! तुम विद्वान हो । इस यज्ञमें देवताओं के आह्वानके लिए यजन करो। तुम देवताओं को बुलाने वाले हो,हमारे हवि की कामनासे गार्हपत्यादि तीनों स्थानों को प्राप्त होओ। उत्तम वेदी को प्राप्त सोम रूप मधु को ग्रहण करो । अग्नि के रखने के स्थान से अपने अंशमें सोमपान कर तृप्त होओ ।४। हे धनेश इन्द्र ! तुम प्राचीन हो । तुम जिस से शत्रु को जीतने वाली शक्ति और सामर्थ्य पाते हो, वही तुम्हारे लिए छाना जाकर लाया गया है। तुम ऋत्विज के पाससे सोम पीते हुए तृप्त होओ ।५। हे मित्रावरुण ! हमारे यज्ञ का सेवन करो। होतागण स्तोत्र–पाठ करते हैं । हमारा आह्वान सुनो। ऋत्विजों द्वारा सुसंस्कारित अन्न उपस्थित है,तुम सुशोभनीय, इस सोम को प्रशास्ता के पास से ग्रहण करो ।६। (२५)

। इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

सूक्त ३७

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता–द्रविणोदाः, इत्यादयः । छन्द-जगती)

सन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसो ऽध्वर्यवः स पूर्णा वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरर तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ।।१
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः।।२
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे ऽरिषण्यन् वीलयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ।।३
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ।।४

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहण रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशतः पायया हविः ।६।१

हे धनदाता अग्ने ! होता द्वारा किये गये यज्ञ में अन्न ग्रहण कर हृष्ट-पुष्ट बनो। हे अध्वर्युओं ! अग्नि पूर्णाहुति की कामना करते हैं, उन्हें सोम भेंट करो। यह धनदाता अग्नि मनोरथ पूर्ण करते हैं। हे अग्ने ! होता के यज्ञ में ऋतुओं सहित सोम को पीओ ।१। हमने पूर्वकाल में जिनका आह्वान कियाथा अब भी उन्हीं का आह्वान करते हैं। वे दाता और सबके स्वामी आह्वान करने योग्य हैं। अध्वर्युओंने उनके लिए मधुर सोम सिद्ध किया है। द्रव्यदाता अग्ने ! होता के यज्ञमें ऋतुओं सहित सोम पान करो ।२। हे द्रव्यदाता अग्ने ! तुम्हारा वाहन अश्व तृप्तहो। हे वनस्पते ! तुम दृढ़ एवं अहिंसक होओ। नेष्टा के यज्ञसे ऋतुओं सहित सोम पान करो ।३। हे धनदाता अग्ने ! जिन्होंने होता के यज्ञ में सोम पिया और पिता के यज्ञ में हृष्ट हुए, नेष्टा के यज्ञमें अन्न सेवन किया, वे सुवर्ण देने वाले ऋत्विक् के मृत्यु निवारक सोम रस को पीवें ।४। हे अश्विद्वय ! शीघ्रगामी, इच्छित स्थानपर पहुँचाने वाला जो तुम्हारा वाहन रथ है, उसीको आज इस यज्ञमें जोड़ो। हमारी हविको स्वादिष्ट बनाओ। तुम अन्न वालेहो। हमारे सोम रसका पान करो ।५। हे अग्ने तुम समिधा आहुति, स्तोत्र द्वारा स्तुति प्राप्त करो। तुम हमारी हवियों की कामना वाले सबके आश्रय-दाता हो। हमारी हवि की कामना वाले व देवताओं, ऋभुओं और विश्वेदेवताओं के साथ सोमपान करो ।६। (१)

सूक्त ३८

(ऋषि—गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता—सविता । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्ति ।)

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।

नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन् ॥२
आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३
पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत् संहायास्थाद् व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ।५।२

संसार को वहन करने वाले प्रकाशमान सवितादेव प्रसव के निमित्त नित्यप्रति प्रकट होते हैं । यही उनका नित्य नियम है । वे स्तुति करने वालों को रत्नादि धन देते और यजमान को कल्याण का भागी बनाते हैं ।१। लम्बी भुजा और प्रकाश से युक्त सवितादेव संसार को आनन्दित करने के लिए हाथ फैलाते हैं । उनके निमित्त अत्यन्त पवित्र जल बहता और वायु अन्तरिक्ष में विचरता है ।२। जब सवितादेव द्रुतगामी किरणों द्वारा छोड़े जाते हैं, तब निरन्तर चलने वाले पथिकभी रुक जाते हैं । शत्रुके विरुद्ध आक्रमणके निमित्त जाने वालों की इच्छा भी उस समय निवृत्त हो जाती है । सविता के कर्म कर लेने पर रात्रि का आर्विभाव होता है ।३। वस्त्र बुनने वाली स्त्री के समान रात्रि आलोक को छिपा लेती है । बुद्धिमानोंके किये हुए कर्म भाग मध्य मार्ग में रुक जाते हैं । ऋतुओंका विभाजन करने वाले सूर्य जब पुनः उदय होते हैं, तब लोग बिस्तरों को त्याग देते हैं ।४। अग्नि गृह में उत्पन्न तेज यजमान के अन्न कोष्ठों में व्याप्त होता है । उषा माता सविता द्वारा प्रेरित यज्ञ का उत्तम भाग अग्नि को दे चुकी है ।५। (२)

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वां अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वाना मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७

याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्तण्डो व्रजमा पशुर्गात् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९

भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०

अस्मभ्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ।११।३

सविता के दिव्य व्रत की समाप्ति पर रण में विजय की कामना करने वाला नृप वापिस लौटता है। सभी जङ्गम पदार्थ अपने निवास की इच्छा करते और कार्यों में लगे व्यक्ति अपने कार्य को अधूरा रहने पर भी घर की ओर चल देते हैं।६। हे सविता देव ! अन्तरिक्ष में तुम्हारे द्वारा स्थित जल भाग को खोज करने वाले पाते हैं। तुमने पक्षियों के निवास के लिए वृक्षोंका विभाजन किया। तुम्हारे कार्य को कोई नहीं रोक सकता।७। सूर्यास्त होनेपर गतिमान वरुण सभी जङ्गम पदार्थों को सुख देने वाले, आवश्यक और सुगम निवासको प्राप्त होते हैं।८। इन्द्र वरुण, मित्र, अर्यमा,रुद्र तथा शत्रु भी जिसके व्रत को नहीं रोक सकते, उन्हीं प्रकाशवान सूर्यको मङ्गलके लिए हम नमस्कार पूर्वक बुलाते हैं।९। सब मुनुष्य जिसकी स्तुति करते हैं,जो देव पत्नियोंकी रक्षा करते हैं, वे सूर्य हमारी रक्षा करें। भजन और ध्यान के योग्य अत्यन्त मेधावी सूर्य को हम प्रसन्न करते हैं। धन और पशुको पाकर सुरक्षित रखने की इच्छा से हम सविता देव का सद्भाव चाहते हैं।१०। हे भास्कर ! तुमने हमको जो विख्यात और मनोरम धन दिया है, वह दिव्य लोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष से

हमको मिले। जो धन स्तुति करने वालों के वंशजों के लिए कल्याणकारी है, वही धन मुझे दो। मैं तुम्हारी भले प्रकार अत्यन्त स्तुति करता हूँ ।११। (३)

सूक्त ३९

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता–अश्विनौ। छन्द–त्रिष्टुप्।)

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा ऽजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दंपतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पायुमस्मान् ॥४
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक्।
हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा पादेव नयतं वस्यो अच्छ ।५।४

हे अश्विनी कुमारो ! पत्थर को दो शिलाओं की भाँति शत्रुओं को बाधा दो। वृक्षपर दो पक्षियोंके आकर बैठने के समान तुम दोनों भी यजमान के निकट विराजमान होओ। मन्त्रोच्चारणकर्त्ता ब्रह्मा पद वाले ऋत्विज और दो राजदूतोंकी तरह तुम आह्वान करने योग्यहो ।१। हे अश्वियो ! तुम प्रातः काल में चलने वाले दो रथियों के समान श्रेष्ठ, सहजन्मा के समान यमज, दो सुन्दरियों के समान कांतिमान, दम्पति के समान सहकर्मी तथा सब कर्मों के ज्ञाता हो। तुम दोनों अपने उपासक को प्राप्त होओ ।२। हे अश्विद्वय ! तुम देवताओं में प्रथम हो। तुम पशु के दो सींगों के समान बलिष्ठ और अश्वादि के खुरों के समान वेगवान हुए पधारो। तुम शत्रुओं के मारने वाले और अपने कर्म-सामर्थ्य वाले हो। जैसे दिनमें चकवा-चकवी आते हैं, वैसेही हमारे समक्ष आओ ।३। हे अश्विनीकुमारो ! जैसे नौका पार लगाती है, वैसे हमको पार

लगाओ । रथ के दोनों पहियोंकी तरह हमको ढोकर पार करो । हमारी हिंसा से रक्षा करो और बुढ़ापे से बचाओ ।४। हे अश्विनीकुमारो ! तुम वायुओं के समान अक्षय, नदियों क समान वेग वाले तथा मन्त्रों के समान दर्शनीय हो । हमारे यहाँ पधारो । तुम दोनों हाथ और दोनों पावोंके समान शरीर को सुख देने वाले हो । तुम हमको उत्तम धन प्राप्त कराओ ।५। (४)

ओष्ठाविव मध्वास्स्ने वदन्ता स्तनाविव प्रिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६
हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेवः नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।८।५

हे अश्विद्वय ! जैसे दोनों ओष्ठों से मधुर वचन निकलते हैं, वैसे मीठी बात कहो । जैसे दोनों स्तनों से दूध निकलता है,वैसे जीवन को रसयुक्त करो। नाक के दोनों स्वरोंके समान हमारी रक्षा करो । दोनों कानोंके समान हमारी स्तुति सुनो ।६। हे अश्वियो ! दोनों हाथों के समान हमको बल दो । आकाश-पृथिवी के समान जल प्रदान करो । ये स्तुतियाँ तुम्हारी कामना करती हैं । जैसे धार रखने वाला यन्त्र तलवार को तीक्ष्ण करता है, वैसे ही तुम स्तुतियों को तीक्ष्ण करो ।७। हे अश्विद्वय ! गृत्समद ऋषि द्वारा बनाये गये ये स्तोत्र तुम्हारी वृद्धि करने वाले हैं । तुम सबके स्वामी और स्नेही हो । ये स्तुतियाँ तुमको प्राप्त हों । हम पुत्र-पौत्र से युक्त हुए इस यज्ञ मे अत्यन्त स्तुति करेंगे ।८। (५)

सूक्त ४०

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः । देवता–सोमापूषणौ,अदितिः । छन्द-त्रिष्टुप्)

सोमापूषणा जनना रयीणां जनाना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातो विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१

इमो देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३
दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥४
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ।६।६

तुम धन, आकाश और पृथिवी के पिता हो। जन्म लेने के उपरान्त ही तुम विश्व के रक्षक बन गये। देवताओं ने तुम्हें अमरत्व देने वाला बनाया ।१। तेजस्वी सोम और पूषा के जन्म लेते ही देवताओं ने उनकी सेवा की। इन दोनों ने अहितकर अन्धकार को मिटाया। इनके सहयोग से इन्द्र युवती गौओं के निम्न भाग में दूध उत्पन्न करते हैं ।२। इच्छितवर्षी सोम और पूषा! तुमने संसारका विभाग किया। तुम मल मास रहित सातों ऋतुओंसे युक्तविश्व के लिये पञ्च रश्मि युक्त हो। कामना करते ही अपना जुता हुआ रथ हमारे सामने लाते हो ।३। सोम पूषा औषधि रूप से पृथिवी पर तथा चन्द्रमा रूपसे उन्नत आकाश में वास करते हैं। तुत दोनों प्रशंसा योग्य, वरण करने योग्य, सुन्दर पशु रूप धन प्रदान करो ।४। हे सोम और पूषन्! तुमने सब भूतों को प्रकट किया। पूषा सब संसार को देखते हैं। तुम दोनों हमारे कर्मों के रक्षक हो। तुम्हारे बल से हम शत्रु सेना को जीत लें ।५। जगत्को सुखी करने वाले पूषा हमारे कर्म से सन्तुष्ट हों। धन सम्पन्न सोम हम को धन दें। तेजस्विनी अदिति शत्रुओं से हमें बचावें। हम पुत्र-पौत्र युक्त यज्ञ में अत्यन्त स्तोत्र पाठ करेंगे ।६।

(६)

सूक्त ४१

(ऋषि–गृत्समदः भार्गवः शौनकः। देवता–इन्द्र, वायु, मित्रावरुणौ प्रभृति। छन्द–गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरा गहि।
मियुत्वान् त्सोमपीतये ॥१
नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः। आ यातं पिबतं नरा ॥३
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ।५।७

हे वायो ! अपने सहस्र-रथ द्वारा, नियुदगण से युक्त होकर सोम-पान के निमित्त पधारो।१। नियुद्गण सहित पधारो। तुमने तेजयुक्त सोम को पान किया है। तुम सोम सिद्ध करने वाले के गृह को प्राप्त हो ।२। हे इन्द्र और वायो ! तुम नियुद्गण से युक्त हुए सोमके लिए यहाँ आओ और दुग्ध मिश्रित सोम का पान करो।३। हे मित्रावरुण ! यह सोम तुम्हारे निमित्त सिद्ध किया गया है। तुम सत्य की वृद्धि करने वाले हो। हमारे आह्वानको सुनो।४। द्वेष रहित, सबके स्वामी मित्र और वरुण इस सर्वश्रेष्ठ स्थिर तथा स्तम्भ वाले स्थान पर विराजमान हो।५। (७)

ता सम्राजा धृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥६
गोमदू षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना। वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७
न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८
ता न आ वोलहमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम्। धिष्ण्या
वरिवोविदम् ॥९
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो
विचर्षणिः ।१०।८

सबके सम्राट्, घृत रूप अन्न सेवन करने वाले, दानशील, अदिति पुत्र मित्र-वरुण ! सरल स्वभाव वाले यजमान का कार्य करते हैं।६। असत्य रहित

दोनों अश्विनीकुमारो ! रुद्रद्वय यज्ञ में अग्रणी जो सोम-रस पावेंगे उस सोमको गौ और अश्व युक्त रथ पर यहाँ लाओ ।७। धन की वर्षा करने वाले दोनों अश्विनीकुमार दूर या समीप के उस धन को जिसे मनुष्यों का शत्रु छीन नहीं सकता, हमको प्रदान करें ।८।हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे निमित्त विभिन्न प्रकार का, पालन करने वाला उत्तम धन लेकर पधारो ।९। वे इन्द्र अत्यन्त मेधावी हैं । वे हमको संसारके अपमान जनक और पराजयकारी भयसे छुड़ाते हैं ।१०।

(८)

इन्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः॥११
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून्
विचर्षणिः ॥१२
विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिनि षीदत ॥१३
तीव्रो वी मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥१४
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता
हवम् ।१५।८

इन्द्र हमको सुख देने की इच्छा करें तो पाप हमारे पास नहीं आवेगा, हमको कल्याण प्राप्त होगा ।११। इन्द्र बुद्धिमान शत्रुओं को जीतने की सामर्थ्य रखते हैं । वे ही हमको निर्भय बनावें ।१२। हे विश्वे-देवताओ ! यहाँ पधारो हमारे आह्वान को सुनते हुए इस कुश पर विराजमान होओ ।१३। विश्वे-देवताओ ! गृत्समद वंशवालों के पास अत्यन्त हर्षदायक रसयुक्त पुष्टि वर्द्धक सोम तुम्हारे निमित्त हैं । बलयुक्त सुन्दर सोमरस का पान करो ।१४। जिन मरुद्गण में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनको पूषा दान देने वाले हैं, वे मरुद्गण हमारे आह्वान को श्रवण करें ।१५।

(९)

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८
प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९
द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम्॥२०
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ।२१।१०

मताओं, और नदियों में श्रेष्ठत्व प्राप्त सरस्वती हम धनहीनों को धनी बनावें ।१६। हे सरस्वती ! तुम कांतिमय हो । तुम्हारे आश्रयमें अन्न का वास है । यज्ञ में सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो । हे सरस्वती ! तुम हमको पुत्र रूप सन्तति दो ।१७। अन्न और जल युक्त श्रेष्ठ देवी सरस्वती इस हवि को स्वीकार करें । यह हवि रमणीय है, देवगण इसे चाहते हैं । गृत्समदवंशी इस हवि को तुम्हें देते हैं ।१८। हे आकाश पृथिवी ! तुम यज्ञ की सुसम्पादिका हो। इस यज्ञमें पधारो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तथा हवि वाहक अग्निदेव का भी स्तवन करते हैं।१९। हेआकाश-पृथिवी ! तुम स्वर्ग आदिकी साधना सुफल करने वाली हो और देवताओं की ओर गमन करतीं हो । हमारे इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने वाली होओ ।२०। हे आकाशपृथिवी ! तुम द्वेषऔर शत्रुता से रहित हो । इस यज्ञ में आने वाले देवगण आज सोम पीने के लिए तुम्हारे पास आकर विराजमान हों ।२१। (१०)

सूक्त ४२

(ऋषि–गृत्समदो भार्गवः शौनकः । देवता–कपिञ्जल इवेन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्)

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१
मा त्वा श्येन उद् वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२
अव कन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥११

बारम्बार शब्द करने वाला, भविष्य का निर्देश करने वाला कपिञ्जल जैसे नाव को चलाता है, वैसे हो वाणी को प्रेरणा देता है। हे शकुनि ! तुम मंगलप्रद होओ। किसी प्रकार की भी पराजय, कहींसे भी आकर तुमको प्राप्त न हो।१। शकुनि ! बाज पक्षी तुम्हारी हिंसा न करे। गरुड़ भी तुमको न मारे। वह वीर, बली हाथमें धनुष बाण लेकर भी तुम्हें प्राप्त न कर सके तुम दक्षिण दिशा में बारम्बार शब्द करते हुए कल्याण सूचक हुए हमारे निमित्त प्रिय वचन बोलो।२। हे शकुनि ! तुम घर की दक्षिण दिशा में मधुर वाणी से कल्याण की सूचना देने वाले शब्द उच्चारण करो दुष्ट वञ्चक अथवा असुर हमारे स्वामी एवं शासक न बन वैठें। पुत्र-पौत्र युक्त होकर हम इस यज्ञ में स्तोत्र उच्चारण करेंगे।३। (११)

सूक्त ४३

(ऋषि-गृत्समदो भार्गवः शौनकः। देवता—कपिञ्जल इवेन्द्रः।
छन्द—जगती, अतिशक्वरी)

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१
उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा यद तृष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥१२

समय-समय अन्न की खोज करने वाले पक्षीगण स्तुति करने वालों की तरह परिक्रमा करते हुए सुन्दर शब्द उच्चारण करें। सोम गायकों द्वारा गायत्री छन्द और त्रिष्टुप् छन्द उच्चारण करने के समान,कपिञ्जल भी दोनों प्रकार की वाणी उच्चारण करता हुआ सुनने वालों को मोहित कर लेता है ।१। हे शकुनि ! सोम के उद्गाता जैंसे सोम-गान करते हैं, वैसे ही तुम भी सुन्दर गान करो। यज्ञ में ऋत्विग्गण जैसे शब्द करते हैं, तुम भी वैसा ही करो। तुम सब ओर से हमारे लिए पुण्य बढ़ाने वाले कल्याण की सूचना प्राप्त करते हो ।२। जब तुम मौन धारण कर बैठते हो तब हमसे प्रसन्न नहीं रहते जान पड़ते। जब तुम उड़ते हो तब कर्करि के समान मधुर शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवान हुए इस यज्ञ में रची हुई स्तुतियों का गान करेंगे ।३। (१२)

॥ द्वितीयं मंडलं समाप्तम् ॥

॥ अथ तृतीय - मण्डलम् ॥

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—गाथिनो विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन्।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ॥२
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसृ्णाम् ॥३
अवर्धयन् त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन् ॥४

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५।१३

हे अग्ने ! यज्ञ के लिए तुमने मुझे सोम को प्रस्तुत करने को कहा, इसलिए मुझे शक्ति दो । तेजस्वी होता देवों के प्रति सोम कूटनेके लिए पत्थर हाथ में लेता और स्तुति करता है । तुम मेरे देहकी रक्षा करो ।१। हे अग्ने ! हमने उत्तम रूप से यज्ञ किया है, हमारी स्तुति बढ़े । समिधा और हविसे हम अग्नि की सेवा करें । आकाशवासी देवों ने स्तुति करने वालों का स्तोत्र बताया । स्तोता, स्तुति के योग्य अग्नि की स्तुति करना चाहते हैं ।२। जो बुद्धिमान अत्यन्त बली और जन्मजात श्रेष्ठ मित्र हैं, जो आकाश में सुख को स्थापित करते हैं, उन दर्शनीय अग्निदेव को देवताओं ने नदियों के जल में से यज्ञ के लिए प्राप्त किया ।३। सुशोभित धन से युक्त, उज्ज्वल महिमावान प्रदीप्त अग्नि को प्रकट होते ही सप्त नदियोंने बढ़ाया । जैसे घोड़ी नवजात बालकको प्राप्त होती है वैसे ही नदियाँ सद्यः उत्पन्न अग्नि के समीप पहुँची । अग्नि के उत्पन्न होते ही देवताओं ने उन्हें प्रकाश युक्त किया ।४। उज्ज्वल वर्ण के तेज से अन्तरिक्ष को प्राप्त कर अग्नि स्तोता को तेजसे पवित्र करते तथा उसे अन्न-धनादि देते हैं ।५। (१३)

वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥६
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९
पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।

वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ।१०।१४

अग्नि जल के सब ओर गमन करते हैं। वह जल अग्नि को नहीं बुझाता और अग्नि द्वारा नहीं सूखता। अन्तरिक्षके पुत्र रूप अग्नि वस्त्र द्वारा ढकेनहीं जाते। परन्तु जल से ढके होनेके कारण नंगे भी नहीं है। सनातन नित्य और तरुण सप्त नदियाँ अग्नि को गर्भ रूप से धारण करती हैं ।६। जल-वर्षा के पश्चात् जल के गर्भ-रूप अग्निकी विभिन्न रूप वाली किरणें व्याप्त होती हैं। इस विद्युत् रूप अग्नि में जल रूप गौएँ सबके निमित्त वर्षा रूप दुग्ध देतीहैं। उस सुन्दर अग्नि के माता पिता पृथिवी और आकाश हैं ।७। हे बल के पुत्र अग्ने ! सबके द्वारा धारुण करने पर तुम उज्ज्वल और वेगयुक्त रश्मियों द्वारा प्रकाशित होओ। जब अग्नि यजमान के स्तोत्र से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तब श्रेष्ठ जल की वर्षा होती है ।८। प्रकट होते ही अग्नि ने अन्तरिक्ष के निचले स्तन, जल प्रदेश को जान लिया और वृष्टि के निमित्त वज्र को गिराया। यह अग्नि उत्तम कर्म वाले वायु आदि बांधवों के साथ चलते और अन्तरिक्ष के सन्तानभूत जलोंके साथ रहते हैं। तब अग्नि को कोई नहीं जान सकता ।९। अग्नि पिता-माता की गोदको अकेलेही भर देते हैं। वही बढ़े हुए अग्नि ओषधियों को खाते हैं। समान रूप से पति-पत्नीके समान आकाश-पृथिवी अग्निके पालनकर्त्ता हैं। हे अग्ने ! तुम आकाश और पृथिवीकी रक्षा करो ।१०। (१४)

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धाऽऽपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानाऽपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३
बृहन्त इद् भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ।१४

ईले च त्वा यजमानो हविर्भिरीले सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ।१५।१५

यह महान अग्नि विस्तार वाले अन्तरिक्ष में बढ़ते हैं, वहाँ बहुत अन्न वाला जल उनको भले प्रकार बढ़ता है । जल के गर्भ स्थान अन्तरिक्ष में वास करने वाले अग्नि अपनी वहन रूप नदियों के जलमें शान्ति पूर्वक रहते हैं।११। जो अग्नि संसार के पिता, जल से उत्पन्न मनुष्यों की रक्षा करने वाले शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, युद्ध में अपनी सेवा की रक्षा करने वाले, सबके देखने योग्य तथा अपने तेज से प्रकाशित हैं, इन्होंने यजमान के लिए पोषण सामर्थ्य दी ।१२। सुन्दर अरणि ने जल और औषधियों के गर्भभूत तेजस्वी अग्नि को उत्पन्न किया । सब देवता स्तुति के योग्य बड़े हुए तुरन्त अत्यन्त अग्नि के समीप स्तुतियुक्त हुए पहुँचे अग्नि की उन्होंने सेवा की ।१३। विद्युत् के समान अन्यन्त काँतियुक्त सूर्य अत्यन्त गम्भीर समुद्रमें अमृत मंथन कर गुहा के समान अपने घर अन्तरिक्ष में गढ़ते हुए हुए प्रकाशमान अग्निका आश्रय प्राप्त करतेहैं ।१४। मैं, यजमान हवियों सहित तुम्हारी स्तुति करता हूँ । अग्ने ! देवताओं सहित मुझे स्तुति करने वालेके पशु आदिकी तथा मेरी, दमन करने योग्यसेना से रक्षा करो ।१५। (१५)

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ।।१६
आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ।।१७
नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।।१८
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ।।१९

एना ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०
जन्मन्जन्म निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।२३।१६

हे नीतिवान् अग्ने ! हम तुम्हारी शरण माँगते हैं। हम सब धनों को प्राप्त करने वाला कर्म करते हुए हवि देते हैं। हम तुमको पुष्टिदायक हवि देकर देव बिरोधी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें।१६। हे अग्ने ! तुम देवताओं से प्रदर्शित इनके दूत हो। तुम सब स्तोत्रों को जानते हो। तुम मनुष्यों के बरसाने वाले रथी हो। तुम देवताओं का कार्य साधन करने के लिए उनका अनुसरण करते हो ।१७। राजा के सामने अग्नि यज्ञ-साधन करते हुए साधक के घर में विराजमान होते हैं। वे सब स्तोत्रों के ज्ञाता हैं। अग्नि का शरीर घृत से प्रदीप्त होता है। वे अग्नि सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं।१८। गमन करने के इच्छुक अग्नि ! कल्याणमयी मैत्री और महती रक्षा से युक्त हुए हमारे पास पधारो और हमको अधिक संख्या में, सुखदायक सुशोभित प्रशंसा योग्य धन प्रदान करो।१९। हे अग्ने ! तुम पुरातन हो। तुम्हारे प्रति हम प्राचीन और नवीन स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। सब प्राणियों में व्याप्त अग्नि मनुष्यों में वास करते हैं। उन अभीष्ट वर्षी अग्नि के प्रति ही हमने यह स्तुति की है ।२०। सब मनुष्यों में रमे हुए, सब प्राणियों में व्याप्त अग्नि को विश्वामित्र ने चैतन्य किया। हम उनकी कृपा से यज्ञ योग्य अग्नि के प्रति उत्तम भाव रखें।२१। है अग्ने ! तुम बलवान् और उत्तम कर्म वाले हो। तुम हमारे यज्ञ को देवों के निकट पहुँचाओ। हे देवताओं का आह्वान करने वाले अग्निदेव ! हमको अन्न और धन प्रदान करो।२२। हे अग्नि ! स्तुति करने वाले को अनेक कर्मों की साधक तथा गौ देने वाली

भूमि दो। हमारे वंश की वृद्धि करने वाला और सन्तान को जन्म देने वाला पुत्र दो। अग्ने ! हम पर कृपा करो।२३। (१६)

सूक्त २

(ऋषि–विश्वामित्रः। देवता–अग्निर्वैश्वानरः। छन्द–जगती।)

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति।१
स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः।
हव्यवालग्निरजरश्चनोहितो दूलभो विशामतिथिर्विभावसुः।।२
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे।।३
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्नयं वाजमृग्मियम्।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा।।४
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम्।५।१७

यज्ञ के बढ़ाने वाले वैश्वानर देव के प्रति हम शुद्ध घृत के समान सुख देने वाली स्तुति करेंगे। जैसे कठोर बुद्धि से रथ को ठीक किया जाता है, वैसे ही यजमान और ऋत्विक् देवताओं का आह्वान करने वाले गार्हपत्य और आह्वानीय रूपों वाले अग्नि को संस्कारित करते हैं।१। वे अग्नि प्रकट होते ही आकाश पृथिवी को प्रकाशमान करते हैं। वे माता-पिता के प्रेम पात्र पुत्र हैं। हवि वहन करने वाले, अजर, अहिंसित, अन्न देने वाले, कांतियुक्त अग्नि मनुष्यों में अतिथि के समान पूजनीय हैं।२। मेधावी जन विपत्ति से बचाने वाले बल से अग्नि को यज्ञ में प्रकट करते हैं। जैसे बोझा ढोने वाले अश्व की प्रशंसा होती है, वैसे ही मैं अन्न की कामना से कांतियुक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ।३। स्तुति के योग्य वैश्वानर के उत्तम प्रशंसनीय अन्न की अभिलाषा से भृगुओं की इच्छा पूर्ण करने वाले, इच्छा करने योग्य, मेधावी दिव्य तेज से सुशोभित अग्नि की सेवा करता हूँ।४। सुख की

कामना करने वाले ऋत्विग्गण कुश को बिछाते और स्रुक को उठाकर अन्न देने वाले, तेजस्वी, हितकारी, दुःखत्राता तथा यज्ञ-साधक अग्नि का स्तवन करते हैं ।५।

(१७)

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्वमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६
आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातवे चनोहितः ॥७
नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥८
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन् त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ।१०।१८

पवित्र तेज वाले देव-आवाहक अग्नि देव ! तुम्हारी सेवा करने के इच्छुक यजमान यज्ञ में कुशा बिछाकर तुम्हारे यज्ञ स्थल को सजाते हैं। उनके लिये धन प्रदान करो ।६। अग्नि ने काकाश और पृथिवी को पूर्ण किया । यजमानों ने उनकी तुरन्त प्रकट अग्नि को धारण किया सर्व व्यापक अन्न देने वाले अग्निदेव घोड़े के समान अन्न प्राप्त करने को प्रदीप्त किये जाते हैं ।७। यज्ञ के स्वामी, दर्शनीय अग्नि देवताओं को प्राप्त हुए । वे हवि देने वाले, सुन्दर यज्ञ से युक्त तथा यजमान का हित करने वाले हैं । उन अग्नि की नमस्कार पूर्वक सेवा करो ।८। अमरत्व प्राप्त देवताओं ने अग्नि की इच्छा से विश्वव्यापी अग्नि को पार्थिव विद्युत् और सूर्य रूप दिये । उन्होंने उन तीनों में से संसार के पालन कर्त्ता पार्थिव अग्नि को पृथिवी पर तथा शेष दोनों को आकाश में स्थापित किया ।९। धन की कामना करने वाले मनुष्यों ने अपने स्वामी अग्निदेव को तलवारके समान तीक्ष्ण करने के लिए संस्कारित

किया जो ऊँचे नीचे स्थलों को व्याप्त कर चलते और सब लोकोंमें सब जीवों को धारण करते हैं।१०। (१८)

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो दि दाशुषे ॥११
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद् दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे।१५।१९

सद्यःजात वैश्वानर अग्नि अभीष्टवर्षक हैं। वे सिंह के समान गर्जते हुये बढ़ते हैं। वे अविनाशी, अत्यन्त तेज वाले हैं। यजमान को उपभोग्य वस्तु प्रदान करते हैं।११। स्तोताओं से स्तुत्य अन्तरिक्ष की पीठ, सूर्य लोक पर चढ़ते हैं। प्राचीन ऋषियों के समान चैतन्य होकर यजमान को धन देते हुये सूर्य रूप से घूमते हैं।१२। महाबली, मेधावी, स्तुत्य, आकाशवासी जिन अग्निको वायु ने आकाश से लाकर पृथिवी पर प्रतिष्ठित किया, उन्हीं विभिन्न गति वाले, पीतवर्ण,तेजस्वी अग्नि से हम नवीन धनकी याचना करते हैं।१३। यज्ञ में प्रेरित करने वाले ज्ञान के कारणभूत, प्रदीप्त, ध्वज-रूप, सूर्य-रूप से अवस्थित, उषाकाल में चैतन्य होने वाले अग्नि की स्तोत्र द्वारा पूजा करता हूँ।१४। स्तुति के योग्य, देवताओं का आह्वान करने वाले पवित्र,सीधे, श्रेष्ठ, सर्वज्ञाता, दर्शनीय, विभिन्न वर्ण वाले, मनुष्यों के लिए कल्याणकारी अग्नि देव से मैं धन माँगता हूँ।१५। (१९)

सूक्त ३

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–वैश्वानरोऽग्निः । छन्द–जगती ।)

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृयो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ।५।२०

सन्मार्ग प्राप्ति के निमित्त बुद्धिमान् स्तोता अत्यन्त बली वैश्वानर के प्रति यज्ञ में सुन्दर स्तुति करते हैं । अविनाशी अग्निदेव हवि वहन करते हुये देवताओं की सेवा करते हैं । इस पुरातन यज्ञ को कोई अपवित्र नहीं कर सकता ।१। प्रकाशमान होता अग्नि देवताओं के दूत हुये आकाश पृथिवी के मध्य गमन करते हैं । देवताओं द्वारा प्रेरित बुद्धिमान् अग्नि स्तोता के समक्ष स्थापित हुए यज्ञशाला को सुशोभित करते हैं । यज्ञों को बढ़ाने वाले, यज्ञ-कार्य से साधन करने वाले अग्नि को विद्वज्जन अपने कर्म द्वारा पूजते हैं । स्तोतागण कपने कर्मों को जिन अग्नि की भेंट करते हैं,उन्हीं अग्निमें यजमान की कामनायें आश्रय प्राप्त करती हैं ।३। यज्ञ पिता, स्तुति करने वालों को बल देने वाले, ज्ञान के कारण तथा कर्मों के साधक अग्नि अपने पार्थिव और विद्युदादि रूप से लोकों में व्याप्त होते हुए, यजमान द्वारा पूजित होते हैं ।४। सबको जानन्द देने वाले, सुवर्णमय रथ वाले, पीतवर्ण वाले, जलमें वास करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, द्रुतगामी, बली, पोषक, प्रदीप्त, वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने स्थापित किया ।५। (२०)

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८
विभावा देवा सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ।११।२१

जो यज्ञ साधन करने वाले देवताओं और ऋत्विजों की संगति से विविध यज्ञ कर्मों को सम्पादित करते हैं । जो द्रुतगामी, दानी, अग्रणी और शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, वे अग्नि आकाश-पृथिवी के मध्य गमनशील हैं ।६। हे अग्ने ! हमको सुन्दर पुत्र और दीर्घायु प्रत्प्त कराने के लिए देवताओं का स्तवन करो । हवि द्वारा उन्हें प्रसन्न करो । अन्न के निमित्त वृष्टि माँगों । तुम सदा चैतन्य रहते हो । इस यजमान को अन्न प्राप्त कराओ । तुम श्रेष्ठ कर्म वाले देवताओं के मित्र हो ।७। मनुष्यों के स्वामी अतिथि रूप, महान् बुद्धि-प्रेरक, ऋत्विजों के स्नेह पात्र, यज्ञ का ज्ञापन करने नाले, वेगवान् अग्नि की श्रेष्ठ पुरुष नमस्कार पूर्वक पूजा करते हैं ।८। प्रकाशवान्, सुन्दर, रथ युक्त अग्निदेव शक्ति से अपनी प्रजा को व्याप्त करते हैं । उन बहुतों के पालककर्त्ता अग्नि के सब कर्मों को हम श्रेष्ठ मन्त्रों द्वारा प्रदीप्त करेंगे ।९। हे मेधावी वैश्वानर अग्ने ! तुम अपने जिस तेज द्वारा सर्वज्ञ बने, मैं तुम्हारे उसी तेज को प्रणाम करता हूँ । तुम प्रकट होते हो । आकाश पृथिवी आदि सब लोकों में व्याप्त होते हुए जीव मात्र में रम

जाते हो ।१०। वैश्वानर अग्नि की दुःख नाशिनी क्रिया द्वारा महान् धन प्राप्त होता है । वे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की कामना से यजमान को धन दिया करते हैं । वे पौरुष युक्त अग्नि आकाश-पृथिवी रूप पिता-माता का स्तवन करते हुए प्रकट होते हैं ।११। (२१)

सूक्त ४

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–आप्रियः । छन्द–त्रिष्टुप्)

समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन् त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिलः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् ॥३
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ।५।२२

हे अग्ने तुम समृद्धि को प्राप्त होओ, अनुकूल मन से चैतन्य प्राप्त करो । तुम द्रुतगति वाले हो । अपने तेज से हम पर धन-युक्त दृष्टि करो । देवताओं को इस यज्ञ में लाओ, क्योंकि तुम देवताओंके मित्र हो । उत्तम मन से अपने मित्र देवताओं का यजन करो ।१। वरुण, मित्र और अग्नि जिनका प्रतिदिन तीनों समय यज्ञ करते हैं वे तनूनपात अग्नि हमारे जल की कामना वाले यज्ञ का फल वर्षा के रूप में दें ।२। देवों का आह्वान करने वाले अग्नि की सब की प्रिय स्तुति प्राप्त हो । सुख उत्पन्न करने के लिए इला अभीष्ट पूरक पूज्य अग्नि के पास पहुँचे । यज्ञ कुशल अग्निदेव हमारे निमित्त यजन करें ।३। यज्ञ में अग्नि के लिए एक उन्नत मार्ग निश्चित है । उज्ज्वल हवि ऊपर उठनी है । प्रकाशमान यज्ञशाला के नाभि

में होता स्थित हैं । हम देवताओंके लिए पृथिवी पर कुश बिछावेंगे ।४। संसार को प्रसन्न करने वाले देवता जल द्वारा यज्ञ को प्राप्त होते हे । वे निर्मल मन वाले याचना किये जाये पर अग्नि रूप द्वार से हमारे यज्ञ में आकर प्रकट हों ।५।

(२२)

आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभि ॥६
दैव्या होतारा प्रथमा न्यूञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यामाः ॥७
आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वर्ष्टवि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हयिः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनमानि वेद ॥१०
आ याह्यग्ने हमिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।११।२३

प्रकाशमान दिवस और रात्रि परस्पर मुसकाते हुये विकसित हों । मित्र, वरुण और इन्द्र जिस रूप से हम पर कृपा करते हैं, वे तेजस्वी उसी रूप को हमारे निमित्त धारण करें ।६। दिव्य और मुख्य अग्नि रूप दोनों होताओं का मैं स्तवन करता हूँ । यज्ञ की इच्छा से अन्न चाहने वाले ऋत्विक् हवि देकर अग्नि को बढ़ाते हैं । व्रत के पालन करने वाले ऋत्विक् यज्ञ रूप अग्नि की प्रशंसा करते हैं ।७। सूर्य की दींप्ति के साथ अग्नि रूप भारती प्राप्त हों । देवताओं के साथ मनुष्यों को इला प्राप्त हों । तेजस्वी विद्वानों के साथ सरस्वती भी यहाँ कावें । ये तीनों देवियाँ कुश के आसन पर विराजमान हों ।८। हे त्वष्टा ! जिस वीर्य से कर्मवान्, वीर, सोम सिद्ध करने वाला, देवताओं का पूजक पुत्र उत्पन्न हो सके, तुम प्रसन्न होकर

वैसा ही पुष्ट बीर्य हमको प्रदान करो ।९। हे वनस्पते ! तुम देवों को यहाँ ले आओ। प्राणी को संस्कारित करने वाले अग्निदेव देवाह्वान यज्ञ करें क्योंकि वे ही देवताओं के ज्ञाता हैं ।१०। हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हुए इन्द्रादि देवताओं के सहित एक रथ पर चढ़कर शीघ्रता से यहाँ आओ। पुत्रों सहित अदिति हमारे कुश के आसन पर विराजमान हों। अग्नि रूप से स्वाहाकार युक्त हुए देवगण तृप्त हों ।११। (२३)

सूक्त ५

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धो ऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१
प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३
मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्यु रिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ।५।२४

अग्नि उषा के ज्ञाता हैं । वे विद्वानों का अनुकरण करने के लिए चैतन्य होते हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं। देवताओं की कामना करने वाले व्यक्ति उन्हें प्रज्वलित करते हैं, तब वे ज्ञान का द्वार खोलते हैं ।१। पूजनीय अग्नि स्तुति करने वालों के स्तोत्र वाणी और मन्त्र से बढ़ते हैं। वे अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रदीप्त होने के अभिलाषी हुये उषा काल में प्रज्वलित होते हैं ।२। यजमानों के सखा रूप अग्नि यज्ञ का अभीष्ट फल देने के निमित्त मनुष्यों में विराजमान होते हैं। वे स्पृहणीय अग्नि यज्ञ योग्य हैं वे मेधावी स्तुति करते वालों की स्तुति के पात्र हैं ।३। जब अग्नि प्रवृद्ध होते

हैं। तब वे सखा भाव युक्त होते हैं। वे मित्र होता और सबको जानने वाले वरुण हैं। वे मित्र भाव वाले दानमय स्वभाव युक्त अध्वर्यु और प्रेरणा देने वाले वायु रूप है। वे नदियों से भी पर्वतों से भी सख्य भाव रखते हैं।४। सर्वव्यापक अग्नि पृथिवी के प्रिय स्थानके रक्षक है। वे सूर्य के घूमने के स्थान की रक्षा करते हैं, अन्तरिक्ष में मरुद्गण का पालन करते और देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ को पुष्ट करते हैं।५। (२४)

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान्।
ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६
आ योनिमग्निघृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नायसी कः ॥७
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वधन्ति प्रस्वो घृतेन।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८
उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद् वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद् यजथाय देवान् ॥९
उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वो ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम्।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सुनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।११।२५

सब के ज्ञाता महान् अग्नि प्रशंसा योग्य रमणीय जल को उत्पन्न करने वाले हैं। अग्नि के सुप्त रहने पर भी उनका रूप चमकता रहता है। वे अग्नि सावधानी से अपने रूप की रक्षा करते हैं।६। स्तुति किये हुए, प्रकाश युक्त अपने स्थान से प्रेम करने वाले अग्निदेव विराजमान हुये। वे प्रकाशमान, तेजस्वी, पवित्र अग्नि आकाश पृथिवी रूप अपने पिता-माता को अभिनवता प्रदान करते हैं।७। अग्नि अपने जन्म से औषधियों द्वारा धारण किये जाते हैं। उस समय मार्ग में बहते हुए जल के

समान सुशोभित औषधियाँ जल द्वारा वृद्धिको प्राप्त होती और फलयुक्त होती हैं। पृथिवी से आकाश तक उठते हुये अग्नि हमारे रक्षक हों।८। हमारे द्वारा प्रदीप्त और स्तुत्य अग्नि सबके मित्र स्तुत्य और अरणियों द्वारा प्रदीप्त होते हैं। वे देवताओं के दूत होकर यज्ञ में उन्हें बुलावें।९। जब मातरिश्वा ने भृगुओं के निमित्त गुफा में विराजमान हविवाहक अग्नि को चैतन्य किया तब तेजस्वी, श्रेष्ठ अग्नि ने अपने तेज से सूर्य लोक को भी स्तब्ध कर दिया।१०। हे अग्ने तुम अपने स्तोता को अनेक कर्मों के फल रूप गवादि धन-युक्त भूमि सदा देते रहो। हमारे वंश की वृद्धि करने वाला सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हो। यह सब तुम्हारी कृपा से ही होगा।११। (२५)

सूक्त ६

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलते शुक्रमर्चिः ॥३
महान् त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हयमाणः।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततस्थ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ।५।२६

हे यज्ञ करने वालो ! तुम सोम की कामना करते हो। मन्त्र से प्रेरणा पाकर देवोपासना में साधन रूप स्रुक को यहाँ लाओ। जिसे आह्वानीय अग्नि दक्षिण दिशा में ले जाते हैं जिसका अग्रभाग पूर्व में रहता है,

वही धनयुक्त अग्नि के निमित्त अन्न धारण करता है ।१। हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही आकाश-पृथिवी को पूर्ण करो । यज्ञ के योग्य, महिमा से बढ़े हुये तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी पर उठो और तुम्हारे अंशभूत पार्थिव अग्नि को सप्त जिह्वायें पूजी जायें ।२। हे अग्नि ! तुम होता हो । जब देवताओं की कामना वाले हविदाता मनुष्य तुम्हारे तेज की प्रशंसा करते हैं, तब अन्तरिक्ष, पृथिवी और देवता यज्ञ कार्य को सफल करने के लिए तुम्हें पूजते हैं ।३। यजमानों के मित्र महान् अग्नि आकाश और पृथिवी के मध्यस्थ हुये विराजमान हैं। समान प्रीति वाली, अजर,अहिंसिता, आकाश पृथिवी गतिमान् अग्निके निमित्त दूध देने वाली गाय के समान हैं ।४। हे अग्ने ! तुम सर्वश्रेष्ठ हो । तुम महान कर्म वाले हो । तुमने आकाश-पृथिवी को यज्ञ-कर्म द्वारा विस्तार दिया है। तुम दौत्य कर्म में निपुण हो । अभीष्टों की वर्षा करने वाले, जन्म से ही यजमान के पूज्य बनते हैं ।५। (२६)

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान् देव विश्वान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ।।६
दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ।।७
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ।।८
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ।।९
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये।।१०
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।११।२७

हे तेजस्वी अग्ने ! तुम सुन्दर बाल वाले रस्सी से युक्त घृतस्रावी अश्वों को यज्ञ के सामने जोड़ो । फिर सब देवताओं कों बुलाओं । तुम सबको यज्ञ-मय बनाओ ।६। हे अग्ने तुम जंगल में जल को सुखाते हो, तब तुम्हारा प्रकाश सूर्य से भी अधिक प्रतीत होता है । तुम सुन्दर कांतिमती उषा के पीछे प्रकाशित होते हो । स्तोतागण, स्तुतिके पात्र,होता रूप अग्नि का स्तवन करते हैं ।७। जो देवगण विस्तृत अन्तरिक्ष में सुखी हैं,जो देवता प्रकाशमान आकाश में वास करते हैं, जो 'ऊम' संज्ञक पितरगण आह्वान पर आते है, वे सब रथ युक्त अग्नि के अश्व रूप हैं ।८। हे अग्ने ! उन सभी देवताओंके सहित रथारूढ़ हुये हमारे पास आओ । तुम्हारे अश्व तुम्हें यहाँ लावें। यहाँ आकर उन्हें सोम द्वारा बलिष्ठ बनाओ ।९। विशाल आकाश और पृथिवी सभी यज्ञों में जिन अग्निदेव की समृद्धि के निमित्त स्तुति करती हैं, वे देबताओं के होता, जल सम्पन्न, सुन्दर रूप वाले अग्निदेव यज्ञ की पूर्व दिशा में स्थित हों । ।१०। अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले कों विविध कर्मो की कारणभूत गौ युक्त भूमि सदा प्रदान करो । हमको वंश की वृद्धि करने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र दो । यही तुम्हारा अनुग्रह होना चाहिए ।११। (२७)

॥ इति द्वितीयोऽष्टकः समाप्तः ॥

तृतीय अष्टक

(प्रथम अध्याय)

सूक्त ७

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्नि। । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते स सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥१
दिवक्षसो धेनवो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद् वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२
आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥३
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो दहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥४
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इला येषां गण्या माहिना गीः ।५।१

उज्ज्वल पीठ वाले सर्व धारक अग्नि की लपटें उत्तमता से उन्नत होती हैं, वे आकाश-पृथिवी रूप माता पिता की सब दिशाओं में व्याप्त होती हैं। आकाश-पृथिवी रूप माता-पिता सब ओर विस्तीर्ण हुए यज्ञ के निमित्त अग्नि को लम्बी आयु प्रदान करते हैं।१। आकाशवासी गौ ही अग्नि का अश्व है। मधुर जल को बहाने वाली उज्ज्वल नदियों में अग्नि का नाम है। हे अग्ने ! तुम सत्य में वास करना चाहते हो। हे अग्नि ! तुम्हारी प्रेरणा से ही यह पृथिवी सत्य व्यवहार पर दृढ़ रहती है।२। उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी ज्ञानी अग्नि बड़वानलों में गढ़े रहते हैं। उज्ज्वल पीठ वाले अग्नि ने सदा गतिमान रहने के लिए बड़वानलों को विमुक्त कर दिया।३। बहने वाली

नदियाँ अग्नि का पालन करती हैं । त्वष्टा के पुत्र, अजर महान् तथा सम्पूर्ण जगत् को धारण करने की इच्छा करते हैं । युवा पुरुष के पत्नीके निकट जाने के समान जल के निकट प्रदीप्त हुये अग्नि आकाश और पृथिवीमें व्याप्त होने हैं ।४। कामनाओं के वर्धक अहिंसक अग्नि के आश्रय से उत्पन्न सुख को जानने वाले उपासक उनके आदेश में उपस्थित रहते हैं । जिन स्तोताओं की स्तुति रूप वाणी उल्लेख योग्य होती हैं, वे आकाश को प्रकाशित करने वाले सुशोभित हुए स्वयं भी प्रकाशमान होते हैं ।५। (१)

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥६
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान् महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥९
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।११।२

मातृ-पितृ-भूता आकाश पृथिवीं के प्रति की जाने वाली स्तुति से प्रकट कल्याण भावनायें अग्नि को प्राप्त होती हैं । जल सींचने में समर्थ अग्नि देव रात्रि में प्रकाशित अपने तेज की स्तुति करने वाले के प्रति प्रेरित करते हैं ।६। पाँच अध्वर्युओं युक्त सप्त होता अग्नि के प्रिय निवास यज्ञ की रक्षा करते है । सोम प्राप्ति की इच्छा से पूर्व की ओर गमन करनें वाले सोमरस को सींचने वाले, परिश्रम से न हारने वाले स्तोता प्रसन्नता प्राप्त करते हैं । क्योंकि उन देवताओं के समान स्तोताओं के यज्ञ में देवगण पधारते हैं ।७।

दिव्य होता स्वरूप दो अग्नियों को मैं सजाता हूँ । सप्त होता सोम सिद्ध होने पर प्रसन्न होते हैं । वे होता स्तुति करते हुए, यज्ञ की रक्षा करते हुऐ अग्नि को ही सत्य बतलाते हैं ।८। देवाह्वानकर्त्ता एवं प्रकाशमान अग्नि महान् एवं अभीष्टवर्षक हैं। हे अग्ने ! तुम्हारी आज्ञानुसार ज्वालायें विस्मृत होती हुई सर्वत्र व्यापती हैं तथा वृषभ तुल्य प्रभाव वाली होती हैं । तुम हर्ष युक्त एवं ज्ञानवान् हो । हमारे यज्ञ कर्ममें देवताओं और आकाश पृथिवी के बुलाने वाले हो ।९। सदा गतिमान् अग्नि के लिए जिस उषाकाल में हवि देते हुए यज्ञ किया जाता है, वह उषा काल सुशोभित स्तुति रूप वाणी तथा पक्षियों और मनुष्यों के श्रेष्ठ शब्दों से सुसज्जित है, वह उषा काल धनैश्वर्य से युक्त हुआ प्रताशित होता है । हे अग्ने ! तुम अपनी महती कृपा द्वारा यजमान कृत पाप कर्म का नाश करनेमें समर्थ हो ।१०। हे अग्नि ! स्तुति करने वाले को विविध कर्म की हेतु और गवादि धनयुक्त भूमि दो । हमें बंश बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र दो । तुम्हारा यही अनुग्रह हम चाहते हैं ।११। (२)

सूक्त ८

(ऋषि–विश्वामित्र: । देवता-विश्वेदेवा:, यूप:, व्रश्चन: । छन्द-त्रिष्टुप् अनुष्टुप्)

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ।।१
समिद्धस्य श्रयमाण: पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सोभगाय ।।२
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ।।३
युवा सुवासा: परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान: ।
तं धीरास: कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त: ।।४
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमान: ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ।५।३

हे वनस्पते ! देवताओं की कामना करने वाले अध्वर्यु दिव्य सोमरस द्वारा तुम्हें सींचते है । तुम चाहे बीज रूप से पृथ्वी में शयन करो अथवा ऊँचे उठो, हमको धन प्रदान करो ।१। हे यूप ! तुम अग्नि की पूर्व दिशा में रहते हुए सुन्दर, जरा रहित सन्तानयुक्त हो । हमारे पापों को दूर करो । हम को महान् धन प्राप्त करने के लिए उठो ।२। हे वनस्पते ! तुम पृथ्वी के जलादियुक्त श्रेष्ठ स्थानपर बढ़ो । तुम माप-योग्य बनो । यज्ञ के पालक ! यजमान को अन्न प्रदान करो ।३। दृढ़ अङ्ग से युक्त, सुन्दर जीभ वाला यूप प्रकट होता है । वह यूप,सब वनस्पतियोंमें उत्तम प्रकार वाला है । ज्ञानवान् मेधावी जन देवताओं की कामना से निश्चल ध्यानपूर्वक हृदय से उसे बढ़ाते हैं ।४। वृक्ष रूप से पृथिवी पर उन्नत हुआ यूप यज्ञ स्थान में मनुष्यों के साथ सुशोभित हुआ दिवसोंको मङ्गलमय बनाता है । कर्मवान मेधावी अध्वर्युगण अपनी बुद्धि के अनुसार यूप को जल से धोकर शुद्ध करते हैं । देवताओं का यजन करने वाले विज्ञ होता स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ।५। (३)

याञ् वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६
ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥७
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८
हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद् देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०
वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ।११।४

हे यूपो ! देवताओं की कामना करने वाले, कर्मों के पालक अध्वर्यु गण तुम्हें गढ़े में फेंकते हैं । हे वनस्पते ! तुम कुठार से काटे गये हो । तुम उज्ज्वल काष्ठ वाले हो । इनको सन्तानयुक्त श्रेष्ठ धन प्रदान करो ।६। जो कुठार से काटे जाकर ऋत्विजों द्वारा गढ़े में डाल दिऐ जाते हैं तथा जो यज्ञ का साधन करने वाले हैं, वे यूप हमारी हवियों को देवताओं के समीप पहुँचावें ।७। आदित्य, रुद्र, वसु भले प्रकार सङ्गत होकर सूर्य मण्डल, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में व्याप्त हों और यज्ञ का पालन करें । वे ही यज्ञ की ध्वजारूप अग्निको बढ़ावें ।८। सुन्दर ध्वजा से ढके हुए, हंस के समान श्रेणीबद्ध खण्ड युक्त यूप हमको प्राप्त हों । विद्वान् अध्वर्युओं के द्वारा पूर्व की ओर उठे हुए उज्ज्वल यूप देवताओं के मार्ग पर जाते हैं ।९। काँटे आदि हटाने के पश्चात् सुन्दर हुए यूप पृथिवीपर उत्पन्न सींग वाले पशुओं के सींगों की भाँति लगते है । यज्ञमें ऋत्विजों के स्तोत्र श्रवण करने वाले यूप, युद्धमें हमारे रक्षक बनें ।१०। हे वनस्पते ! तुम मूलसे पृथक् हुए, तीक्ष्ण धार वाले कुठार ने तुम्हें अत्यन्त भाग्यवान् बनाया । तुम सहस्र शाखाओं से युक्त हुए उत्तम प्रकार से उत्पन्न होओ । हम भी सहस्र शाखा वाले होते हुए उत्तम प्रकार से बढ़ें ।११। (४)

सूक्त ९

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्निः । छन्द-बृहती, त्रिष्टुप्)

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१
कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नः ।
न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ॥२
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो ऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४

ससृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ।५।५

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले अविनाशी, प्रकाशमान, उपद्रव-रहित विश्व को प्राप्त होने वाले हो । हम मनुष्य तुम्हारे मित्र के समान हैं । हम तुमको अपने रक्षक रूप से वरण करते हैं ।१। अग्ने ! तुम सब जङ्गलों के रक्षक हो । तुम अपने आश्रयभूत जलों में वास कर शान्त होओ । तुम अपने शान्त भाव में जब ऊब जाते हो, तब दूर रहते हुए भी हमारे कोष्ट में प्रकट होते हो ।२। हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को कामना की पूर्ति का तुम विशेष रूपसे विचार करते हो । तुम सदा तृप्त रहते हो । तुम्हारे मित्रभाव को प्राप्त करने वाले सोलह ऋत्विज हविदान करते हैं और तुम्हारे चारों ओर बैठते हैं ।३। गुफा में रहने वाले शत्रु और उनकी सेनाओं को पराजित करने वाले अग्नि को, द्वेष-शून्य विश्वेदेवताओं ने प्राप्त किया ।४। स्वेच्छाकारी पुत्र को पिता अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही स्वेच्छापूर्वक रमे हुए अग्नि को मथ कर मातरिश्वा देवताओं के लिए ले आए ।५। (५)

तं त्वा मर्ता अगृम्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान् यद् यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ।।६
तद् भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ।।७
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ।।८
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ।९।६

मनुष्यों के हित साधक, सतत युवा अग्नि देव ! तुम अपनी महत्ता से यज्ञ की रक्षा करते हो । तुम हवि वहन करने वाले को मनुष्यों ने देवताओं के निमित्त वरण किया । ६ । हे अग्ने ! सायंकाल में प्रदीप्त होने पर सब पशु तुम्हारे आश्रय में बैठते हैं । तुम्हारा श्रेष्ठ कर्म शिशु

के समान मूर्ख को भी अभीष्ट देकर तृप्त करता है ।७। उन काष्ठादि में सुप्त उत्तम कर्म वाले तथा पवित्र प्रकाश वाले अग्नि का यजन करो । द्रुतगामी, प्राचीन, सर्व व्याप्त, दूत-रूप स्तुत्य अग्नि का यजन करो ।८। उन अग्नि को तेतीस सौ उन्तालीस देवताओं ने पूजा, घृत से उन्हें सींचा है और उनके लिए कुश बिछाये हैं । फिर उन्होंने अग्नि को होता रूपमें वरण कर कुश पर प्रतिष्ठित किया है ।९। (६)

सूक्त १०

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–अग्निः । छन्द–उष्णिक्)

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीलते ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२
स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥३
स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥४
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो ऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ।५।७

हे प्रजास्वामी अग्नि देव ! तुम प्रकाशमान हो । तुम्हें मेधावी जन चैतन्य करते हैं ।१। हे अग्नि ! तुम होता हो । तुम्हीं ऋत्विक हो । अध्वर्युगुण यज्ञ में तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम यज्ञ गृह में प्रकाशित होकर यज्ञ की रक्षा करो ।२। हे अग्ने ! तुम जन्म से हो मेधावी हो। जो यजमान तुमको हवि देते हैं, वे उत्तम वीर्यवान् पुत्र प्राप्त करते हुए पशु, पुत्र एवं ऐश्वर्य द्वारा समृद्ध होते हैं ।३। यज्ञ को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव सात होताओं द्वारा घृत से सींचे जाते हैं । वे देवताओं के साथ यजमान के पास आवें ।४। हे ऋत्विजो ! मनुष्यों में बुद्धि रूप तेज व्याप्त

करने वाले, जगत् के रचयिता देवताओं के आह्वानकर्त्ता अग्नि के लिए पुरातन और महान् स्तोत्रों का सम्पादन करो।५। (७)

अग्नि वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥७
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम्।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम्।९।८

अग्निदेव अन्न और धन के लिये दर्शन करने योग्य हैं। जिस वाणी से उनकी प्रशंसा होती है, हमारी वही वाणी स्तुति रूप में उस अग्नि को बढ़ावे।६। अग्ने! यज्ञकर्त्ताओं में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। यजमानों के निमित्त यज्ञ में देवताओं के प्रति यजन करो। तुम यजमानोंको सुख देने वाले देव-रूप हो शत्रुओं को पराजित कर सुशोभित होते हो।७। हे अग्ने! तुम पवित्र हो। हमको अत्यन्त शोभायमान दमकता हुआ ऐश्वर्य प्रदान करके स्तुति करने वालों का मङ्गल करने के लिए उन्हें प्राप्त होओ।८। हे अग्ने! तुम हविवाहक हो। अविनाशी हो। मन्थन रूप बलसे बढ़े हुए हो। अत्यन्त विद्वान् स्तुतिकर्त्ता तुम को भले प्रकार चैतन्य करते हैं।९। (८)

सूक्त ११

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अग्निर्होता पुरोहितो ऽध्वरस्य विचर्षणिः। स वेद यज्ञमानुषक् ॥१
स हव्यवालमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः। अग्निर्धिया समृण्वति ॥२
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः। अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३

अग्नि सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥४
अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
तूर्णी रथः सदा नवः ।५।९

अग्नि यज्ञ के होता, पुरोहित और विशेष द्रष्टा हैं । वे यज्ञकर्म के पूर्ण ज्ञाता हैं ।१। वे हविवहन करने वाले अविनाशी देवताओं के दूत, अन्न रूप हवियों की कामना वाले अग्निदेव अत्यन्त मेधावी हैं ।२। यज्ञ में कर्ता रूप पुरातन अग्नि अपनी बुद्धि के बल से सब कर्मोंके ज्ञाता हैं । इनका तेज अँधेरे को नष्ट करने में समर्थ है ।३। प्राचीन रूप में प्रसिद्ध जन्म से ही बुद्धिमान् बल के पुत्र उन अग्निदेव को देवताओं ने हवि करने वाला बनाया ।४। मनुष्य के नायक शीघ्रता से कार्य करने वाले, रथ के समान और सतत युवा अग्नि की हिंसा करने में कोई समर्थ नहीं है ।५।   (९)

साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः। अग्निस्तुविश्रवस्तमः ।।६
अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
क्षयं पावकशोचिषः ।।७
परि विश्वानि सुधिता ऽग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ।।८
अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ।९।१०

शत्रु की समस्त सेना को जीत लेने वाले, शत्रुओं द्वारा अवर्धनीय तथा देवताओं को पुष्ट करने वाले अग्निदेव अन्न राशियों से युक्त हैं ।६। हवि देने वाला मनुष्य, हवि वहन करने वाले, अग्निसे समस्त अन्नों को पाता हैं । वह पवित्र करने वाले प्रकाशमान अग्नि यजमान को सुन्दर निवास स्थान प्राप्त कराते हैं ।७। स्वयंम्भू विद्वान अग्निदेवकी स्तुति करते हुए हमसम्पूर्ण इच्छित धनों को प्राप्त करने वाले हों ८। हे अग्ने ! हम समस्त इच्छित धनों को प्राप्त कये, समस्त देवगण तुममें ही बसे हुये हैं ।९।   (१०)

सूक्त १२

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-गायत्री)

इन्द्राग्नि आ गत सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥२
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ।५।११

हे इन्द्राग्ने ! स्तोत्रों द्वारा बुलाये जाकर तुम दिव्य, वरण करने योग्य सोम के निमित्त यहाँ आओ । हमारी साधना से प्रसन्न हुए इस सोम-रस को पान करो ।१। हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले की सहायता करने वाला, यज्ञ की साधनभूत इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला सोम प्रस्तुत है । इस निचोड़े हुए सोम-रस का पान करो ।२। यज्ञ का साधन करने वाले सोम के द्वारा प्रेरणा प्राप्तकर स्तुति करने वालों को सुखी बनाने वाले इन्द्र और अग्निका मैं पूजन करता हूँ । वे दोनों इस यज्ञमें सोम-रस पीकर तृप्ति को प्राप्त करें ।३। शत्रुका नाश करने वाले, वृत्र-संहारक, विजयशील, किसी के द्वारा न जीते जाने वाले और बहुत सा अन्न देने वाले इन्द्राग्नि का आह्वान करता हूँ ।४। हे इन्द्र, अग्ने ! स्तोतागण मन्त्र द्वारा तुम्हें पूजते हैं । स्तोत्रों के ज्ञाता मेधावी जन तुम्हारा पूजन करते हैं । अन्न प्राप्ति के लिए मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ ।५। (११)

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥७
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥
९।१२

हे इन्द्राग्ने ! तुमने प्रथम चेष्टा से ही असुरों के नब्बे नगरों को एक साथ कँपा डाला ।६। हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले विद्वान यज्ञ मार्ग पर चलते हुए हमारे कर्मोंको विस्तृत करते हैं । । हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों का बल और अन्न एक-सा ही है । वर्षाको प्रेरित करने वाला कार्य तुम्हीं दोनोंमें स्थित है ।८। हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य लोक को सुशोभित करते हो । युद्ध में होने वाली विजय तुम्हारी ही सामर्थ्य का परिणाम है ।६। (१२)

सूक्त १३ [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि–ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्)

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीलते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३
स नः शर्माणि वीतये ऽग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधो ऽग्ने सहस्रसातम. ॥६
नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ।७।१३

अध्वर्युओ ! अग्निदेव के लिये स्तुति करो । वह अग्नि देवताओं के सहित यहाँ पधारें । यजन करने वालों में सर्वोपरि अग्निदेव कुश के आसन

पर विराजमान हों ।१। आकाश जिनके वश में है, देवगण जिनकी शक्ति की सेवा करते हैं, उन अग्नि का व्रत निरर्थक नहीं होता । मेधावी अग्निदेव यजमानों को प्रेरणा देने वाले हैं । वे पुनः पुनः यह कार्य करते हैं । वे सबको बारम्बार कर्मों में लगाते हैं । वे मनुष्यों को उन कर्मोंका फल देते हैं । वे धन देने वाले हैं । उन अग्निदेव की सेवा करनी चाहिए ।२-३। वे अग्निदेव हमारे भोगने योग्य श्रेष्ठ धन और घर दें । आकाश पृथिवी और अन्तरिक्षका महान् अग्नि में निहित हैं, वह हमको प्राप्त होता है ।४। स्तुति करने वाले मेधावी जन प्रकाशित, नवीन, देवताओंको बुलाने वाले, प्रजाओं का पालन करने वाले अग्निदेव को मनोरम स्तोत्रों द्वारा प्रदीप्त करते हैं ।५। हे अग्ने ! स्तुति के समय हमारे रक्षक होओ । तुम सहस्र संख्यक धन देने वाले हो । मरुद्गण तुम्हें बढ़ाते हैं । तुम हमारे सुख को बढ़ाओ ।६। हे अग्निदेव ! तुम हमको पुत्र सहित पालन करने योग्य, यश देने वाला, सर्वकार्य में समर्थ क्षय न होने वाला बहुत-सा अथवा सहस्र संख्या वाला धन प्रदान करो ।७। (१३)

सूक्त १४

(ऋषि—ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१
अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२
द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सूर्यो नॄन् ॥४
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजा: ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो ऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ।।६
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ।७।१४

देवताओं का आह्वान करने वाले, स्तुति करने वालों का सुख बढ़ाने वाले सत्यानिष्ठ यज्ञ कर्म वाले, अत्यन्त बुद्धिमान्, संसार के स्वामी अग्निदेव हमारे यज्ञ में आते हैं। उनका रथ प्रकाशमान है। उनकी शिखा ही केश रूप है। वे बलके पुत्र पृथिवीपर अपना तेज उत्पन्न करते हैं ।१। हे यज्ञयुक्त अग्ने! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम शक्तिशाली तथा कर्मोंको प्रकट करने वाले हो। तुम्हारे प्रति जो नमस्कार किया गया है उसे स्वीकार करो। हे यज्ञ योग्य अग्निदेव!तुम मेधावी हो । विद्वानों के साथ आकर हमको शरण देने के निमित्त कुश पर विराजमान होओ ।२। हे अग्ने ! अन्नों की प्रेरणा देने वाले उषा और रात्रि तुम्हें प्राप्त होते हैं। तुम वायु मार्ग से उनको प्राप्त होओ। ऋत्विगगण उस प्राचीन अग्नि को हवि द्वारा भले प्रकार सींचते हैं। दम्पतिके समान उषा और रात्रि बारम्बार आते हुए हमारे घरोंमें वास करें ।३। हे बलवान् अग्निदेव ! मित्र, वरुणादि समस्त देवगण तुम्हारे प्रति स्तोत्र उच्चारण करते हैं, क्योंकि तुम बलके पुत्र तथा साक्षात् सूर्य हो। तुम अपनी पथ-प्रदर्शन करने वाली रश्मियों को विस्तृत कर आलोकमें स्थित रहते हो ।४। हे अग्ने ! हम अपने हाथोंसे आज तुम्हें उत्तम हवि देंगे। तुम मेधावी हमारे नमस्कारसे प्रसन्न हुए यज्ञ की कामना करते हो। हमारे द्वारा देवताओं का पूजन करो ।५। हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य यजमान को प्राप्त होता है। तुम्हीं से वह अन्न प्राप्त करता है। तुम हमारे प्रिय स्तोत्रों से प्रसन्न हुए सहस्र संख्या वाला धन प्रदान करो ।६। हे अग्ने ! तुम समर्थ, सर्वज्ञ और प्रकाशमान हो। हम मनुष्य तुम्हारे लिए जो हवि यज्ञ में देते हैं उस हवि को तुम सुस्वादु बनाओ और सब यजमानों की रक्षा के लिए चैतन्य होओ ।७।

(१४)

सूक्त १५

(ऋषि—उत्कील: कात्य: । देवता—अग्नि: । छन्द—त्रिष्टुप्)

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवा: ।
सुशर्मणो बृहत: शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१
त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपा: ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वी: कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३
अषाल्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वा: सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहत: सुप्रणीते ॥४
अच्छिद्रा शर्म जरित: पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यान: सुमेधा: ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी न: सुमेके ॥५
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी न: सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मति: परि ष्ठात् ॥६
इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गो: शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्न: सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७।१५

हे अग्ने ! विस्तृत तेज वाले तुम अत्यन्त प्रकाशित हो । तुम वैरियों और दुष्ट राक्षसों का नाश करो । तुम सर्वश्रेष्ठ महान्, सुख देने वाले और श्रेष्ठ आह्वान से युक्त हो । मैं तुम्हारे आश्रय को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ ।१। हे अग्ने ! तुम उषा के प्रकट होने के पश्चात् सूर्योदय काल में हमारी रक्षा के लिए प्रज्वलित होओ ! तुम स्वयं प्रकट होने वाले हो । पिता के पुत्र को प्राप्त करने के समान तुम भी हमारी स्तुति को प्राप्त करो ।२। हे अग्निदेव ! तुम इच्छितवर्षी हो । मनुष्यों को देखने वाले हो । तुम अन्धकार युक्त रात्रि में अधिक प्रकाशित होते हो । तुम्हारी लपटें बहुत हैं । तुम पितृ-रूप से हमको कर्मों का फल दो । हमारे पाप दूर करते हुए

धन की इच्छा वाले बनाओ ।३। हे अग्ने ! तुम्हें शत्रु हरा नहीं सकते । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । तुम शत्रुओंके नगरों को धन सहित जीतकर प्रकाशित होते हो । तुम जन्मसे ही मेधावी, महान और शरण देने वाले हो। हमारे यज्ञ के सम्पादन करने वाले बनो ।४। हे अग्ने ! तुम संसार को नित्य पुराना बनाते हो । तुम उत्तम बुद्धि वाले और प्रकाशमान हो । देवताओं के निमित्त तुम हमारे सब कर्मों को निर्दोष बनाओ । तुम रथके समान यहाँ रुक कर देवताओं के लिए हमारी हवियाँ पहुँचाओं । आकाश और पृथिवी को हमारे यज्ञ से व्याप्त करो ।५। हे अग्ने ! तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो, हमको बढ़ाओ । हमको अन्नदो । उत्तम प्रकाश द्वारा शोभायमान तुम देवताओं के साथ मिलकर आकाश पृथिवी को अन्न दोहन के उपयुक्त करो । कुबुद्धि कभी भी हमारे निकट न आवे ।६। अग्ने ! तुम अनेल कर्मों के कराणभूत धन देने वाली पृथिवी स्तुति करने वाले को दो । वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको मिले । तुम्हारी यह कृपा हम पर होनी चाहिए ।७।

(१५)

सूक्त १६

(ऋषि–उत्कीलः कात्यः । देवता–अग्निः । छन्द–प्रगाथः)

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२
स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥४
मा नो अग्नेऽमतये भावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५

शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो ऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ।६।१६

हे अग्ने ! तुम महान् सामर्थ्य से युक्त, श्रेष्ठ सौभाग्य के अधिपति गवादि धनोंसे सम्पन्न, सन्तानयुक्त ऐश्वर्योंके स्वामी तथा वृत्र वध करने वालों के नायक हो ।१। हे मरुद्गण ! तुम नायक रूप से सौभाग्य को बढ़ाने वाले अग्निदेव से युक्त होओ । यह अग्नि सुख बढ़ाने वाले धन से युक्त हैं । जिस संग्राममें सेनायें युद्ध करती हैं, उसमें मरुद्गण शत्रुओं को हराते हैं। वे शत्रुओं के संहारक हैं ।२। हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त धन वाले तथा अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । हमको सन्तान वाला, आरोग्यतादायक, शक्ति और सामर्थ्यसे युक्त धन देकर वृद्धि प्रदान करो ।३। वे अग्निदेव संसार के सभी कर्मों को पूर्ण करते हुए उनमें व्याप्त हैं । वे सभी भार को सहते हुए देवताओं को हवि पहुँचाते हैं । वे अग्नि स्तुति करने वालों से साक्षात् करते हैं । वे यज्ञानुष्ठान करने वालों की स्तुतियों के प्रति आते हैं । तथा युद्ध काल में रणक्षेत्र में पधारते हैं ।४। हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम हमको शत्रुओं से पीड़ित न होने देना, हम वीरों से शून्य न हों । पशुओं रहित एवं निन्दा से पात्र भी न हों । तुम हमसे रुष्ट न होओ ।५। हे अग्ने ! तुम यज्ञ से प्रकट हुए सन्तानवान ऐश्वर्यों के स्वामी हो । हे वरणीय अग्निदेव ! तुम अत्यन्त वैभववान् हमको सुख देने वाला, यज्ञ बढ़ाने वाला धन प्रदान करो ।६। (१६)

सूक्त १७

(ऋषि—कतो वैश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान् मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥२
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ।।३
अग्नि सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेडयं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ।।४
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ।५।१७

अग्निदेव धर्म को धारण करने वाले, ज्वाला रूप केश वाले, परम प्रदीप्त पवित्र और सत्कर्मों के कर्ता हैं। वे यज्ञ के आरम्भ काल में प्रज्वलित होकर बढ़ते हुए देव यज्ञ को घृतादि युक्त हवियों से सींचते हैं।१। हे अग्ने ! तुम जन्म से ही मेधावी और सर्वज्ञ हो। तुमने जैसे पृथिवी और आकाश को हवियाँ दी थीं वैसे हो हमारी हवियों को देते हुए देवताओं का यजन करो। हमारे यज्ञ को मनु के समान ही सम्पन्न करो।२। हे जन्म से बुद्धिमान् अग्निदेव ! तुम्हारा अन्न आज्य, औषधि और सोम रूप, तीन रूपों वाला है। एकाह, आहीन और समस्त रूप तीन उषा देवताएँ तुम्हारी मातृ रूप हैं। हे मेधावी ! तुम उनके सहित देवताओं को हवियाँ देते हो। तुम यजमान को सुख और कल्याण प्राप्त कराने में समर्थ होओ ।३। हे अग्ने ! तुम स्वयं दीप्तिमान्, मेधावी, उत्तम दर्शन वाले, स्तुत्य हो। हम तुमको नमस्कार करते हैं। देवताओं ने तुम्हें मोह रहित और हवि पहुँचाने वाले दौत्य कर्म में नियुक्त किया है। तुम अमृत के नाभि रूप हो ।४। हे अग्ने ! जो यज्ञकर्ता होता मध्यम और उत्तम स्थानों पर स्वधायुक्त बैठे हुये सुखी हैं, तुम उनके कर्त्तव्य को देखते हुए यज्ञ करो। फिर देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हमारे इस यज्ञ को धारण करो ।५।

(१७)

सूक्त १८

(ऋषि—कतो वैश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रतिचीर्दहतादरातीः ।।१

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥४
कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ।५।१८

हे अग्ने ! मित्र अथवा माता-पिता के समान हितैषी बनो। हमसे प्रसन्न होओ। जो हम मनुष्योंके शत्रु, अन्य विरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य हैं उनको भस्म कर डालो ।१। हे अग्ने ! शत्रुओं के मार्ग मे बाधक बनो। जो दुष्ट हवि नहीं देते उनके अभीष्ट व्यर्थ हों। तुम उत्तम निवास-स्थान देने वाले, एवं सर्वज्ञाता हो,जिनका मन चलायमान हो उन मनुष्यों को दुःख दो। उनके लिए तुम्हारी जरा रहित किरणें बाधक बनें ।२। हे अग्ने ! मैं धन की इच्छा से तुम वेगवान् और शक्तिशाली को समिधा और घृत युक्त हवि देता हूँ। मैं तुम्हारी स्तुति करके जब तक प्राणवान् रहूँ, तब तक मुझे धन देते रहो। धन देने के लिए मेरी स्तुति को प्रकाशमान बनाओ ।३। हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम अपने तेज से प्रदीप्त होओ। तुम विश्वामित्र के वंशजों द्वारा स्तुति किये जाकर उन्हें धन सम्पन्न बनाओ। अन्न देते हुए आरोग्य और निर्भयता भी दो। तुम कर्म करने वाले हो। हम साधक बारम्बार तुम्हारी साधना करेंगे ।४। हे अग्निदेव ! तुम सब धनों के दाता हो, हमको धनों में जो श्रेष्ठ धन है, वह प्रदान करो। जब तुम समिधाओं से युक्त होओ, तभी हमको प्रवृद्ध धन दो। तुम अपनी प्रकाशमान बाहुओं को स्तुति करने वाले के घर की ओर धन के निमित्त फैलाओ ।५। (१८)

सूक्त १९

(ऋषि–कुशिकपुत्रो गाथी । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्)

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मघानि ॥१
प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाऽग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४
यत् त्वा होतारमनजन् मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥१९

हे अग्निदेव ! तुम देवताओं के स्तोता, सर्वज्ञ, प्रज्ञावान हो । हम इस यज्ञ में तुम्हें होता रूप से ग्रहण करते हैं । वे अग्नि यज्ञ कर्मों में लग कर देवताओंका यजन करें । वे धन और अन्न देनेकी इच्छा करते हुए हमारी हवियाँ स्वीकार करें ।१। हे अग्ने ! मैं हवियुक्त हवि देने का साधन, घृत से पूर्ण जुहू को तुम्हारे सम्मुख करता हूँ । वे देवताओं का सम्मान करने वाले अग्निदेव हमको देने योग्य धन के सहित यज्ञ में भाग लें ।२। हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर साधक का हृदय अत्यन्त बल प्राप्त करता है । उसे सन्तानयुक्त धन दो । तुम फल देने की इच्छा वाले एवं महान् धन प्रदान करने वालेहो । हम तुम्हारी महती रक्षा से निर्भय होते हुए. तुम्हारी स्तुति करेंगे और धन के स्वामी बनेंगे ।३। हे अग्ने ! तुम प्रकाशमानहो । यज्ञ करने वालेने तुम्हें प्रदीप्त किया है । तुम यज्ञ में दिव्य तेज की साधना करने वाले हो, अतः देवताओंको आहूत करो ।४। हे अग्ने ! यज्ञ में विराजमान मेधावी ऋत्विग्गण तुम्हें होता कहते हैं । तुम हमारी रक्षाके निमित्त होओ । हमारे पुत्रों को अन्नवान् करो ।५। (१९)

॥ प्रथम खण्ड समाप्त ॥

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

•••०O०•••

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है । इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से भावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आर्थिक उत्थान के लिये कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुये विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मंगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष २७००० साधकों द्वारा ९०० करोड़ मंत्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक १५ पैसे मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

संस्कृति संस्थान — चमनलाल गौतम

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

डॉ० चमन लाल गौतम एक व्यक्ति का ही नहीं वरन् ऐसे विशाल धार्मिक संस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शोध, प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश-विदेश में करते रहे हैं। यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग के बिना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्मक साहित्य की ३०० से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित करके घर-घर में पहुँचाने की पवित्रतम साधना कर रहे हैं। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मिक विषयों पर १५० खोजपूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणीय व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन, तप, प्रतिभा और मौलिक सूझ-बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। ध्यान और त्राटक पर उनके वैज्ञानिक प्रयोग प्राचीन ऋषियों की तप साधना की याद दिलाते हैं। इन प्रयोगों और अनुभूतियों पर रचा साहित्य स्वयं में एक आश्चर्य है। स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पूरा हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महापुरश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण-आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ विश्व ओंकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्त पञ्चमी की परम पवित्र बेला के साथ हो गया है। अतः उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता-विश्व ओंकार परिवार की शाखाओं के व्यापक विस्तार के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों को ओंकार साधना में प्रविष्ट करके उच्च आध्यात्मिक भूमिका में प्रशस्त करना, ओंकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रसार को समर्पित है।

स्वामी सत्य भक्त

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रंथ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	...	३८)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	१६)
३—यजुर्वेद	...	९)५०
४—सामवेद	...	८)५०
५—वेद महाविज्ञान	...	१२)
६—शतपथ ब्राह्मण	...	१२)
७—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	...	३३)
—उपनिषद् रहस्य	...	६)५०
—बृहदारण्यकोपनिषद्	...	४)५०
०—छान्दोग्योपनिषद्	...	४)५०
१—वैशेषिक दर्शन	...	६)२५
२—न्याय दर्शन	...	६)७५
३—सांख्य दर्शन	...	६)२५
४—योग दर्शन	...	६)७५
—वेदान्त दर्शन	...	७)५०
—मीमांसा दर्शन	...	९)
७—२० स्मृतियां २ खण्ड	...	२२)
८—मनुस्मृति	...	११)
९—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	२७)
०—ब्रह्म सूत्र	...	१२)५०
२—पञ्चदशी	...	१४)
२—विचार सागर	...	१४)
—विचार चंद्रोदय	...	३)
४—पञ्चीकरण	...	४)
५—उपदेश साहस्री	...	८)२५
६—वृत्ति प्रभाकर	...	१०)
७—सौन्दर्य लहरी	...	७)

प्रकाशक :-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब वेदनगर,
बरेली-२४३००३ (उ०प्र०).